सचित्र

आवश्यक सूत्र

श्रुत आचार्य प्रवर्त्तक श्री अमर मुनि

आवश्यक के आराधक

ILLUSTRATED

AAVASHYAK SUTRA

Shrut Acharya Pravartak
Shri Amar Muni

आवश्यक आराधना के छह सोपान

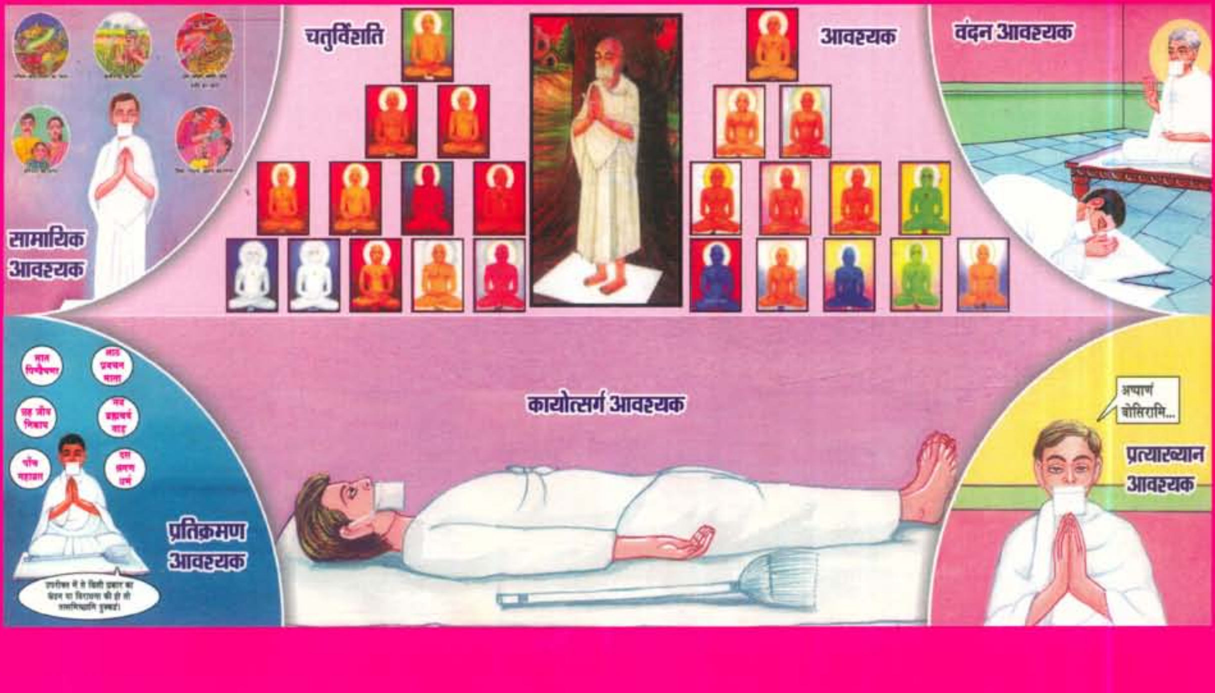

आवश्यक सूत्र

जिस प्रकार अपने पंखों को फड़फड़ा कर पक्षी उन पर जमी धूल को झाड़ लेता है वैसे ही साधक गृहीत व्रतों पर जमी दोषों की धूल को प्रतिक्रमणीय परिस्पंदना द्वारा झाड़ कर भार-रहित हो जाता है। ऐसा करने से उसके लिए अध्यात्म के अनन्त आकाश में ऊँची उड़ान भरना सरल हो जाता है। दोषों की धूल के भार के साथ अध्यात्म के आकाश में ऊँची उड़ान संभव नहीं है। इसीलिए महापुरुषों ने **"आवश्यक"** का विधान किया है। प्रत्येक जिनोपासक के लिए यह जरूरी है कि वह आवश्यक-आराधना द्वारा प्रतिदिन **"निशान्त और दिवसान्त"**—इन दोनों संध्याओं में स्वयं का आलेखन-प्रतिलेखन करे। स्वयं का अवलोकन करे। आत्म-आलोचना करे। ऐसा करने से उसकी आत्मा शुद्ध और निर्मल हो जाती है। उसका ज्ञान-दर्शन एवं आनन्द स्वरूप प्रकट हो जाता है। ऐसा होना ही साधना का सुफल है। सिद्धि के अन्तिम सोपान पर साधक का चरणन्यास है।

AAVASHYAK SUTRA

Just as a bird removes the dirt from his wings by fluttering his feathers, similarly through pratikarman, the practitioner removes the karmic dust from the vows accepted by him, then he cleans his soul. Then it becomes easy for him to move ahead in infinite span of spirituality. With the heavy load of dust of faults it is not possible to arrive at the great heights of spirituality. So the great seers have enumerated the provision of Avashyak. It is essential for every follower of Arihantas to practice Avashyak daily in a quiet manner in the evening as well as in the morning wherein he should closely look into his activities himself at the end of the day and before the end of night. He should examine his activities himself. He should practice self-criticism through self-introspection. By this process, his soul becomes pure and spotless. Then his real knowledge, perception and natural state of ecstatic happiness appears. This is the good result of this practice. He then treads on the final step leading to salvation.

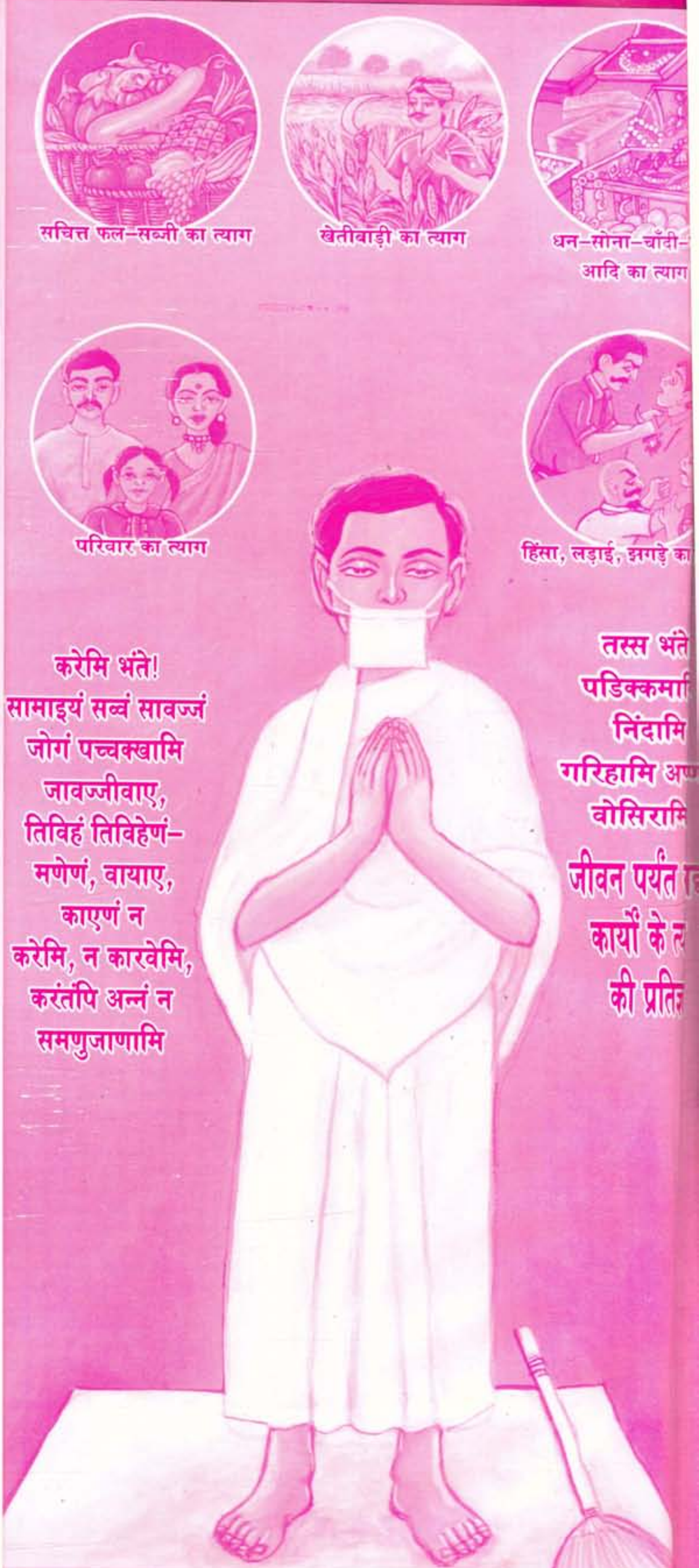

सचित्र

आवश्यक सूत्र

श्रुत आचार्य प्रवर्त्तक श्री अमर मुनि

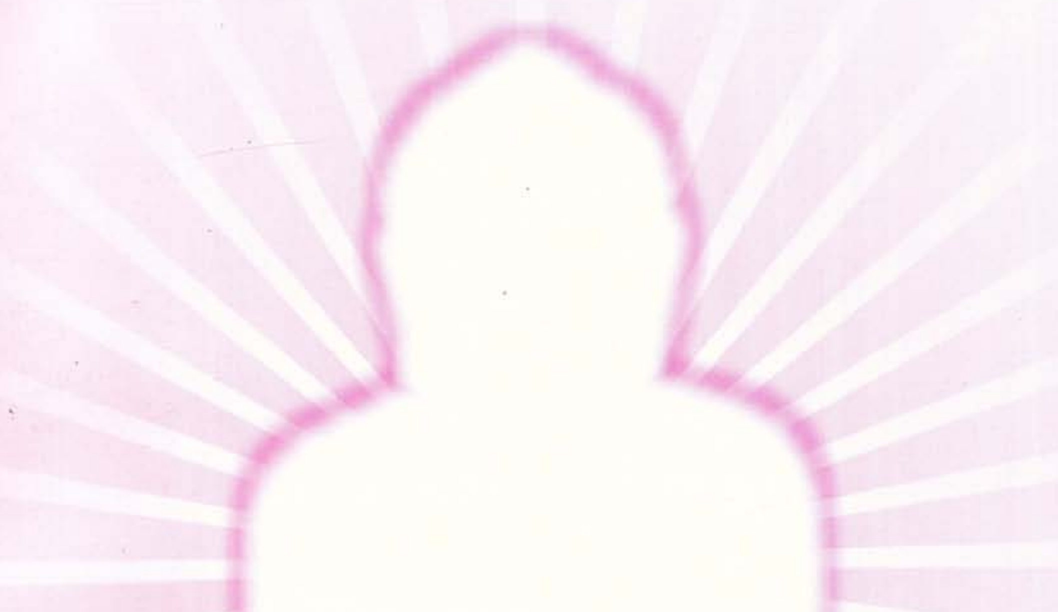

ILLUSTRATED

AAVASHYAK SUTRA

Shrut Acharya Pravartak Shri Amar Muni

।।卐।। श्री वर्धमानाय नमः।।卐।।

श्री आत्म गुरवे नमः

श्री आनंद गुरवे नमः

श्री पद्म गुरवे नमः

श्री अमर गुरवे नमः

राष्ट्र सन्त उत्तर भारतीय प्रवर्तक अनंत उपकारी गुरूदेव भण्डारी प.पू. श्री पद्म चन्द्र जी म.सा. की पुण्य स्मृति में साहित्य सम्राट श्रुताचार्य पूज्य प्रवर्तक वाणी भूषण गुरूदेव प.पू. श्री अमर मुनि जी म.सा. द्वारा संपादित एवं पद्म प्रकाशन द्वारा विश्व में प्रथम बार प्रकाशित (सचित्र, मूल, हिन्दी-इंगलिश अनुवाद सहित) जैनागम सादर सप्रेम भेंट।

भेंटकर्त्ता : श्रुतसेवा लाभार्थी सौभाग्यशाली परिवार

श्रीमती मीराबाई रमेशलालजी लुणिया

(समस्त परिवार)

सचित्र

आवश्यक सूत्र

(मूल पाठ, हिंदी-अंग्रेजी अनुवाद,
विवेचन एवं रंगीन चित्रों सहित)

प्रधान सम्पादकः

उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज के सुशिष्य

श्रुत आचार्य प्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी महाराज

प्रकाशक

पद्म प्रकाशन, पद्म धाम,

नरेला मण्डी, दिल्ली-110040

श्रुत आचार्य उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक आराध्य गुरुदेव

श्री अमर मुनि जी महाराज

की हीरक जन्म-जयंती के उपलक्ष्य में

सचित्र आगम माला का चौबीसवां पुष्प

- **सचित्र आवश्यक सूत्र (संपूर्ण श्रमण एवं श्रावक आवश्यक)**
- प्रधान संपादक : श्रुत आचार्य प्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी महाराज
- संपादक : श्री वरुण मुनि जी महाराज 'अमर शिष्य' डबल एम.ए.
साहित्यकार श्री श्रीचन्द जी सुराणा 'सरस'
- सह-संपादक : युवा साहित्यकार श्री विनोद शर्मा
- अंग्रेजी अनुवादक : पद्मरत्न सुश्रावक श्री राजकुमार जैन, मधुबन, दिल्ली
- चित्रांकन सहयोगी : श्री संजय सुराणा, आगरा
- चित्रांकन : श्री अनुज के. भटनागर, विकासपुरी, दिल्ली
- प्रथमावृत्ति : नवम्बर, 2012
- प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान : श्री महेन्द्र जैन (अध्यक्ष) (M) 9810027225
पद्म प्रकाशन, पद्म धाम, नरेला मण्डी, दिल्ली-40
- मुद्रक : कोमल प्रकाशन, प्रेमनगर दिल्ली-8
मो.: 9210480385
- मूल्य : 400 रुपये मात्र

© सर्वाधिकार : पद्म प्रकाशन, दिल्ली

समर्पण

जिन्होंने अपनी परम पावन प्रेरणाओं
और प्रभावशाली देशनाओं से
असंख्य भव्यात्माओं को
अंधकार से प्रकाश
असत् से सत् और पर से स्व
की ओर लौटने का संदेश दिया
उन उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक
अनंत उपकारी
गुरुदेव 'भण्डारी'
श्री पद्मचन्द्र जी म.
के अदृष्ट पाणि-पल्लवों में
पराश्रद्धा पराभक्ति
सहित समर्पित!

अमर मुनि
(श्रुत आचार्य, उत्तर भारतीय प्रवर्तक)

आगम प्रकाशन के आधार स्तंभ

श्रमणीसूर्या उप. प्र. डॉ. श्री सरिता जी म.

दिव्य साधिका श्री रश्मि जी म.

शेर-ए-मंगलदेश श्री सुभाष 'लिल्ली' जी-नीलम जैन, गिदड़वाहा

उदारमना परम गुरुभक्त श्री सुभाषचन्द जी
शशि जैन, विवेक विहार, दिल्ली

उदारमना परम गुरुभक्त श्री आनंद जी
सुधा जैन, नरेला मण्डी

आगम प्रकाशन में परम सहयोगी

दानवीर भामाशाह श्री आनंद प्रकाश जी-
कमलेश जैन, सदर बाजार, दिल्ली

सुप्रसिद्ध दानवीर श्री आर.डी. जैन
जयमाला जैन, विवेक विहार, दिल्ली

उदारमना परम गुरुभक्त श्री सचिन जी-रूही जैन
विश्वा अपार्टमैन्ट, रोहिणी, दिल्ली

उदारमना परम गुरुभक्त श्री जिनेश कुमार जी
प्रेमलता जैन, अग्रनगर, लुधियाना

उदारमना परम गुरुभक्त श्री सुशील कुमार जी
कौशल्यादेवी जैन, योजना विहार, दिल्ली

श्रुत सेवा में समर्पित गुरु भक्त

उदारमना परम गुरुभक्त ला. जगमन्दरलाल जी
शकुन्तला देवी जैन, रोहिणी, दिल्ली

उदारमना परम गुरुभक्त श्री ज्ञात नंदन जी
अंगूरी देवी जैन, अरिहंत नगर, दिल्ली

उदारमना परम गुरुभक्त श्री राजकुमार जैन (जाटल वाले),
त्रिनगर, दिल्ली

उदारमना परम गुरुभक्त डॉ. जगमोहन जी
निर्मल गोयल, खन्ना

उदारमना परम गुरुभक्त श्री कृष्ण लाल जी
दर्शना देवी जैन, संगरिया

ILLUSTRATED

AAVASHYAK SUTRA

(Original text, Hindi-English translation, Exposition alongwith coloured pictures)

Chief Editor

Disciple of Uttar Bharat Pravartak Bhandari

Shri Padmachand Ji Maharaj

Shrut Aacharya Pravartak

Gurudev Shri Amarmuni Ji Maharaj

Publisher:

Padma Prakashan, Padma Dham,

Narela Mandi, Delhi–110040

On the occasion of birthday

Diamond Jubilee of Uttar Bharat Pravartak

Gurudev Shri Amar Muni Ji Maharaj

in Illustrate Series of Agams Twenty Fourth

- **Sachitra Aavashyak Sutra (Complete Shraman and Shravak Sutra)**
- *Chief Editor* : Shrut Aacharya Pravartak Shri Amar Muni Ji Maharaj
- *Editor* : Shri Varun Muni JI Maharaj 'Amar Shishya'
  Double M.A.
  : Shrichand Ji Suranaa 'Saras'
- *Co-editor* : Sh. Vinod Sharma
- *English Translation* : Padamratan, Sh. Rajkumar Jain, Madhuban, Delhi
- *Illustration Supervision* : Sh. Sanjay Surana, Agra
- *Illustrater* : Sh. Anuj K. Bhatnagar, Vikaspuri, Delhi
- *First Edition* : November, 2012
- *Publisher* : Mahender Jain, (President–9810027225)
  Padma Prakashan, Padma Dham, Narela Mandi
  Delhi–110 040
- *Printer* : Komal Prakashan, Prem Nagar, Delhi-110008
  (M) : 9210480385
- *Price* : Four Hundred Rupees Only

© (All rights reserved : Padma Prakashan, Delhi)

प्रकाशकीय

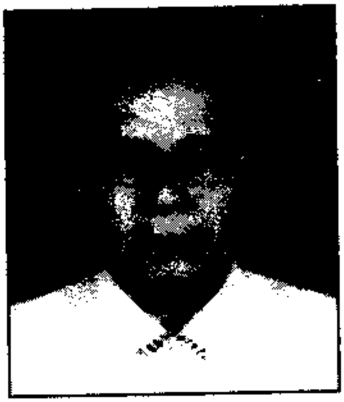

सचित्र आगम प्रकाशन के अभियान में पद्म प्रकाशन ने प्रस्तुत श्री आवश्यक सूत्र के प्रकाशन-यज्ञ को सम्पन्न करके एक और सोपान का स्पर्श कर लिया है। बत्तीस आगमों के सचित्र प्रकाशन के जिस लक्ष्य को लेकर हमने अपने अभियान की शुरुआत की थी, हम उस लक्ष्य-सिद्धि के अत्यन्त समीप पहुँच गए हैं। निःसन्देह यह एक दुरुह और दुर्गम यात्रा रही। विभिन्न बाधाएं कदम-कदम पर चुनौतियाँ बनती रहीं। कई बार प्रतीत हुआ कि इस प्रकाशन अभियान को आगे बढ़ा पाना सम्भव नहीं होगा। परन्तु इस सब के बावजूद किसी दिव्य शक्ति के अदृश्य संबल से एवं पूज्य प्रवर्त्तक गुरुदेव श्री अमरमुनि जी महाराज के आशीष से कार्य अनवरत चलता रहा। बाधाएं स्वतः ध्वस्त होती रहीं। पूज्य प्रवर्त्तक श्री जी का आशीष, हाथ पर रखे हुए दीपक की भाँति हमारे यात्रापथ को आलोकित करता रहा। आज जब हम शिखरारोहण के समीप हैं तो हार्दिक आह्लाद और आध्यात्मिक उमंग का घट छलक-छलक रहा है।

अतीत में आवश्यक सूत्र पर अनेक आराध्य आचार्यों, मुनिराजों एवं विश्रुत विद्वानों ने अपनी कलम चलायी है। आवश्यक सूत्र के कई उपयोगी संस्करण आज सुलभ हैं। परन्तु सचित्र आवश्यक सूत्र का अभाव अद्यतन बना हुआ था। एकाध सचित्र प्रकाशन देखने में भी आये, पर उनमें साधक की मुद्राएँ आदि ही चित्रित हैं। सूत्र का सम्पूर्ण हार्द चित्रों में प्रकट हो ऐसा आवश्यक सूत्र अद्यतन प्रकाशित नहीं हुआ है। इस दृष्टि से प्रस्तुत प्रकाशन सर्वथा नवीन है। भाषा-शैली की दृष्टि से भी प्रस्तुत श्री आवश्यक सूत्र अज्ञ-विज्ञ सभी पाठकों के लिए सर्वथा उपयोगी होगा। प्रस्तुत सूत्र को विधि सहित संयोजित किया गया है जिससे साधारण

पाठकों के साथ-साथ प्रतिदिन प्रतिक्रमण करने वाले साधक भी अपने लिए उपयोगी पा सकें।

प्रस्तुत आगम प्रकाशन में अनेकानेक सहयोगियों का आशीर्वादात्मक सौजन्य हमें प्राप्त हुआ है, तदर्थ हम उनके आभारी हैं। अंग्रेजी अनुवादन में श्री राजकुमार जी जैन तथा संपादन एवं मुद्रण में श्री विनोद शर्मा (कोमल प्रकाशन दिल्ली) का सहकार भी हमारे लिए अविस्मरणीय रहेगा।

और अंत में-

परम पावन पूज्य प्रवर्त्तक गुरुदेव भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. के अदृष्ट आशीर्वाद एवं पूज्य प्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी महाराज के साक्षात् आशीष से तथा 'अमर शिष्य' मुनीश्वर श्री वरुण मुनि जी के विलक्षण मार्गदर्शन से हम इस श्रुतयज्ञ की सम्पूर्णता में शीघ्र सफल होंगे-इसी आशा के साथ-

-महेन्द्र जैन

अध्यक्ष

पद्म प्रकाशन, पद्म धाम,

नरेला मण्डी, दिल्ली-40

PUBLISHER'S NOTE

By publishing Avashyak Sutra, Padma Prakashan has moved a step forward in the publication of illustrated sachitra Agams. We have started this project keeping in mind the goal of publication of all the thirty two Agams in illustrated Sachitra form. Now we are very near in completing it. Undoubtedly it was an uphil and difficult task. Obstacles in various form appeared on the way. Several times it appeared that it may not be possible to go ahead in this project. In spite of all these difficulties, with the assistance of some invisible power and with the blessings of gurudev Pravartak Shri Amar Muni ji Maharaj the work continued to move ahead. The obstacles withered away of their own. The worthy blessing of Pravartak ji continued to show us the way ahead like a lamp in the darkness. The day when we are near the completion in our ascent, we are filled with immense joy.

In the past many learned Acharyas, Saints and Scholars have written commentaries on Avashyak Sutra. Many useful editions on Avashyak sutra are easily available at present but there is no illustrated sachitra Avashyak sutra. A few illustrated avashyak sutra came to our notice but in them only the postures of the practitioner are depicted. So far no Avashyak Sutra has been published wherein the entire theme of the Sutra has been properly reflected in pictures. In this context this publication is totally a recent one. Even from the point of language, this publication shall be easily intelligible to the common reader. The beginner as well as the learned would like it. This Sutra has been properly compiled so that it may be useful to the ordinary reader and also to those who daily do pratikraman.

We have received the assistance of many devotees in the publication of this Agam and express our gratitude to them. In English translation Shri Raj Kumar Jain and in preparing the pictures and depicting the postures editing the assistance of Shri Vinod Sharma of 'Komal Prakashan' shall always be remembered.

In the end I must admit that we shall be successful soon in this mission due to the invisible blessing of reverend pravartak Bhandari Shri Padma Chandra ji Maharaj, the worthly blessing of pravartak Shri Amar Muni ji Maharaj and the guidance of Shri Varun Muni ji , devoted disciple of Shri Amar Muni ji. With this expectation

— **Mahendra Jain**
President
Padma Prakashan, Padam Dham,
Narela Mandi, Delhi–40

सम्पादकीय

प्राचीन जैन साहित्य में बत्तीस आगमों का स्थान सर्वोपरि है। इन आगमों में तीर्थंकर भगवंतों के उपदेश उनके प्रधान शिष्यों (गणधरों) ने सूत्रबद्ध करके संकलित किए हैं। कुछेक सूत्रों का संकलन/निर्यूहण बाद के आचार्यों ने भी किया। परन्तु इन सूत्रों में भी मूल उपदेश भगवान् महावीर के ही हैं।

तीर्थंकर महावीर ने कैवल्य के आलोक में जैसा देखा, वैसा ही प्ररूपित किया। गणधरों ने तीर्थंकर महावीर की प्ररूपणाओं को यथारूप अपनी प्रज्ञा में सहेजा और पूरे कौशल से उन प्ररूपणाओं को सूत्रबद्ध किया। वह सूत्रबद्ध ज्ञान गंगोत्री गुरु-शिष्य परम्परा से एक हजार वर्षों तक प्रवाहित होती रही। गुरु अपने शिष्य को सिखाते, आगे शिष्य अपने शिष्यों को सिखाते। काल के प्रभाव से साधकों की स्मरण-शक्ति क्षीण होने लगी। स्मरण-शक्ति के ह्रास से आगम-साहित्य भी प्रभावित होने लगा। विशाल वाङ्मय को स्मृति में सुरक्षित रख पाना सहज नहीं था। समय-समय पर पड़ने वाले दुर्भिक्ष भी श्रुत-राशि के विच्छेद के कारण बने। अनेक श्रुत-सम्पन्न श्रमण दुर्भिक्ष के कारण काल-कवलित हो गए। अनेक श्रमण-समुदाय भारतवर्ष के दक्षिणादि सुदूर अंचलों में चले गये। परस्पर मिलन के अभाव में जो बड़ी हानि हुई वह श्रुतराशि के विच्छेद के रूप में सामने आयी। आखिर भगवान् महावीर के निर्वाण के 980 वर्ष पश्चात् आचार्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने श्रुत के ह्रास को रोकने के लिए वल्लभी नगरी में श्रमण-सम्मेलन का आह्वान किया। इस सम्मेलन में अनेक विद्वान मुनिराजों ने सहभागिता की। देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के निर्देशन में प्रथम बार सूत्रों को कलमबद्ध किया गया। पुस्तकारूढ़ होने से आगम साहित्य में जहाँ एकरूपता आई वहीं सूत्रपाठों के विच्छेद का क्रम भी बन्द हो गया।

वर्तमान में बत्तीस आगमों की उपलब्धता देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण की दूरदर्शिता का सुपरिणाम है। इसीलिए जैन जगत में आर्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण को एक युगान्तरकारी महापुरुष के रूप में जाना-माना और पूजा जाता है।

क्रांतद्रष्टा गुरुदेव का अशीष-दर्शन

बत्तीस आगम अध्यात्म के अमृत-कलश हैं। अतीत में असंख्य भव्य जीवों ने इस अमृत के पान से अमरत्व की प्राप्ति की है। वर्तमान में भी अनेक साधक इस अमृत का पान कर अमरत्व के पथ पर यात्रशील हैं।

मेरे गुरुदेव उत्तर भारतीय प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द जी महाराज के चिन्तन में कई दशक पूर्व यह विचार उत्पन्न हुआ कि अध्यात्म के ये अमृतकलश जन साधारण की भाषा में सर्वसुलभ हों। तब गुरुदेव ने मुझसे कहा था—अमर! कुछ ऐसा करो जिससे ग्रह आगम ज्ञान केवल विद्वानों के उपभोग का विषय न रहे बल्कि साधारण पाठक और यहाँ तक कि छोटी आयु के बाल पाठक भी आगमों को उसी रुचि से पढ़ें जिस रुचि से विद्वान पढ़ते हैं। गुरुदेव ने ही आगमों की स्वाध्याय रुचि बढ़ाने के लिए सचित्र आगम प्रकाशन का विचार दिया था। गुरुदेव के निर्देशन में जब यह कार्य प्रारम्भ हुआ तो आगम की भाव-भाषा और सुन्दर चित्रांकित प्रस्तुति देखकर गुरुदेव ने कहा—अमर! यह कार्य अनूठा है। मैं चाहता हूँ कि यह अनूठा कार्य और अनूठा बने, बृहद् बने, सर्वगम्य बने। इसके लिए आवश्यक है कि इसके सरल हिन्दी अनुवाद के समान ही सरल इंग्लिश अनुवाद का भी प्रबंध किया जाये। गुरुदेव के इस विचार ने जहाँ मुझे आह्लादित किया वहीं चिंतित भी किया। क्योंकि आंग्ल भाषा-ज्ञान की मेरी अपनी सीमाएं हैं। मैंने गुरुदेव के समक्ष अपनी चिंताएं रखीं। गुरुदेव ने कहा—जगन्नाथ का रथ किसी एक हाथ से नहीं खींचा जाता, उसके लिए अनेक हाथों के सहयोग की अपेक्षा होती है। जितना तुम कर सकते हो उतना तुम स्वयं करो! जो तुम नहीं कर सकते हो उसके लिए आंग्ल विद्वानों का सहयोग लो।

गुरुदेव का आशीष-दर्शन मेरे साहस का संबल बना। उसके लिए कुछ आंग्ल भाषा के विद्वानों से संपर्क किया गया। सहयोगी जुड़ते चले गये। सरल हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद के साथ हृदय स्पर्शी और अर्थ स्पर्शी चित्रों की प्रस्तुति के साथ आगम शृंखला आकार लेने लगी। मण्डन-मिश्रीय साहित्य तल्लीनता के इन दो दशकों में तेईस आगम प्रकाश में आ चुके हैं। क्रान्त-द्रष्टा श्रद्धेय गुरुदेव का स्वप्न साकार होने के करीब है। उसी क्रम में प्रस्तुत श्री आवश्यक सूत्र का प्रकाशन हो रहा है। इन प्रकाशनों की बहु उपयोगिता, लोकप्रियता से पाठक स्वयं परिचित हैं ही। कई आगमों के तो कई-कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इंग्लैंड, अमेरिका, जर्मनी आदि कई पाश्चात्य देशों में ये आगम पढ़े और पढ़ाए जाते हैं। जैन दर्शन का तात्विक विवेचन पढ़कर पश्चिमी जगत न केवल हैरान है बल्कि जिनत्व के प्रति उसकी आस्था में भी भारी

वृद्धि हुई है। जिन क्षेत्रों में विज्ञान जहाँ आज भी जड़ें तलाश रहा है उन क्षेत्रों की समृद्ध हरियाली के वृत्त आगम-पृष्ठों पर देखकर पश्चिमी विद्वान हैरान हैं। इस पूरे यथार्थ का श्रेय श्रद्धेय गुरुदेव के उसी चिन्तन को जाता है जिसमें उन्होंने आगमों की चित्रांकित एवं सरल हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद की परिकल्पना की थी।

श्री आवश्यक सूत्र :

आगम साहित्य में आवश्यक सूत्र का प्रमुख स्थान है। इस सूत्र में श्रमण और श्रावक की साधना-शुद्धि के सूत्र संकलित हैं। जैन श्रमण या श्रावक का जीवन साधारण संन्यासियों या गृहस्थों के समान अनियमित नहीं होता है। नियमों और मर्यादाओं का भारी भार उसके स्कन्धों पर होता है। उठना, बैठना, बोलना, सोना, जागना, खाना-पीना आदि उसकी समस्त क्रियाएं नियमबद्ध होती हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूपी महान व्रतों का वह धारक होता है। इन महान व्रतों की सम्यक् रूपेण आराधना हेतु हजारों अन्य नियमोपनियमों को वह धारण करता है। समग्ररूपेण जागरूक रहकर वह इन नियमोपनियमों का पालन करता है। नियमों और मर्यादाओं की इस आराधना में क्षणभर के लिए भी प्रमाद उत्पन्न हो जाये तो साधक अपने व्रतों से स्खलित हो जाता है। उसके नियम दूषित हो जाते हैं। दूषित मर्यादाओं के बल पर मोक्ष की यात्रा नहीं की जा सकती।

जैन श्रमण/श्रावक को अपनी मर्यादाओं से सघन लगाव होता है। उस द्वारा गृहीत व्रत और मर्यादायें दूषित न हों इसके लिए वह सतत सजग रहता है। काल के प्रभाव से अथवा पूर्वकृत कर्मों के उदय से कदाचित् व्रत-नियम दूषित भी हो जाते हैं। उठने-बैठने-बोलने-सोने आदि में असावधानी हो जाती है। उसी असावधानी अथवा प्रमाद से उत्पन्न दोषों की शुद्धि के लिए प्रस्तुत आवश्यक सूत्र का अनुसंधान किया गया है। इस सूत्र में साधक द्वारा गृहीत समस्त व्रतों, महाव्रतों और मर्यादाओं की शुद्धि के सूत्र संकलित किए गए हैं। साथ ही सर्वज्ञों ने यह विधान किया है कि साधक जब तक सिद्ध (केवली) नहीं हो जाता तब तक उसके लिए दोनों संध्याओं में इस सूत्र की आराधना करना अनिवार्य है।

वैदिकों में सन्ध्या, बौद्धों में उपासना, मुस्लिमों में नमाज, सिखों में अरदास और ईसाईयों में प्रार्थना का जो स्थान है श्रमण-परम्परा में वही स्थान आवश्यक-आराधना का है। साधक के लिए अवश्य रूप से करणीय, आराधनीय होने से ही इस सूत्र को "आवश्यक सूत्र" कहा गया है। शेष सूत्रों की आराधना कदाचित् रह जाये, पर आवश्यक की आराधना साधक के लिए अनिवार्य है।

जल-स्नान से जैसे शरीर शुद्ध हो जाता है वैसे ही आवश्यक-आराधना से आत्मा शुद्ध हो जाती है। वस्तुतः अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अव्याबाध आनन्द--ये आत्मा के निजरूप हैं, स्वभाव हैं। जल में जैसे शीतलता रहती है, अग्नि में जैसे उष्णता रहती है वैसे ही आत्मा में ज्ञान, दर्शन एवं आनन्द का निवास है। ज्ञान और आत्मा दो अलग-अलग तत्व नहीं हैं। इसी प्रकार दर्शन और आत्मा तथा आनन्द और आत्मा भी अलग-अलग नहीं हैं। जहाँ आत्मा है, उसका ज्ञान, दर्शन, आनन्द रूप स्वभाव वहीं उसके साथ अखण्ड रूप से विद्यमान है। परन्तु कर्मरज ने आत्मा के ज्ञान-दर्शन-आनन्द रूप स्वभाव को ढांप लिया है। दर्पण पर जैसे धूल जम जाये तो उसमें द्रष्टा का प्रतिबिम्ब नहीं उभरता है वैसे ही आत्मा रूपी दर्पण पर भी आठ-आठ कर्मों की असंख्य धूल-राशियाँ अनादिकाल से जमी हुई हैं। उन्हीं धूल-राशियों के कारण आत्मा अपने निज स्वरूप ज्ञान-दर्शन एवं आनन्द से अनभिज्ञ रहता है।

'आवश्यक' उस धूल को दूर करने की विधि है। आवश्यक की सतत आराधना से आत्मा निर्मल हो जाती है, शुभ और शुद्ध हो जाती है। आत्मा का शुद्ध स्वरूप ही उसका परमात्मत्व है, उसका ईश्वरत्व है।

आवश्यक के छह सोपान

आवश्यक के छह सोपान हैं। इन छह सोपानों पर क्रमशः आरोहण से आत्म-शुद्धि की यात्रा संपन्न होती है। छह सोपानों का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

1. **सामायिक**–आत्मशुद्धि की साधना के लिए उपस्थित हुए साधक के लिए यह आवश्यक है कि वह सर्वप्रथम समभाव की भूमिका पर प्रतिष्ठित हो। वैर, द्वेष, आक्रोश, प्रलोभन आदि समस्त दुर्भावों से उन्मुक्त होकर शुद्ध समताभाव में स्थित हो। समभाव में स्थित साधक ही निरपेक्ष भाव से अपने गुणों और दोषों का सही-सही आकलन कर सकता है। विषम भावों से भरे हुए व्यक्ति को तो अपने गुण और दूसरों के दोष ही दिखायी देंगे। इसलिए सामायिक को आवश्यक का प्रथम सोपान निर्धारित किया गया है।

सामायिक का अर्थ है–लाभ-अलाभ, सुख-दुख, जीवन-मरण सभी अवस्थाओं में समभाव रखना। सुख हो तो उसमें भी शान्त रहना, दुख हो तो उसमें भी प्रसन्न रहना। ज्ञाता-द्रष्टा भाव में स्थित होकर घटने वाली प्रत्येक घटना को केवल देखना। घटना के साथ बहना नहीं। स्वभाव में स्थिर रहना।

2. **चतुर्विंशतिस्तव**–आवश्यक का द्वितीय सोपान है–भक्ति भाव से भरकर चौबीस जिनदेवों की स्तुति करना। इस जगत में अरिहन्त ही सर्वोच्च स्तुत्य हैं। समता भाव में स्थित

साधक जब अरिहंतों की स्तुति करता है तो अरिहन्तों की अनन्त सद्गुण शृंखला उसके स्वयं के जीवन में साकार होने लगती है। अरिहन्तों की स्तुति से स्तोता स्वयं भी अरिहन्त स्वरूप हो जाता है। वस्तुतः वह स्तुति ही क्या जो स्तोता को स्तुत्य के तुल्य न बनाये। इसीलिए तो जिनोपासक भक्त कवि ने कहा था–

आपकी स्तुति से प्रभो! आप जैसे हों सभी।
जो न अपने सम करे, क्या सेव्य है श्रीमान भी?

कुछ विद्वानों की मान्यता है कि जैन धर्म में 'स्तुति' के लिए कोई स्थान नहीं है। उन महानुभावों के लिए चतुर्विंशति स्तव और शक्रस्तव (नमोत्थुणं के पाठ) का अध्ययन-मनन आवश्यक है जो स्तुति जगत की श्रेष्ठ रचनाएं हैं।

3. वन्दन–आवश्यक का तीसरा सोपान है वन्दन! समताभाव में स्थित साधक चौबीस अरिहंतों के गुणों का चिन्तन करते हुए, उक्त महामार्ग के दाता अपने सद्गुरु के महान उपकार के प्रति अनन्त असीम कृतज्ञता से भर जाता है। गुरुदेव के पावन चरणों पर वह स्वयं को समग्रतः समर्पित कर देता है। भाव-विभोर होकर गुरुदेव के चरणों में वन्दन करता है एवं गुरुदेव की शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक सुख शांति की पृच्छा कर अपने हृदय के मोद को प्रकट करता है। वन्दन नामक 'इच्छामि खमासमणो' सूत्र में शिष्य की कृतज्ञता और भावपूर्ण वन्दना का विलक्षण चित्र उभरता है।

4. प्रतिक्रमण–यह आवश्यक का चतुर्थ सोपान है। प्रतिक्रमण का अर्थ है–पुनः लौटना। मिथ्यात्व से सम्यक्त्व, अव्रत से व्रत, प्रमाद से अप्रमाद, कषाय से अकषाय एवं अशुभ योग से शुभ योग में लौट आने का नाम है प्रतिक्रमण। 'प्रतिक्रमण' आवश्यक का प्राण है। "प्रतिक्रमण आवश्यक" में ग्रहण किए गए समस्त व्रतों में उत्पन्न दोषों की आलोचना की जाती है। प्रतिक्रमण वस्तुतः एक दर्पण है जिसमें झांक कर साधक स्वयं के दोषों का अवलोकन और शोधन करता है। स्वयं द्वारा गृहीत प्रत्येक व्रत को साधक स्मरण करता है, स्मरण के साथ-साथ उसमें उत्पन्न दोषों की आलोचना करता है और उन दोषों को पुनः न दोहराने की प्रतिज्ञा करता है। ईसाई धर्म में स्वीकार करने (कन्फैस) का जो स्थान है, आवश्यक सूत्र में वही स्थान प्रतिक्रमण का है। स्वयं द्वारा स्वयं के दोषों का दर्शन और निरसन प्रतिक्रमण की फलश्रुति है।

5. कायोत्सर्ग–यह आवश्यक का पंचम सोपान है। कायोत्सर्ग में देह की ममता और चंचलता का त्याग किया जाता है। जिन मुद्रा में स्थित होकर साधक जिनेन्द्र देवों और स्वात्मा के गुणों का स्मरण करता है। देह-दशा से ऊपर उठकर आत्म-तल पर विहार करते हुए तथा शुद्धात्म भाव में रमण करते हुए विशिष्ट आत्म-शुद्धि करता है।

6. प्रत्याख्यान—यह आवश्यक का छठा और अन्तिम सोपान है। यह अन्तिम है इसलिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण भी है। इस आवश्यक के द्वारा साधक विशिष्ट त्याग-प्रत्याख्यान अंगीकार करके आत्मा पर जमी कर्मों की धूल को दूर करता है। अपने सामर्थ्य को तोल कर साधक तदनुरूप स्वेच्छिक तप को अंगीकार करता है। तप निर्जरा का प्रधान हेतु है। प्रत्याख्यान द्वारा साधक निर्जरा के पथ पर चरणन्यास करता है और उत्कृष्ट कर्मों की निर्जरा द्वारा अपनी आत्मा को हल्का करता है।

जिस प्रकार अपने पंखों को फड़फड़ा कर पक्षी उन पर जमी धूल को झाड़ लेता है वैसे ही साधक गृहीत व्रतों पर जमी दोषों की धूल को प्रतिक्रमणीय परिस्पंदना द्वारा झाड़ कर भार-रहित हो जाता है। वैसा करने से उसके लिए अध्यात्म के अनन्त आकाश में ऊँची उड़ान भरना सरल हो जाता है। दोषों की धूल के भार के साथ अध्यात्म के आकाश में ऊँची उड़ान संभव नहीं है। इसीलिए महापुरुषों ने आवश्यक का विधान किया है। प्रत्येक जिनोपासक के लिए यह जरूरी है कि वह आवश्यक-आराधना द्वारा प्रतिदिन "निशान्त और दिवसान्त"—इन दोनों संध्याओं में स्वयं का आलेखन-प्रतिलेखन करे। स्वयं का अवलोकन करे। आत्म-आलोचना करे। ऐसा करने से उसकी आत्मा शुद्ध और निर्मल हो जाती है। उसका ज्ञान-दर्शन एवं आनन्द स्वरूप प्रकट हो जाता है। ऐसा होना ही साधना का सुफल है। सिद्धि के अन्तिम सोपान पर साधक का चरणन्यास है।

साधुवाद/कृतज्ञता

सचित्र आगम प्रकाशन की इस मंगलमयी यात्रा में अनेक सहयोगियों का समर्पित सहयोग रहा है। सर्वप्रथम तो अपने श्रद्धेय गुरुदेव उत्तर भारतीय प्रवर्तक श्री पद्मचन्द्र जी म. "भण्डारी" को कृतज्ञता पूर्वक स्मरण करना चाहता हूँ जिन्होंने आगम के इस स्वरूप की परिकल्पना की एवं इस दिशा में कदम बढ़ाने हेतु मुझे प्रेरित किया।

स्वर्गीय श्री श्रीचन्द जी सुराणा 'सरस' ने मेरी इस यात्रा में अपना भरपूर सहयोग दिया। सुराणा जी की आगमीय-आस्था सच में आस्था का विषय है। अपने जीवनकाल में उन्होंने जो साहित्य-साधना की वह ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में सदैव याद की जाएगी।

अंग्रेजी अनुवाद में श्री राजकुमार जैन ने अपनी आस्था को प्रमुदित किया है। अतीत में भी इस दिशा में वे कार्य कर चुके हैं। कई आगमों का उन्होंने सफलता पूर्वक अंग्रेजी अनुवाद किया है। निःस्वार्थ भाव से श्रुत प्रभावना का उनका यह कार्य सदैव स्मरणीय रहेगा।

प्रस्तुत सूत्र के हिन्दी अनुवाद से लेकर मुद्रण तक में विनोद शर्मा (कोमल प्रकाशन) का सहयोग भी विस्मृत नहीं किया जा सकता। संकेत मात्र से उन्होंने इस वृहद् कार्य को अपने हाथों में लिया और सफलता पूर्वक पूरा भी किया। तदर्थ साधुवाद!

और अन्त में मुनिवर वरुण को आशीष देना चाहूँगा जिन्होंने सम्पादन से लेकर प्रकाशन तक के प्रत्येक कार्य में पूरी रुचि लेते हुए इस श्रुतयज्ञ की सम्पन्नता में महत्वपूर्ण कार्य किया। मुनिवर की देव, गुरु, धर्म और श्रुत के प्रति अनन्य आस्था सच में मन को मुदित करने वाली है। इनके स्वर्णिम-स्वर्णिम भविष्य के लिए शत-शत सदाकांक्षाएं।

आशा है साधारण पाठक वर्ग एवं साधक वर्ग इस आगम के स्वाध्याय के माध्यम से अपने स्वाध्याय और साधना को और आगे बढ़ाएगा। इसी में इस श्रुत-यज्ञ की सफलता भी निहीत है।

–प्रवर्तक अमर मुनि

EDITORIAL

In ancient Jain literature, thirty two Agams occupy the most prominent place. In Agams the teachings of Tirthankar Mahavir have been compiled in the form of Sutras (aphorism) by his prime disciples. Some scriptures were composed later on by the Acharyas also but even in them the basic teachings are of Bhagawan Mahavir.

Tirthankar Mahavir stated exactly what he had seen in his omniscience. The Gandhars stored in their memory (intellect) whatever was stated by Tirthankar Mahavir and dextly compiled them in the form of Sutras. For one thousand years that knowledge was transmitted by the guru (teacher) to his disciples and in that manner, this tradition continued but with the passage of time, there was a decline in the faculty of memory among the practitioners of spirituality. Such a decline of memory naturally affected Agam literature. It was not easy to retain in memory the vast Agam literature since there was a decline in faculty of memory. Appearance of famine at different intervals was also the cause of void in Scriptures. Many experts in literature pertaining to Scriptures passed away. Several groups of Shraman moved to distant places in Southern India. Since Jain monks could not have mutual discussions, there was a great loss in knowledge of scriptures and such a loss became prominent in the form of a void in such literature. Ultimately 980 years after the nirvana of Bhagvan Mahavir. Acharya Devardhi gani called a conference of monks at Vallabhi in order to stop this trend of decline in scriptural literature. Several learned monks took part in the conference under the direction of Devardhi gani kshamashraman. For the first time sutras were reduced in writing. Since Agams took the form of books, this literature took a specific form and the trend of further omission in lesson pertaining to Agams stopped.

Availability of thirty two Agams at present is the result of far sighted approach of Devardhigani Kshamashraman [so in Jain community Devardhigani] is considered a great personality.

Revolutionary Vision of Gurudev

Thirty two Agams are the pillars of Spiritual knowledge. In the past, innumerable persons have attained salvation with the help of their deep study. Even in current period several practitioners are moving ahead on the path leading to salvation by their study. Many years earlier, my spiritual Guru Bhandari Padmachand ji Maharaj had the idea that Agams should be available in the language of the common man. He then told me: Amar, do something that Agamic knowledge should not remain confined only to the learned. It should be accessible even to the average student. Even young practitioner (student) may also study them with same interest as is seen among the learned. It was gurudev who initiated the plan for publication of Agams illustrated with pictures, so as to increase the interest of student in them. When this work was started under the direction of Gurudev, after seeing the language and pictures in the publication, gurudev said. 'Amar! This is a shipendous task I want that this work should be really unique and accessible to all. So it is essential that there should be translation in simple English language alongwith the Hindi version. I felt overjoyed at this plan but I was feeling worried also because of my limitation in respect of knowledge of English. I expressed my worry to gurudev. Gurudev said, 'The momentous task is not done single-handed. It needs cooperation of several persons. You do to the extent you can do. You get the assistance of those who have command in English for that which you cannot do yourself.

This blessing of gurudev added strength to my courage. Scholars in English were contacted for this purpose. Slowly and gradually cooperation increased. Along with Hindi version commendable English rendering and pictures illustrating the meaning gave a good look to the publication of Agams. During the last two decades such a literature in the form of 26 Agams has been published. The dream of visionary gurudev is almost at the stage of completion. In this very chain, Avashyak sutra is being published. The reader is himself aware of the great utility and popularity of these publications. These Agams are studied and taught in many western countries such as U. K., U.S.A., and Germany. The western world is wonder struck to go through the elaborate description in of Jain thought. It has further increased their interest and faith in it. In certain fields, science is yet doing research at an elementary

stage but western scholars are enchanted to see detailed narration about these areas in Agam literature. The entire credit for it goes to the realistic contemplation of respected gurudev that he thought of presenting Agams in simple hindi, english and properly illustrated.

Shri Avashyak Sutra

Avashyak sutra occupies a prominent place in Agam literature. In it there are aphorisms for purification of spiritual practices of Jain ascetic and Shravaks.

The life style of Jain Shramans and shravaks is not unprincipled like that of ordinary saints (mendicants) or of common householder. His life is regulated by certain principles and limitations as mentioned in the code. His activities namely standing, sitting, sleeping, getting up, taking meals and the like are all according to the code well defined. He practices the vows of non-violence, truth, non-stealing, celibacy and non-attachment to possessions meticulously. In order to practice these vows properly, he follows many other principles. He remains completely vigilant in practicing such principles and limitations. In case even for a moment slackness occurs in practices of those principles and limitations, his vow gets adversely affected. His principles get damaged and then on the basis of adversely affected limitation he cannot go ahead on the path of salvation.

Jain shramans/shravak is extremely conscious about these limitations. He is always vigilant that the vows and limitations accepted by him should not be distorted. Sometimes due to the prevailing time period or the effect of past karmas, the vow or the limitation may get transgressed. There may be lack of proper carse in standing, sitting, talking, sleeping and the like. In order to remove these effect of fault arising from careless or slackness there is Avashyak sutra. In it there is compilation of all sutras (aphorisms that pertain to purification of all vows, great vows (mahavrat) and limitations. Simultaneously the omniscient has laid down that the practitioner should essentially practice this sutra twice a day, namely before early morning and immediately after sunset till he attains liberation.

The followers of Vedas recite prayer in the evening. The Buddhists do Upasana. The Muslims practice prayer called Namaz. The Christian seek pardon in prayer. The practice of Avashayak has the same place in Sharman tradition. In it the essential do's and do not's for the practitioner of Jain faith have been mentioned. So it is called Avashyak Sutra. One may miss sometimes the practice (or recitation) of other sutras but it is compulsory for him to practice Avashyak Sutra.

The physical body is cleaned with water. Similarly the soul is cleaned with meticulous practice of Avashyak sutra. In fact infinite knowledge, infinite vision, unlimited ecstatic happiness are the natural characteristics of soul. Heat is always there in the fire. Coolness is the very nature of water. Similarly knowledge, vision and ecstatic happiness form the fundamental nature of soul. Knowledge and soul are not two separate entities. Where there is soul; there is always knowledge vision and ecstatic happiness in its complete form because vision and soul, ecstatic pleasure and soul are also not separate entities. But the dust of Karmic matter has covered the knowledge, vision and ecstatic happiness which are the very nature of the soul. Just as a person cannot properly see his reflection in the mirror when great dust is attached to it, similarly since time immemorial, innumerable layers of dust of karmic molecules is attached to the soul. Due to the presence of that karma dust, the soul is ignorant about its real nature namely right knowledge, right vision and ecstatic happiness.

Avashyak Sutra (Aphorism) is the spiritual practice for removing that karmic dust. With the regular practice of Avashyak, the soul becomes spotless, pure and good. The pure form of soul is the godly nature, the sublime form.

Six Step of Avashyak

There are six steps of Avashyak. The journey of self-purification is completed by gradually moving ahead on this ladder of six rungs. The nature of six steps is as under:

1. Samayik: It is essential for the candidate who has presented himself for the practice of self-purification that first of all, he should practice the state of equanimity. He should detach himself from all sorts of enmity, hatred, anger, greed and the like even in his thoughts. Stabilizing himself in state of equanimity, he should look into his short-coming and virtues properly in an impartial manner. A person with perverse contemplation only looks at the faults of others and virtues of his own self. Keeping this fact in view, the first step of Samayik has been defined as Samayik- the state of equanimity.

The interpretation of Samayik is to remain in a state of equanimity at the time of gain, loss, comfort, discomfort, life, death and all suchlike states. One should remain calm both in the state of pleasure and that of pain. He should simply look at every event as knower and perceiver. He should not get affected or attached to any event. He should always remain studded in his very intrinsic nature.

2. Chatur-Vinshtistav: Hymn in appreciation of 24 Tirthankars. The second step of Avashyak is to eulogize the omniscient in a state of complete devotion. In this universe only the omniscient (Arihant) deserves utmost appreciation. When the practitioner in a state of equanimity appreciates Arihants, the chain of infinite virtues appears itself in his very life. While appreciating arihants, the person himself also becomes like an arihant. In fact, that hymn is meaningless which does not transform the person reciting the hymn as one worthy of appreciation. So a devoted poet has said, 'O Lord! What is the fun in recitation about your appreciation in case the one doing it is not transformed like you?'

Some scholars believe that appreciation has no place in Jain thought. It is essential for them to study properly Chatruvinshtistav and Shakrastav (Namothunum) which are the worthy products depicting the state of appreciation.

3. Vandan: The third step of Avashyak is vandan—to bow with a sense of humility. The practitioner stabilized in the state of equanimity reflects upon the virtues of 24 Thirtankars then he becomes highly impressed by the useful teachings of the great spiritual master who has shown him the path leading to salvation. He feels extremely indebted to him. He placed his head at the feet of spiritual master in a state of great devotion. He bows to him with a sense of gratitude. He enquires about the physical, mental, and spiritual health of the master and ensures that everything is all right. He expresses his happiness when he knows that all is well. In the aphorism of "ichhamikhamasmano" a part of which pertains to vandan (bowing) the humility of the disciple is fully depicted.

4. Pratikraman: This is the fourth step of Avashyak. Pratikraman literally means to come back again. It means to return to right vision (Samayaktava) from wrong vision (Mithyatava), from state of non-restriction to that of restriction of vows, from state of slackness to that of vigilance, from attachment to possessions to dispassionate state, from demerit mental, physical and verbal state to meritorius state. Pratrikraman is the very gist of Avashyak. In Pratikraman Avashyak, all the faults committed in the practice of all the vows are looked into and one repents about them—feels sorry about them. He recollects each and every vow that he had accepted and simul- taneously criticise, the faults that he may have committed in practicing that vow. He makes a resolve that he shall not repeat that fault in future. In Chrishanity the devotee does confessions. In Avashayak Sutra the similar practice is in Pratikraman. The result of Pratikraman is to look into the faults in practice of vows or resolves and to feel sorry about them and to make them fruitless.

5. Kayotsarg: This is the fifth step of Avashyak. In Kayotsarg one discards attachment to the body and also refrains from any movement in the body. Keeping himself stabilized in the posture of an omniscient he recollects the virtues of omniscient (Arihants) and also of his own soul. He detaches himself from physical state and reflects on his soul. Thus he experiences the pure state of the soul and tries to maintain it so as to ultimately purify his soul completely.

6. Pratyakhyan: This is the sixth and last step of Avashyak. It is the last or the final one. So it is the most important one. Through this step of Avashyak, the practitioner accepts detachment from certain things and activities in order to remove the karmic dust from the soul. Keeping his capability in mind, the practitioner voluntarily accepts the rules of austerities. Austerity is the primary factor in shedding the karmic matter. By accepting pratyakhyan, the practitioner moves ahead on the path leading to removal of karmic effect. By greatest shedding of karmic matter, he makes his soul light. Just as a bird removes the dirt from his wings by fluttering his feathers, similarly through pratikarman, the practitioner removes the karmic dust from the vows accepted by him, then he cleans his soul. Then it becomes easy for him to move ahead in infinite span of spirituality. With the heavy load of dust of faults it is not possible to arrive at the great heights of spirituality. So the great seers have enumerated the provision of Avashyak. It is essential for every follower of Arihantas to practice Avashyak daily in a quiet manner in the evening as well as in the morning wherein he should closely look into his activities himself at the end of the day and before the end of night. He should examine his activities himself. He should practice self-criticism through self-introspection. By this process, his soul becomes pure and spotless. Then his real knowledge, perception and natural state of ecstatic happiness appears. This is the good result of this practice. He then treads on the final step leading to salvation.

Appreciation: Several devotees have provided their valuable assistance in the publication of illustrated Agams. First of all with gratitude I want to recollect the name of my gurudev ji who thought of the form of such a literature and inspired me in this direction first of all to go ahead with this project.

Late Shri Srichand Surana 'saras' assisted me a lot in this project. The faith of Shri Surana in Agam literature is the subject of real devotion. The services provided by him during his life time towards literature shall always he remembered in is historical perspective.

About English translation, Shri Rajkumar Jain has abundantly expressed his faith.

Even in the past he has done this work. He has translated many Agams in English successfully. His devoted selfless service in this direction shall always be remembered.

The assistance of Shri Vinod Sharma of 'Komal Prakashan' in respect of the sutra can also not be ignored. He was just requested about it and he gladly accepted the stupendous work and completed it successfully. His services are worthy of appreciation.

In the end, I would like to offer my blessings to Varun Muni, my devoted disciple who with great interest looked into editing and publishing of the Agam. His services in this direction are worthy of appreciation. The faith of him in Deva, guru and dharma provides a great pleasure to me. I wish that in future he may flourish in spirituality at a fast rate.

—Pravartak Amar Muni

हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन

'श्री आवश्यक सूत्र' पाठकों के हाथों में समर्पित करते हुए हार्दिक हर्ष की अनुभूति कर रहा हूं। यूं तो मैं विगत कई वर्षों से मेरे श्रद्धेय गुरुदेव श्रुत आचार्य प्रवर्तक भगवंत श्री अमर मुनि जी महाराज के चरणों में रहकर शास्त्र-शृंखला के अनुवादन, संपादन और प्रकाशन के कार्यों से जुड़ा रहा हूं, परंतु इस आगम के ये सभी दायित्व मुझे पूर्व आगमों की अपेक्षा अधिक तत्परता से निभाने पड़े हैं। श्रद्धेय गुरुदेव की अस्वस्थता के मध्य इन दायित्वों को गुरु-निर्देशन में मैंने पूर्ण करने का प्रयास किया है। इस सूत्र पर कार्य करते हुए मुझे प्रथम बार महसूस हुआ कि आगम संपादन-अनुवादन-प्रकाशन का कार्य कितना दुरूह है। परंतु यह भी सच है कि इस दुरूहता में भी मैंने बहुत मिठास और सघन आत्म-तोष को पाया है। श्रद्धेय गुरुदेव के इस भागीरथ-संकल्प में मैं एक छोटे-से सहयोगी के रूप में जुड़कर बहुत-बहुत आह्लाद अनुभव कर रहा हूं।

सुना था कि सद्गुरु का आशीष अकाट्य और अक्षर होता है। पहले केवल सुना था, अब आगम प्रकाशन यात्रा पर कदम-दर-कदम बढ़ते हुये मैंने उक्त सुने हुए सिद्धान्त को अपने जीवन में सच होते हुए अनुभव किया है। निःसन्देह सद्गुरु के आशीष में ईश्वर का सन्देश निहीत होता है।

'श्री आवश्यक सूत्र' का बत्तीस आगमों के क्रम में अन्तिम स्थान है। यह अन्तिम क्रम पर इसलिए अवस्थित है क्योंकि इसमें बत्तीस आगमों में वर्णित आचार की शुद्धि के सूत्रों का संकलन है। इसके चिन्तन-मनन-आराधन से साधक की साधना शुद्ध और उज्ज्वल होती है। शेष आगमों का स्वाध्याय प्रतिदिन अनिवार्य नहीं है, परन्तु प्रस्तुत आगम का स्वाध्याय और

आराधना प्रतिदिन दो बार आवश्यक है। संभवतः इसीलिए इस आगम को 'आवश्यक' नाम प्रदान किया गया है। प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के शासनकाल का कोई भी श्रमण या श्रावक दिवस की किसी भी एक संध्या में यदि आवश्यक सूत्र की सविधि आराधना नहीं करता है तो वह अपने श्रमणत्व एवं श्रावकत्व से भ्रमित हो जाता है। प्रभात में सूर्योदय से पूर्व एवं शाम को सूर्यास्त के पश्चात् प्रत्येक श्रमण एवं श्रावक के लिए इस सूत्र का सविधि स्वाध्याय अनिवार्य है। आवश्यक सूत्र को सविधि हृदयंगम किए बिना किसी भी मुमुक्षु को दीक्षा (बड़ी दीक्षा) नहीं दी जा सकती है। इसी तथ्य से प्रस्तुत सूत्र के महात्म्य को समझा जा सकता है।

प्रस्तुत आगम के प्रत्येक सूत्र और प्रत्येक पद पर श्रद्धेय गुरुदेव के ज्ञान-गांभीर्य की छाप है। गुरुदेव बोलते गए और मैं लिखता गया, बस इतना ही मेरा कार्य मानिये। यह कार्य करते हुए कई स्खलनाएं मुझसे हुई होंगी, विज्ञ पाठकजन मुझे क्षमा करेंगे ऐसा मुझे विश्वास है।

चित्रांकन में श्री संजय सुराणा का सहयोग पूर्ववत् सराहनीय रहा है। इनके निर्देशन में तैयार कराए गए चित्र सदैव सुरुचिपूर्ण और बहुत ही भव्य रहे हैं। अंग्रेजी अनुवाद में आदरणीय श्री आर.के. जैन का एकलव्ययी समर्पण सचमुच श्रद्धा का विषय है। इनकी गुरु-भक्ति और आगम-निष्ठा सच में निष्ठा का विषय है।

मेरे अभिन्न हृदय श्री विनोद शर्मा जी के सहकार को भी मैं नजरंदाज नहीं कर सकता। संपादन एवं प्रूफ संशोधन से लेकर प्रकाशन तक के प्रत्येक दायित्व को इन्होंने जिस अपनत्व से संपन्न किया है, उससे मेरा हृदय गद्‌गद है।

और अंत में—सचित्र आगम संपादन-प्रकाशन के इस महत्कार्य से जुड़े सभी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सहयोगियों को हार्दिक साधुवाद प्रदान करते हुए अपनी लेखनी को विराम दे रहा हूं।

—वरुण मुनि 'अमर शिष्य'

ACKNOWLEDGEMENT

While prsenting 'Shri Avashyak Sutra' to the readers, I am experiencing an immense happiness. I am associated with the task relating to translation, editing and publishing of the series of Illustrated scriptures for the last many years under the guidance of Shrut Acharya Shri Amar Muni Ji Maharaj. But in case of this canon, I had to discharge all the responsibilities more meticulously, while discharging this responsibility. I have realized how difficult is the task of translation, editing and publication of Agam. Still I have experienced a great satisfaction in it. I am feeling a great pleasure in being associated in this great task of reverend Gurudev.

It was heard that the blessing of the spiritual master can never go in vain. Earlier it was simply heard but now it has been experienced in life in this project of Agam Publication. Indeed in the blessings of gurudev lies the message of the omniscient.

Shri Avashyak Sutra is the last one among the thirty two Agams. It is at the end in this order because in it is the completion of the aphorism relating to purification of conduct as narrated in the thirty two Agams. Through meditation, study and practice of these aphorisms the spiritual practice of the person concerned becomes magnified and spotless. It is not essential to study other thirty one Agams daily. But the study and practice of this Agams is to be essentially done daily. Probably because of this fact, this Agam is called Avashyak. In the period of influence of first and the last Tirthankar, in case any jain saint (shraman) or shravak does not practice it in any evening or morning as defined in the code, he goes astray in spiritual practice. It is essential for every Jain monk and Shravak to recite it properly every day before sunrise in the morning and after sunset in the evening. No one is initiated in monkhood unless the person concerned has memorized Avashyak Sutra. This fact clearly defines the essential nature of this Agam.

Every line and every aphorism of the present Agam depicts the scholarly knowledge of Guruji. Guruji had been narrating and I had been writing it. I might have made many mistakes. I hope the readers shall pardon me for the same.

The assistance of Shri Sanjay Surana in the task of Illustration is commendable. The pictures prepared under his direction have been always appreciated as worthy. English translation has been done by Shri R.K. Jain. His selfless contribution is praise worthy. His devotion towards Guruji and faith in canon is really unique.

I cannot ignore the contribution of Shri Vinod Sharma, he has discharged properly all the function right from editing, proof reading and publication.

In the end I am grateful to all who have directly or indirectly assisted in publication of this canon.

—**Varun Muni 'Amar Shishya'**

आवश्यक सूत्र

अनुक्रमणिका

❑ **प्रथम अध्ययन : सामायिक** 1

सामायिक आवश्यक 5

वन्दन-सूत्र 5

नमस्कार सूत्र 8

आलोचना सूत्र 12

उत्तरीकरण सूत्र 15

चतुर्विंशति जिन स्तव सूत्र 17

प्रणिपात सूत्र 20

आवस्सही सूत्र 22

सामायिक सूत्र 23

संक्षिप्त प्रतिक्रमण सूत्र 27

ज्ञान के अतिचारों का पाठ 31

दर्शन-अतिचार आलोचना 34

चारित्र-अतिचार आलोचना सूत्र 36

भाषा-समिति-अतिचार आलोचना 37

एषणा समिति अतिचार आलोचना 38

निक्षेपणा समिति अतिचार आलोचना 45

परिष्ठापनिका समिति अतिचार आलोचना 46

गुप्ति विषयक अतिचार 47

मन गुप्ति अतिचार आलोचना 47

वचन गुप्ति अतिचार आलोचना 48

काय-गुप्ति अतिचार आलोचना 49

छह काय संबंधी अतिचार आलोचना 49

पृथ्वीकायिक विषयक आलोचना 49

अप्काय विषयक आलोचना 50

तेजस्काय विषयक आलोचना 51

वायुकाय विषयक आलोचना 51

वनस्पतिकाय विषयक आलोचना 52

द्वीन्द्रिय अतिचार आलोचना 52

त्रीन्द्रिय अतिचार आलोचना 53

चतुरिन्द्रिय अतिचार आलोचना 53

पञ्चेन्द्रिय अतिचार आलोचना 54

सत्य महाव्रत अतिचार आलोचना 55

अदत्तादान विरमण महाव्रत अतिचार आलोचना 55

ब्रह्मचर्य महाव्रत अतिचार आलोचना 56

अपरिग्रह महाव्रत अतिचार आलोचना 57

रात्रि-भोजन विरमण अतिचार आलोचना 57

सामूहिक अतिचार आलोचना 58

तैंतीस आशातना आलोचना 58

अठारह पाप-स्थानों की आलोचना 59

मूलगुण-उत्तरगुण विषयक सामूहिक आलोचना 60

सामूहिक अतिचार आलोचना 61

श्रुत अतिचार आलोचना 61

❑ **द्वितीय अध्ययन : चतुर्विंशति-स्तव** **63**
चतुर्विंशति-स्तव आवश्यक 65
श्री चतुर्विंशति जिन स्तव 65
❑ **तृतीय अध्ययन : वन्दन** **67**
वन्दन आवश्यक 69
इच्छामि खमासमणो 69
❑ **चतुर्थ अध्ययन : प्रतिक्रमण** **74**
प्रतिक्रमण आवश्यक 78
श्रमण-सूत्र 78
सामायिक सूत्र 79
मंगल सूत्र 79
सामूहिक आलोचना सूत्र 80
ईर्यापथ सूत्र 80
शयन संबंधी अतिचारों की आलोचना 81
शय्यासूत्र 81
गोचरचर्या सूत्र 82
स्वाध्याय एवं काल-प्रतिलेखना सूत्र 85
तेंतीस बोल का पाठ 86
1. असंयम प्रतिक्रमण 93
2. बंधन प्रतिक्रमण 94
3. दण्ड प्रतिक्रमण 94
4. गुप्ति प्रतिक्रमण 94
5. शल्य प्रतिक्रमण 94
6. गौरव प्रतिक्रमण 94
7. विराधना प्रतिक्रमण 95
8. कषाय प्रतिक्रमण 95
9. संज्ञा प्रतिक्रमण 95
10. विकथा प्रतिक्रमण 95
11. ध्यान प्रतिक्रमण 96
12. क्रिया प्रतिक्रमण 96
13. काम-गुण प्रतिक्रमण 97
14. महाव्रत प्रतिक्रमण 97
15. समिति प्रतिक्रमण 97
16. जीव निकाय प्रतिक्रमण 98
17. लेश्या प्रतिक्रमण 98
18. भय-स्थान प्रतिक्रमण 99
19. मद-स्थान प्रतिक्रमण 99
20. ब्रह्मचर्य-गुप्ति प्रतिक्रमण 100
21. श्रमण-धर्म प्रतिक्रमण 100
22. उपासक प्रतिमा प्रतिक्रमण 101
23. भिक्षु प्रतिमा प्रतिक्रमण 102
24. क्रिया-स्थान प्रतिक्रमण 104
25. भूतग्राम प्रतिक्रमण 105
26. परमाधार्मिक प्रतिक्रमण 105
27. गाथा षोडषक प्रतिक्रमण 105
28. सतरह असंयम प्रतिक्रमण 106
29. अब्रह्म प्रतिक्रमण 106
30. ज्ञाताध्यान प्रतिक्रमण 106
31. असमाधि-स्थान प्रतिक्रमण 107
32. शबल दोष प्रतिक्रमण 107
33. परीषह प्रतिक्रमण 108
34. सूत्रकृतांग-अध्ययन प्रतिक्रमण 109
35. देव प्रतिक्रमण 109
36. भावना प्रतिक्रमण 109
37. दशाकल्प-व्यवहार उद्देशक काल प्रतिक्रमण 110
38. अनगार गुण प्रतिक्रमण 110
39. आचार-प्रकल्प प्रतिक्रमण 111
40. पापश्रुत प्रसंग प्रतिक्रमण 113
41. महामोहनीय-स्थान प्रतिक्रमण 113
42. सिद्धगुण प्रतिक्रमण 114
43. योगसंग्रह प्रतिक्रमण 115
44. आशातना प्रतिक्रमण 116

निर्ग्रन्थ प्रवचन सूत्र 145
पांच पदों की वन्दना 150
अरिहंत वन्दना 150
सिद्ध-वन्दना 151
आचार्य-वन्दना 153
उपाध्याय-वन्दना 154
साधु-वन्दना 155
गुरु-वन्दना 157
सामूहिक वन्दना 159
आयरिय सूत्र 160
क्षमापना सूत्र 161
❑ पंचम अध्ययन : कायोत्सर्ग 162
कायोत्सर्ग आवश्यक 166
❑ षष्ठ अध्ययन : प्रत्याख्यान 168
प्रत्याख्यान आवश्यक 172
प्रत्याख्यान के पाठ 173
नमस्कार पूर्वक मुहूर्त्त प्रत्याख्यान सूत्र 173
पौरुषी प्रत्याख्यान सूत्र 175
सार्ध पौरुषी प्रत्याख्यान सूत्र 176
पूर्वार्द्ध-प्रत्याख्यान सूत्र 176
निर्विकृतिक प्रत्याख्यान सूत्र 177
एकासन युक्त विगय प्रत्याख्यान सूत्र 179
एकासन प्रत्याख्यान सूत्र 180
एकस्थान (एकलठाणा) प्रत्याख्यान सूत्र 182
आयम्बिल प्रत्याख्यान सूत्र 183
चौविहार उपवास सूत्र 185
तिविहार उपवास सूत्र 185
पानाहार पौरुषी प्रत्याख्यान सूत्र 186
दिवसचरिम प्रत्याख्यान सूत्र 187
अभिग्रह सूत्र 188
देशावकाशिक अभिग्रह सूत्र 189
प्रत्याख्यान पारणा सूत्र 190
अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना सूत्र 192
नमस्कार सूत्र 193
आलोचना सूत्र 193

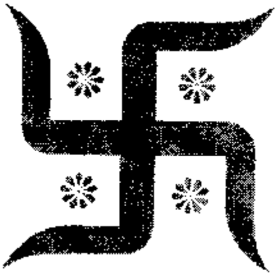

द्वितीय खण्ड

श्रावक आवश्यक सूत्र

❑ **प्रथम आवश्यक : श्रावक प्रतिक्रमण**	**203**
सम्यक्त्व सूत्र	203
आवस्सही सूत्र	205
सामायिक सूत्र	205
संक्षिप्त प्रतिक्रमण सूत्र	207
प्रथम अणुव्रत विषयक अतिचार आलोचना	209
द्वितीय अणुव्रत विषयक अतिचार आलोचना	210
तृतीय अणुव्रत विषक अतिचार आलोचना	210
चतुर्थ अणुव्रत विषयक अतिचार आलोचना	211
पंचम अणुव्रत विषयक अतिचार आलोचना	212
षष्ठ व्रत विषयक अतिचार आलोचना	213
सप्तम व्रत विषयक अतिचार आलोचना	213
अष्टम व्रत विषयक अतिचार आलोचना	216
नवम व्रत विषयक अतिचार आलोचना	216
दशम व्रत विषयक अतिचार आलोचना	217
एकादशम व्रत विषयक अतिचार आलोचना	218
द्वादशम व्रत विषयक अतिचार आलोचना	219
संलेखना विषयक अतिचार आलोचना	220
समुच्चय अतिचार आलोचना सूत्र	220
सर्व अतिचार आलोचना सूत्र	221
❑ **द्वितीय आवश्यक : चतुर्विंशति-स्तव**	**223**
❑ **तृतीय आवश्यक : वन्दन**	**224**
❑ **चतुर्थ आवश्यक : प्रतिक्रमण**	**225**
दर्शन (सम्यक्त्व) का पाठ	225
प्रथम अणुव्रत : स्थूल प्राणातिपात विरमण	227
द्वितीय अणुव्रत : स्थूल मृषावाद विरमण	229
तृतीय अणुव्रत : स्थूल अदत्तादान विरमण	233
चतुर्थ अणुव्रत : स्वदार-संतोष	234
पंचम अणुव्रत : स्थूल परिग्रह परिमाण	236
छठा व्रत : दिशा परिमाण	238
सातवां व्रत : उपभोग-परिभोग परिमाण	240
आठवां व्रत : अनर्थदण्ड विरमण	243
नौवां व्रत : सामायिक	245
दसवां व्रत : देशावकाशिक	246
ग्यारहवां व्रत : प्रतिपूर्ण पौषध	249
बारहवां व्रत : अतिथि-संविभाग	251
समुच्चय सूत्र	253
तस्स धम्मस्स सूत्र	254
❑ **पंचम आवश्यक : कायोत्सर्ग**	**255**
आवस्सही सूत्र	255
❑ **षष्ठ आवश्यक : प्रत्याख्यान**	**257**
परिशिष्ट	258
श्रावक आवश्यक सूत्र : विधि	258
सामायिक की विधि एवं ३२ दोष	261
सामायिक समाप्ति सूत्र	265
सामायिक समाप्ति का हिन्दी पाठ	266
सामायिक के 32 दोष	267
मन के 10 दोष	267
वचन के 10 दोष	269
काय के 12 दोष	270
सामायिक का फल	272

OOO

AAVASHYAK SUTRA

CONTENTS

- **FIRST CHAPTER : SAMAYIK** 3
- Samayik Aavashyak 5
- Vandan Sutra 5
- Namaskar Sutra 8
- Aalochana (Self-criticism Sutra) 12
- Utrari Karan Sutra 15
- Chaturvinshti Stav (Praise of 24 Tirthankars) 17
- Pranipat Sutra 20
- Aaavasahi Sutra 22
- Samayik Sutra 23
- Concise Pratikrama (Self-analysis and Repentance) 27
- Sutra of Atichar (Partial Transgressions) Concerning Scriptural Study 31
- Sutra Relating to Pratikraman of Partial-transgression in Darshan 34
- Sutra Relating to Self-criticism of Partial-transgressions in Conduct 36
- Self-criticism of Transgression in Carefulness of speech 37
- Self-criticism of Transgression in Practice of Collecting Bhiksha 38
- Self-criticism of Faults of Nikshepan Samiti 45
- Self Criticism of Faults of Disposal 47
- Partial-transgressions relating to Preservations (Guptis) 48
- Self-criticism of Partial-transgressions of Mind 48
- Self-criticism of Partial-transgression of Preservations in Speaking 49
- Self-criticism of Partial-transgression of Preservations in Body 50
- Self-criticism of Partial-transgression Concerning Six Types of Living Beings 50
- Self-criticism of Partial-transgression Concerning Earth-bodied Beings 50
- Self-criticism of Partial-transgression Concerning Water-bodied Beings 50
- Self-criticism of Partial-transgression Concerning Fire-bodied Beings 51
- Self-criticism of Partial-transgression Concerning Air-bodied Beings 51
- Self-criticism of Partial-transgression Concerning Vegetation-bodied Beings 52
- Self-criticism of Partial-transgression Concerning Two-sensed Beings 53
- Self-criticism of Partial-transgression Concerning Three-sensed Beings 53

- Self-criticism of Partial-transgression Concerning Four-sensed Beings 54
- Self-criticism of Partial-transgression Concerning Five-sensed Beings 54
- Self-criticism of Partial-transgression in Full Vow of Truth 55
- Self-criticism of Partial-transgression in Full Vow of Non-stealing 56
- Self-criticism of Partial-transgression in Full Vow of Chastity (Braham Charya) 57
- Self-criticism of Partial-transgression in Full Vow of Worldly Non-attachment 57
- Self-criticism of Partial-transgression in Full Vow of Non-consumption at Night 58
- Self-criticism of All Partial-transgressions (Atichar) 58
- Self-criticism of Thirty Three Lackings in Porper Care (Ashatana) 59
- Self-criticism of Eighteen Sins 59
- Self-criticism of Partial-transgressions in Primary Rules and Secondary Rules 60
- Self-criticism of All Partial-transgressions 61
- Self-criticism of All Partial-transgression in Scriptural Study 61

❑ **SECOND CHAPTER : PRAISE OF 24 TIRTHANKARS** **64**
- Chaturvinshti Stava Aavashyak 65
- Hymn in Praise of 24 Tirthankars 65

❑ **THIRD CHAPTER : VANDAN** **68**
- Vandan Aavashyak 69
- Ichhami Khama Samano 70

❑ **FOURTH CHAPTER : PRATIKRMAN AAVASHYAK** 76
- Shraman Sutra 78
- Samayik Sutra 79
- Mangal Sutra 79
- Sutra of Total Self-criticism (Aalochana) 80
- Sutra About Proper Care in Walking 80
- Self-criticism of Partial Transgressions Relating to Bed Rest 81
- Sutra Relating to Seeking of Bhiksha (Alms) 83
- Sutra Relating to Study and Proper Care of Time 85
- Lesson of Thirty Three Directions 86

1. Pratikraman of Non-Restraint 119
2. Pratikraman of Bondage 119
3. Pratikraman of Dandas 119
4. Pratikraman of Preservations (Guptis) 119
5. Pratikraman of Thorns (Shalyas) 119
6. Pratikraman of Prides 120
7. Pratikraman of Digressions 120
8. Pratikraman of Passions 120
9. Pratikraman of Natural Desires (Sangya) 120
10. Pratikraman of Loose Talk 121
11. Pratikraman of Meditations 121
12. Pratikraman of Activities 121
13. Pratikraman of Lust 122
14. Pratikraman of Full Vows 122
15. Pratikraman of Proper Care 122
16. Pratikraman of Living Beings Faculty 123
17. Pratikraman of Thought-colouns (Leshyas) 123

18. Pratikraman of State of Fear 124
19. Pratikraman of States of Pride 125
20. Pratikraman of Preservation of Chastity 125
21. Pratikraman of Shraman Conduct 126
22. Pratikraman of Resolves of Upasak (House-holder Devotee) 126
23. Pratikraman of Resolves of Bhikshu 128
24. Pratikraman of Resolves of State of Acitivity 129
25. Pratikraman of Resolves of Bhoot Gram 130
26. Pratikraman of Resolves of Parma Dharmik Gods 130
27. Pratikraman of Resolves of Sixteen Gatha 131
28. Pratikraman of Resolves of Seventeen Non-restraints 131
29. Pratikraman of Resolves of Non-chastity 132
30. Pratikraman of Resolves of Nineteen Charters of Gyata Sutra 132
31. Pratikraman of Resolves of State of Non-samadhi 132
32. Pratikraman of Resolves of Major Faults 133
33. Pratikraman of Resolves of Troubles (Parisheh) 133
34. Pratikraman of Resolves of Study of Sutrakritang 134
35. Pratikraman of Resolves of Devas 134
36. Pratikraman of Resolves of Meditations 134
37. Pratikraman of Resolves of Dasha Kalp, Vyavhar Uddeshan Kaal 135
38. Pratikraman of Resolves of Traits of Monks 135
39. Pratikraman of Resolves of Aachar Prakalp 136
40. Pratikraman of Resolves of Study of Prohibited Literature 137
41 Pratikraman of Resolves of Sates of Gross Delusion 138
42. Pratikraman of Resolves of Quality of Liberated Souls (Siddhas) 139
43. Pratikraman of Resolves of Yog Samgreh 140
44. Pratikraman of Resolves of Aashatana 141

- Sutra Relating to Nirgranth Pravachana 145
- Salutation to Souls of Five Status 150
- Salutation to Arihantas (Omniscient) 150
- Salutation to Siddhas 152
- Salutation to Acharyas 153
- Salutation to Upadhyayas 155
- Salutation to Sadhus 156
- Salutation to Gurus 158
- Salutation to All Collectively 159
- Aayariya Sutra 160
- Sutra of Seeking Pardon (Kshamapana) 161

❑ **FIFTH CHAPTER : KAYOTSARGA 164**
- Kayotsarga Aavashyak 167

❑ **SIXTH CHAPTER : PRATYAKHYAN AAVASHYAK 170**
- Lesson of Restraint (Pratyakhyan) 173
- Lesson of Restraint for One Quarter of the Day 173
- Lesson of Restraint for One and a Half Quarter 175
- Lesson of Restraint for First Half of the Day 176
- Lesson of Restraint Upto Nivi (Taking only loaf and water) 177

- Lesson of Restraint for taking Food only Once (May contain fat) 179
- Lesson of Restraint for Taking Food only Once on that Day 180
- Lesson of Restraint for Observing Ayambil (Prohibition of fat salt) 183
- Lesson of Restraint from Food and Water for 24 Hours 185
- Three Types Food Restraint Sutra 185
- Lesson of Restraint upto Paanahar Paurusee 186
- Sutra of Restraint 48 Minutes before Sunset for Entire Night 187
- Sutra of Restraint Coupled with Undisclosed Restriction about Procedure for Seeking Food (Abhigre) 188
- Sutra of Deshavakashik Abhigreh 189
- Sutra of Conclusion of Restraint 190
- Sutra of Last Restraint when Nearing Death 192
- Namaskar Sutra 193
- Sutra of Self-criticism (Aalochan) 193

AAVASHYAK SUTRA
(SHRAVAK PRATIKRAMAN)

- **FIRST CHAPTER : SHRAVAK PRATIKRAMAN 203**
- Sutra about Right Belief (Samyaktva) 203
- Aavassahi Sutra 205
- Samayik Sutra 205
- Concise Pratikraman Sutra 207
- Self-criticism of Partial-transgressions in Practice of First Partial Vow 209
- Self-criticism of Partial-transgressions in Practice of Second Partial Vow 210
- Self-criticism of Partial-transgressions in Practice of Third Partial Vow 210
- Self-criticism of Partial-transgressions in Practice of Fourth Partial Vow 211
- Self-criticism of Partial-transgressions in Practice of Five Partial Vow 212
- Self-criticism of Partial-transgressions in Practice of Sixth Partial Vow 213
- Self-criticism of Partial-transgressions in Practice of Seventh Partial Vow 213
- Self-criticism of Partial-transgressions in Practice of Eight Partial Vow 216
- Self-criticism of Partial-transgressions in Practice of Ninth Partial Vow 216
- Self-criticism of Partial-transgressions in Practice of Tenth Partial Vow 217
- Self-criticism of Partial-transgressions in Practice of Eleventh Partial Vow 218
- Self-criticism of Partial-transgressions in Practice of Twelth Partial Vow 219
- Self-criticism of Partial-transgressions in Practice of Vow of Samlekhana 220
- Self-criticism of Partial-transgressions in Practice of All Vows Collectively 221
- **SECOND CHAPTER : PRAISE OF 24 TIRTHANKARS 223**

❑ **THIRD CHAPTER : VANDAN** 224

❑ **FOURTH CHAPTER : PRATIKARMAN** 225

- Sutra Expressing Right Belief 225
- First Partial Vow : Avoiding Gross Violence 227
- Second Partial Vow : Avoiding Gross Falsehood 229
- Third Partial Vow : Avoiding Gross Stealing 233
- Fourth Partial Vow : Avoiding Gross Non-chastity 234
- Fifth Partial Vow : Avoiding Gross Attachment to Possessions 236
- Sixth Partial Vow : Restraint about Movement 238
- Seventh Partial Vow : Restraint of Articles of Single and Multiple Use 240
- Eighths Partial Vow : Restraint of Unnecessary Violence 243
- Ninth Vow of Samayik 245
- Tenth Vow of Deshavkashik Vow 246
- Eleventh Vow of Practicing Complete Paushad (Fast and Stay at One Place) 249
- Twelth Vow of Sharing Food with Others 251
- Samuchhay Sutra 253
- Tuss Dhamass Sutra 254

❑ **FIFTH AAVASHYAK : KAYOTSARG** 255

- Aavassehi Sutra 255

❑ **SIXTH AAVASHYAK : PRATYAKHYAN** 257

- Annexure 258
- Procedure of Practicing Shravak Aaavashyak 258
- Procedure of Practicing Samayik and Its Purpose 262
- Sutra Regarding Conclusion of Samayik 265
- Hindi Text of the Conclusion of Samayik Sutra 266
- 32 Faults of Samayik 267
- Ten Faults Relating to Mental State 268
- Ten Faults Relating to Speech 270
- Twelve Faults Relating to Physical Activity 271
- Reward of Practicing Samayik 273

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

सचित्र

आवश्यक सूत्र

ILLUSTRATED

AAVASHYAK SUTRA

प्रथम अध्ययन : सामायिक

आमुख :

आवश्यक सूत्र के छह अध्ययनों अथवा आवश्यकों में सामायिक प्रथम आवश्यक है। सामायिक आध्यात्मिक साधना के प्रासाद का न केवल प्रवेश-द्वार है बल्कि उसका धरातल और शिखर भी है। सामायिक से ही साधना की शुरुआत होती है और सामायिक की परिपक्वता पर ही साधना पूर्ण होती है। अध्यात्म के शेष नियमोपनियम सामायिक के ही पोषक हैं। सामायिक है तो सभी नियमोपनियम सार्थक हैं। सामायिक नहीं है तो सभी नियमोपनियम, सभी जप और तप व्यर्थ हैं, शव-श्रृंगार के समान हैं।

सामायिक का अर्थ है—समता भाव।

सुख-दुख, हानि-लाभ, प्रशंसा-निन्दा, संपन्नता-विपन्नता, जन्म-मरण प्रत्येक स्थिति में समभाव धारण करना सामायिक है। गीता में इसे ही समत्व योग कहा है। भेद-विज्ञान का धरातल सामायिक ही है। मैं अलग हूं, पदार्थ अलग है, पदार्थ का स्वभाव बनना, बिगड़ना और नष्ट होना है। 'मैं' यानि आत्मतत्व अजर, अमर, अखण्ड और शाश्वत है। ज्ञान-दर्शन और आनन्द मेरा शाश्वत स्वभाव है। उक्त भावों में रमण करने का नाम ही सामायिक है।

श्रमण, सामायिक चारित्र को अंगीकार करके जीवन-पर्यंत उसमें रमण करता है। सामायिक की परिपक्वता के लिए ही वह मूल और उत्तरगुणों की आराधना करता है। सामायिक के पोषक मूल और उत्तर गुणों में प्रमादवश अतिचार लगते हैं तो वह आवश्यक की आराधना द्वारा उनको आत्मा से पृथक् करता है। आवश्यक की आराधना वह सामायिक की आराधना से प्रारंभ करता है। क्योंकि सामायिक की पुष्टि और परिपक्वता से ही सिद्धि प्राप्त होती है। सामायिक चौदह पूर्वों का अर्थपिण्ड अर्थात् सारतत्व है।

भगवान् से पूछा गया–

प्र. सामाइएणं भंते! जीवे किं जणयइ?

भगवन्! सामायिक से जीव को क्या प्राप्त होता है?

भगवान् ने समाधान दिया–

उ. सामाइएणं सावज्जजोगविरइं जणयइ। उत्त. २९/८

सामायिक से जीव सावद्य योगों की प्रवृत्ति से विरत होता है।

सामायिक में स्थित साधक पर सावद्य योग–पाप कभी आक्रमण नहीं कर सकते। पापों का मैल सामायिक-सम्पन्न साधक की आत्मा में कदापि प्रविष्ट नहीं हो सकता।

सामायिक ही सिद्धि है, और उसका साधन भी सामायिक ही है। साधन और साध्य वह स्वयं है। आवश्यक में प्रवेश का इच्छुक साधक सामायिक से ही आत्मशुद्धि की यात्रा प्रारंभ करता है। इसीलिए वह सर्वप्रथम सामायिक-आवश्यक में अवगाहन करता है।

○○

First Chapter : SAMAYIK

Introduction

There are six chapters in Avashyak Sutra and the first chapter is Samayik Avashyak. Samayik is not merely the gateway to the citadel of spiritual practice. It is also the starting point and the very peak. The spiritual practice starts with Samayik and culminates with complete absorption in Samayik. The remaining principles and sub-rules of spirituality simply nurture it. In case there is Samayik—the state of equanimity, only then all such rules and sub-rules are meaningful. In the absence of equanimity (Samayaik), all rules, sub-rules, recitations and austerities are useless. They are then like beautifying a dead body.

Samayik denotes, state of equanimity. To remain in a state of equanimity in all circumstances namely pleasure and pain, profit and loss, appreciation or insult, prosperity and poverty, birth or death—is called Samayik. In Bhagwat Gita it is called Samata Yog, the foundation of the science of distinction between matter and soul is Samayik. I am separate from matter. The nature of matter is to change, transform and deteriorate. But I, the soul is ever-lasting, permanent unbreakable and free from destruction, Knowledge, perception and ecstatic pleasure is my fundamental nature. To remain absorbed in above mentioned reflections is called Samayik.

A Jain monk (Shraman) after accepting Samayik Charitra (ascetic life) remains in that state throughout his life. He follows the basic principles and sub-principles in order to become adept in Samayik. In case any deviation occurs in practice of such rules and sub-rules due to any slackness, he by practicing Avashyak separates that pollution from his soul. He starts the practice of Avashyak with Samayik because the goal can be achieved only with untainted practice of Samayik. Samayik is in fact the essence of fourteen poorvas.

In Uttradhyayan Sutra, in ninth para of 29^{th} chapter the disciples asks, 'Reverend Sir! What benefit does, a living being derive by practicing samayik?

The lord replies, "By practicing samayik, the living being segregates himself from activities involving violence (Samadhi Yoga)."

The worldly sinful activities cannot affect a person who is well established in Samayik. The dirt of sins can never enter in the soul of practitioner of samayik since the very goal and the method of attaining it is also Samayik. It is both the means and the result. The practitioner while entering in Avashyak, starts his journey of self-purification with samayik. So, he first of all practices Samayik Avashyak.

OO

सामायिक आवश्यक
Samayik Avashyak (Essential)

आत्मशुद्धि के हेतुभूत आवश्यकसूत्र की आराधना के लिए सर्वप्रथम गुरु महाराज से आज्ञा ली जाती है। आज्ञा से पूर्व गुरु को वन्दन करना चाहिए। अतएव सर्वप्रथम वन्दन-सूत्र द्वारा गुरु महाराज को वन्दन किया जाता है–

In order to practice Avashyak Sutra for purification of self, first of all the permission of the spiritual master is obtained. Before seeking such permission one should salute his spiritual teacher. So this salutation to the master is done first of all with the verse termed as Vandan Sutra.

वन्दन-सूत्र

तिक्खुत्तो, आयाहिणं, पयाहिणं, करेमि, वंदामि, नमंसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं, पज्जुवासामि, मत्थएण वंदामि।

भावार्थ: गुरुदेव! मैं दोनों हाथ जोड़कर दाहिनी ओर से प्रारंभ करके पुन: दाहिनी ओर तक तीन बार आपकी प्रदक्षिणा करता हूं। आपको वन्दना करता हूं, नमस्कार करता हूं, आपका सत्कार और सम्मान करता हूं। आप कल्याणरूप हैं, मंगलस्वरूप हैं, देव स्वरूप हैं एवं चैत्य–ज्ञानस्वरूप हैं। मैं आपकी पर्युपासना–सेवा-भक्ति करता हूं एवं मस्तक झुकाकर आपके चरण-कमलों में वन्दन करता हूं।

Reverend Master! I, with folded hands, starting from the right moving around you coming again to your right, greet you thrice. I praise you, bow to you; honour you and respect you. You are compassionate, ominous, godly and citadel of spiritual knowledge. I serve you, offer my devotion towards you and bow at your feet.

विवेचन : बीज को अंकुरित, पुष्पित और फलित होने के लिए आवश्यक है कि उसे उर्वर भूमि की गोद प्राप्त हो। बंजर भूमि में डाला गया बीज निर्बीज होकर नष्ट हो जाता है।

इसी तरह जीवन में साधनात्मक विकास के लिए आत्मभूमि का उर्वर होना आवश्यक है। 'विनयभाव' आत्मा की उर्वरता है। विनय गुण से सम्पन्न व्यक्ति शीघ्र ही आत्मविकास करता हुआ परमात्म रूप का अधिकार प्राप्त कर लेता है।

'गुरु' विनय के प्रधान केन्द्र हैं। अनन्त जीवन-पथ पर गुरु ही वह प्रथम सत्ता होती है जो जीव के भीतर दबे पड़े ज्ञान के स्रोत को जागृत करती है। गु अर्थात् अन्धकार, रु अर्थात् रोकने वाला। अज्ञान रूपी अन्धकार के निरोधक होने से उन्हें 'गुरु' कहा जाता है।

आवश्यक (प्रतिक्रमण) आराधना आत्मशुद्धि का उपक्रम है। गुरु की कृपा के बिना आत्मशुद्धि संभव नहीं है। इसलिए यहां सर्वप्रथम भावभरे शब्दों में गुरु को वन्दन किया गया है।

वन्दन-सूत्र में आए हुए '**वंदामि, नमंसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि**' इन चार पदों का अर्थ इस प्रकार है–

1. **वंदामि** – वन्दन करता हूं। वन्दन का अर्थ है स्तुति करना, वचन से गुणगान करना।
2. **नमंसामि** – नमस्कार करता हूं। नमस्कार का अर्थ है देह से झुककर, विनत होकर गुरु-चरणों में मस्तक रखना।
3. **सक्कारेमि** – सत्कार करता हूं। सत्कार का अर्थ है–अभ्युत्थानपूर्वक अर्थात् खड़े होकर गुरु महाराज का सत्कार करना।
4. **सम्माणेमि** – सम्मान करता हूं। अन्न, वस्त्र आदि अर्पित करना सम्मान कहलाता है।

कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं–इन पदों का अर्थ निम्नरूपेण है–

1. **कल्लाणं** – कल्याणरूप। कल्य का अर्थ है मोक्ष। मोक्ष के हेतु को कल्याण कहा जाता है।
2. **मंगलं** – मंगलरूप। शाश्वत शुभ को मंगल कहते हैं। अथवा जो समस्त प्राणियों के लिए हितकारक हो एवं जन्म-मरण रूप संसार-सागर से पार ले जाने वाला हो, उसे मंगल कहा जाता है।

वंदन सूत्र (तिक्खुत्तो)

चित्र संख्या – 1

चित्र–परिचय – 1

Illustration No. 1

वन्दन विधि

अनंत उपकारी गुरुदेव को शिष्य विशिष्ट विधि और भक्ति–भाव पूर्ण शब्दों से वंदन करता है। शिष्य करबद्ध अंजुली को बायीं ओर से दायीं ओर तीन बार आवर्तन करता है। उसके बाद घुटने भूमि पर रखकर मस्तक से गुरु के चरणों का स्पर्श करता है। वंदन करते हुए गुरु के सत्कार और सम्मान की प्रधानता रहती है। वंदन के माध्यम से शिष्य गुरु के कल्याण, मंगल, देव और चैत्यस्वरूप की अर्चना अथवा स्तुति करता है। अंत में सस्वर और विधि सहित मस्तक से भूमि का स्पर्श कर वह अपने सम्पूर्ण समर्पण की अभिव्यक्ति करता है।

Manner of Greetings

The disciple bows to the great benefactor teacher (guruji) in exclusive manner and using the words of great devotion. The disciple circumambulates thrice with folded hands from left to right. After that kneeling down touches the lotus feet of the teacher putting his head on the ground. There remains the eminence of teacher's honour and respect in his manners of greetings. He eulogises and propitiates the conscious and diety, neverend diety welfare and auspicious form of the holy teacher while paying greetings. At last he chanting and touching the ground with the head manifests his absolute dedication.

3. **देवयं** – देवस्वरूप। **'दीवयन्ते स्वरूपे इति देवा'** जो अपने स्वरूप में देदीप्यमान होते हैं। अथवा आत्मभाव में सतत रमण करने वाले को देव–धर्मदेव कहा जाता है।

4. **चेइयं** – चैत्य स्वरूप। चैत्य के अनेक अर्थ हैं। प्रधान अर्थ है–ज्ञान। ज्ञानवान् आत्मा चैत्य कहलाती है।

विधि : इसके पश्चात् नमस्कार सूत्र पढ़ा जाता है–

Explanation: A fertile soil is essential for the seed to germinate, blossom and to fruitify. In case the seed is put in barren land, it loses its property of germination and gets destroyed.

Similarly for spiritual development, it is pertinent that the soul should be spiritually receptive. Humility is the attribute of receptivity or growth in the soul. One who possesses the quality of humility, soon develops spiritually. He attains the requisite characteristic of becoming a completely purified soul.

The Guru (Spiritual master) is the centre of his humility. He is the initial power that awakens the hidden source of knowledge which is lying in dormant state in the disciple. **Gu** stands for darkness while **ru** means the stopper. The master serves as the stopper for the darkness of ignorance. So, he is called Guru.

The practice of Avashyak (Pratikramam) is a practice for self-purification. Self-purification is not possible without the blessing of the master. So with a heart full of deep gratitude, the spiritual head is greeted with vandan sutra.

Four words—Vandami, Namansami, Sakkaremi, Sammanemi mentioned in Vandan Sutra are interpreted as under:

1. Vandami—I praise you. Vandan means to appreciate, to highlight good qualities.

2. Namansami—I bow to you, the meaning of namaskar is that one bends his body and humbly places his forehead at the feet of the maser.

3. Sakkaremi—I respect you, meaning of sakkar is that one humbly stands up and pays his respect to the master (Guru).

4. Sammanemi—I offer myself to you; to offer food, cloth and the like is called sammaan.

The interpretation of Kallanum, Mangalam, Devayam, Cheiyam is as follows:

1. Kallanum—You are benefactor. Kalya means salvation. That which leads to salvation is called Kalyan.

2. Mangalam—Mangalam is that which is ominous. Which is always good is called Mangal. A person who is for the welfare of all living beings and who helps everyone in crossing the worldly ocean is also called mangal.

3. Devayam—Godly by nature, one who shines in its very nature. One who continuously remains absorbed in self is called Dharam-Dev—spiritually blessed.

Cheiyam—Chaitya is interpreted in many ways. The most proper meaning of chaitya is knowledge. One who processes right knowledge is called chaitya.

Procedure: Thereafter Namaskar Sutra is recited:

नमस्कार सूत्र

नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं,
नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्व साहूणं।
एसो पंच नमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं।।

भावार्थ: अरिहंतों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो एवं लोक में विराजित समस्त साधु-मुनिराजों को नमस्कार हो।

उपरोक्त पंच परमेष्ठियों को किया हुआ यह नमस्कार समस्त पापों का नाश करने वाला है, एवं सभी प्रकार के (लौकिक एवं लोकोत्तर) मंगलों में प्रथम (प्रधान) मंगल है।

Literal Meaning: It means, Obeisance to Omniscents (Arihantas), Obeisence to perfect souls (Siddhas), Obeisence to Acharyas, Obeisence to Upadhyayas, Obeiscence to all the monks and nuns in the universe.

The obeisance to the said five sublime categories eliminates the effect of all sins and is the primary one among all the worldly and spiritual omens.

विवेचन : नमोकार सूत्र चौदह पूर्वों का सार-सूत्र है। इसमें बीजरूप में चौदह पूर्वों का सार समाया हुआ है। इसकी विशेषता यह है कि यह सार्वभौम महामंत्र है। किसी सम्प्रदाय विशेष

से बंधा हुआ नहीं है। इस मंत्र में गुणपूजा को स्थान प्राप्त है, किसी विशिष्ट इष्टदेव को इसमें नमस्कार नहीं किया गया है।

नमोकार सूत्र को 'पंच परमेष्ठी सूत्र' भी कहा जाता है। क्योंकि इसमें पांच परम-इष्ट अथवा पांच प्रकार की परम उत्कृष्ट आत्माओं को नमस्कार किया गया है। पांच परमेष्ठी पद हैं– 1. अरिहन्त, 2. सिद्ध, 3. आचार्य, 4. उपाध्याय, एवं 5. साधु।

अरिहन्त : प्रथम पद में अरिहन्तों को नमस्कार किया गया है। अरिहन्त का अर्थ है–अरि+हंत, अर्थात् कर्म रूप अरियों/शत्रुओं का जिन्होंने हनन/अन्त कर दिया है, उन्हें अरिहन्त कहा जाता है।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय–ये चार घनघाती कर्म हैं। अरिहन्त इन चारों कर्मों को नष्ट करके केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त कर लोकमंगल की यात्रा करते हैं। जन्म, जरा, मरण रूपी अनन्त भवसागर में भटक रही आत्माओं के कल्याण के लिए वे धर्मतीर्थ की स्थापना करते हैं। लोक को आत्मकल्याण का मार्ग दिखाने से अरिहन्त अनन्त उपकारी हैं। इसीलिए इस सूत्र में उन्हें सर्वप्रथम नमस्कार किया गया है।

सिद्ध : जन्म-मरण के हेतुभूत चार घाती और चार अघाती–ऐसे आठों कर्मों का जिन्होंने क्षय करके सिद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वरूप को साध लिया है तथा जो स्वाभाविक अनन्त आत्मिक सुख में सदैव विहार करते हैं उन्हें सिद्ध कहते हैं।

सिद्ध अशरीरी होते हैं। शुद्ध आत्मस्वरूपी होते हैं। समस्त पौद्गलिक आश्रयों/बन्धनों से मुक्त होते हैं। सांसारिक सुख पदार्थाश्रयी होता है जबकि सिद्धों का सुख आत्माश्रयी होता है। आत्माश्रयी होने से सिद्धों का सुख अनन्त, अव्याबाध एवं अक्षय होता है। सिद्धों ने आत्मा के परम श्रेय को प्राप्त कर लिया है। उनकी यह सिद्धि भव्य जीवों के लिए अप्रत्यक्ष प्रेरणा है। सिद्धों को किया गया प्रणाम शुद्ध आत्मतत्व को किया गया प्रणाम है। इस प्रणाम से भव्य जीवों में आत्मगुणों को अनावृत्त करने का आध्यात्मिक उल्लास उत्पन्न होता है।

आचार्य : ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार एवं वीर्याचार का स्वयं पालन करने वाले एवं चतुर्विध श्रीसंघ से पंचाचार का पालन कराने वाले, ऐसे जातिसंपन्न, कुलसंपन्न संघ-नायक आचार्य कहलाते हैं। संघ को रथ एवं आचार्य को उसका सारथि कहा गया है। स्वयं की साधना के साथ-साथ समग्र संघ की सारणा-वारणा का अधिभार भी आचार्य अपने सबल स्कन्धों पर वहन करते हैं। ऐसे परम उपकारी आचार्य देव सहज ही नमस्कार के अधिकारी होते हैं।

उपाध्याय: जो स्वयं आगम-वाङ्मय के अधिकारी विद्वान हों एवं संघ के श्रमणों-श्रमणियों को आगम ज्ञान प्रदान करने में कुशल हों, उन्हें उपाध्याय कहा जाता है। उपाध्याय ज्ञान के देवता होते हैं। वे किसी अपेक्षा अथवा प्रतिदान की चाह के बिना ही ज्ञान दान द्वारा संघ को समृद्धि प्रदान करते हैं। इसीलिए वे नमस्कार के अधिकारी हैं।

साधु: 'साधयति मोक्षमार्गमिति साधुः' मोक्ष-मार्ग की साधना में सतत संलग्न साधक को साधु कहा जाता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह—उक्त पांच महान व्रतों, एवं ईर्या आदि पांच समितियों और मन आदि तीन गुप्तियों के धारक साधु निःसंग भाव से लोक में विचरण करते हैं। पुष्पों को बिना कष्ट पहुंचाए जैसे भ्रमर उनसे रस ग्रहण करता है ऐसे ही निस्पृही और अपरिग्रही साधु गृहस्थों पर बिना भार डाले गोचरी द्वारा उदर-पोषण करते हैं। निष्काम भाव से जगत को धर्मोपदेश द्वारा सन्मार्ग का बोध देने वाले साधु सहज ही नमस्करणीय हैं।

ऐसो पंच नमोक्कारो... ये चूलिका पद हैं। इनमें नमोकार महामंत्र की महिमा का कथन किया गया है। बताया गया है कि पांच परमेष्ठियों को किया गया यह नमस्कार सभी पापों का नाश करने वाला तथा सभी मंगलों में प्रथम (प्रधान) मंगल है।

मंगल दो प्रकार का होता है—द्रव्य मंगल एवं भाव मंगल। भौतिक लाभ के लिए किए जाने वाले समस्त धार्मिक अनुष्ठान द्रव्य मंगल के अन्तर्गत आते हैं। आत्मस्वरूप की सिद्धि के लिए किए जाने वाले वन्दन-नमन-आराधन आदि आध्यात्मिक अनुष्ठान भाव मंगल हैं। यहां पांच परमेष्ठियों को किया गया नमस्कार साधक की विनम्रता और गुणपूजन की भावना का द्योतक है। इसलिए यह भाव मंगल है तथा समस्त मंगलों में प्रधान और कल्याण का हेतु है।

विधि: तत्पश्चात् अहिंसा की शुद्धि के लिए 'आलोचना सूत्र' का चिन्तन करें।

Explanation : Namaskar Sutra is the gist of fourteen poorvas. In it lies the very basis of 14 poorvas. Its special characteristic is that it is the great mantra acceptable everywhere. It does not belong to any particular order. In it there is worship of qualities, not any particular order and not any particular God liked by any sect.

Namaskar Sutra is also known as Panch Parmeshti Sutra because in it there is salutation to five types of great souls in the spiritual order. They are Arihantas, Siddha, Acharyas, Upadhayaya and monks.

Arihants : In the first sentence obeisence is paid to arihantas. Ari means enemy (in Prakrit) and hants means (killed, defeated or destroyed). So, Arihantas are those

persons who have destroyed the karmas that pollute the soul. Four karmas namely knowledge obscuring karmas, conation obscuring karmas, deluding karma and obstructive karma are Ghatiya karmas because they destroy the manifestation of real and essential attributes of the soul. Arihantas have destroyed completely these four karmas. So they have attained omniscience (perfect knowledge and perfect conation). They establish the spiritual order (Dharm Teerth) for the welfare of mundane souls that wander in the mundane worldly cycle of birth, old age and death. They are extremely beneficial and worthy since they show the path leading to the welfare of the soul. In view of these traits they are worshipped first of all.

Siddhas : The Sidhas (liberated souls) have destroyed four *ghatiye karmas* that are the cause of wanderings in worldly cycle of birth and death. They have further destroyed the remaining four *aghatiya karmas* also (the karmas that do not obscure real attributes of the soul but only affect the external environment of the soul and pertain to the body.) With the elimination of said eight karmas the soul becomes liberated and remains absorbed in perfect knowledge, perfect perception and ecstatic unending natural happiness which are its fundamental qualities. It remains in this state permanently. Such souls are called Siddhas.

Siddhas do not have any physical body. They are pure souls. They are completely free from all physical or material bondage. Worldly pleasure depends on material things while ecstatic happiness of Siddhas lies in the soul itself. Since the happiness is dependent on soul itself, so it is infinite, endless and free from all obstructions. Sidhas have attained the intrinsic attributes of perfect soul. This attainment by sidhas inspires the worthy souls indirectly (to follow it). Obeisence to Sidhas is the salutation to pure self. This obeisence generates spiritually keen desire in worthy soul to manifest the natural attributes of the souls that are lying obscured.

Acharya : The Acharyas meticulously follow the code relating to right knowledge, right conation, right conduct and right austerities. They also ensure that the four-fold spiritual order also follows it properly. They belong to respectable clan, respectable family and the head of the spiritual order. In case defined as the chariot is the Acharya is its charioteer. The acharya has on his shoulders not only the duty of performing his spiritual practice but also the responsibility of ensuring proper development of spiritual organization. Since he is extremely beneficial to the order, he naturally deserves to the saluted.

Upadhyayas : Upadhyaya is that Jain ascetic who is well versed in Agams (Scriptures) and is fully competent in providing scriptural knowledge to monks and nuns in the order. He is the master of Agam knowledge without any order (Sangha) by freely providing his guidance and knowledge. So, he is worthy of obeisence.

Sadhus (Monks) : Sadhu is that ascetic who is deeply engaged in the practice of the path leading to salvation. He observes five major vows namely vows of non-violence truth, non-stealing, celibacy and not-attachment to possessions. He meticulously follows five discretions (samities) namely discrimination in movement (Iriya samiti) and the like. He also follows three stoppages (Gupti) namely those of mind, speech and body. He moves in the physical world without any attachment. Just as bee gets juice from the flowers without troubling them, the detached, non-posessive monk seeks food from the house-holders without causing any burden to them. He provides knowledge of dharma to the world without any desire of a reward. So, he is worthy of worship.

Eso panch Namokkaro (obeisence of the said five). : It is addendum (Chulika). In it the appreciation of Namaskar Mantra has been narrated. It is stated that the obeisance to the said five, wipes out the effect of all sins and is the primary omen.

Omen is of two type namely natural one and the non-material one. All the religious practices that are performed with the desire of worldly gain are called material one (Dravya Mangal). The obeisance salutation and other such like spiritual practices which are performed for the uplift of the soul, are called non-material Omen (Bhava Mangal). Here the obeisance to five great ones done by the worshipper depicts the humility and dedication towards virtues. So it is Bhava Mangal. It is the prime one and leads to the welfare.

Procedure: Thereafter for chastising vows of non-violence the sutra of self-criticism (Alochna Sutra) is recited.

आलोचना सूत्र

इच्छाकारेण संदिसह भगवं! इरियावहियं पडिक्कमामि। इच्छं। इच्छामि पडिक्कमिउं इरियावहियाए विराहणाए, गमणागमणे पाणक्कमणे, बीयक्कमणे, हरियक्कमणे, ओसा-उत्तिंग-पणग-दग-मट्टी-मक्कडा संताणा-संकमणे, जे मे जीवा विराहिया, एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया, अभिहया, वत्तिया, लेसिया,

आलोचना सूत्र

चित्र संख्या – 2

चित्र-परिचय – 2

Illustration No. 2

आलोचना सूत्र

अहिंसा महाव्रत की शुद्धि के लिए साधक आत्म आलोचना करता है। भूलवश या प्रमादवश यदि उससे किसी जीव की हिंसा हुई है तो उसके लिए वह आत्म-साक्षी से प्रायश्चित्त करता है। सर्वप्रथम वह गुरुदेव से गमन और आगमन यानि आने-जाने आदि क्रियाओं को करते हुए जो जीवादि की हिंसा हुई है, उसकी निवृत्ति हेतु, किए जाने वाले प्रतिक्रमण की आज्ञा प्राप्त करता है। उसके बाद वह गमनागमन करते हुए एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीवों की सम्भावित हिंसा को स्मरण करता है। आते-जाते हुए स्वयं द्वारा हुई भूलों का पश्चात्ताप करता है। अंत में उससे जो भी दुष्कृत (पाप) हुआ है, उससे पीछे लौटने की प्रतिज्ञा करता है।

- प्रथम चित्र में शिष्य गुरु से प्रतिक्रमण की आज्ञा प्राप्त कर रहा है।
- दूसरे चित्र में गमन करते हुए सूक्ष्म जीवों की सम्भावित हिंसा को स्मरण करता।
- आगे के चित्रों में एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीवों को चित्रित किया गया है। तत्पश्चात् हिंसा के प्रकारों का चित्रण है। अंतिम चित्र में साधक भविष्य में हिंसा से पीछे हटने का संकल्प लेते हुए दिखाया गया है।

Alochana Sutra

The practiser assesses his self for the purification of the great vow of Ahimsa, Obliviously or in laxity if he has killed any living being then he expiates with the witness of soul. Firstly he gets the permission to repent over the killing of any living beings by the activities of his coming and going or arrival and departure with the permission of guruji for his final beatitude. After that he recollects the potential killing of one senses to five senses beings through coming and going. He expiates of the errors committed while coming and going. In the end he pledges to derate back from the sins that he has committed.

- In the first picture the disciple asks for this permission of his holy teacher for repentance
- In the second picture he recalls the potential killing of subtle beings by going and coming from one sense to five senses have been illustrated. Subsequently the types of violence are illustrated. In the last illustration the practiser has been illustrated resolving to withdraw himself from the violence in future.

संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया ठाणाओ ठाणं संकामिया, जीवियाओ ववरोविया। जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

भावार्थ : (गमनागमन संबंधी दोषों की निवृत्ति हेतु प्रतिक्रमण करने के लिए साधक गुरु से निवेदन करता है–)

हे भगवन्! आप आज्ञा प्रदान करें, मैं ईर्यापथिकी (गमन-आगमन से लगने वाली) क्रिया (हिंसा) का प्रतिक्रमण करना चाहता हूं। गुरुदेव की आज्ञा प्राप्त होने पर साधक कहता है–आप की आज्ञा प्रमाण है, मार्ग में चलते हुए असावधानी के कारण किसी भी जीव की हिंसा हुई हो तो मैं उस पाप से निवृत्त होना चाहता हूं। मार्ग में आते-जाते हुए किसी प्राणी को पैरों के नीचे दबाया हो, सचित्त बीज या हरित वनस्पति को कुचला हो, ओस, कीड़ियों के बिल, पांच प्रकार की काई, सचित्त जल, सचित्त मिट्टी और मकड़ी के जालों को कुचला हो, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय तक के किसी भी जीव की विराधना की हो, सामने से आते हुओं को रोका हो, धूल आदि से ढंका हो, भूमि पर मसला हो, परस्पर इकट्ठे करके क्लेशित किया हो, किसी भी ढंग से परितापित, क्लेशित और भयभीत किया हो, एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर रखा हो, अथवा जीवन से ही रहित किया हो तो मेरा वह सब पाप निष्फल हो।

Cenral idea : In order to shed the faults arising from movement through pratikraman (self criticism), the practitioner requests the master .

Reverend Master! Kindly grant me the permission. I want to absolve my soul of the faults resulting due to violence caused if any by my movement (Iriyapathika kirya). After obtaining such permission of the master, the practitioner says, "I happily accept your permission. Due to any negligence in case any violence has been caused to living being while moving about, I want to shed that sin. While moving about, I might have crushed any living being under my feet. I might have trampled any seed worthy of germination or any green vegetation and might have destroyed drops of dew, the moles of ants, five types of moss, Sachit (living) water, organic earth, the web of the spider. I might have adversely affected any one-sensed, two-sensed, three-sensed, four-sensed and five-sensed living beings. I might have stopped beings coming in front of me I might have covered them with earth or crushed them on the ground. I might have caused hurt to then by collecting them at one place. I might have caused pain to them, disturbed them or frightened them in any manner. I might

have shifted them from one place to another or might have even turned them lifeless. I repent for the same and pray that the effect of that sin may wither away.

विवेचन : यतना/विवेक धर्म का प्राण है। विवेक पूर्वक क्रियाएं करता हुआ व्यक्ति पाप के बन्धन से मुक्त रहता है। जैन श्रमण अपनी सभी क्रियाओं को विवेक पूर्वक साधता है। प्रस्तुत सूत्र में साधक गमन-आगमन संबंधी व्यापारों की आलोचना करते हुए असावधानी अथवा प्रमाद से उत्पन्न हुए दोषों का प्रतिक्रमण करता है। '**इच्छामि**' शब्द उसकी स्वेच्छा का बोधक है। उस पर किसी का दबाव नहीं है। वह अपनी स्वाभाविक करुणा और पापभीरूता के कारण अपनी आत्मा से दोषों के कांटे दूर करता है।

एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के प्राणियों का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

(1) **एकेन्द्रिय**–एक इन्द्रिय वाले प्राणी–पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति के शरीर वाले जीव।

(2) **द्वीन्द्रिय**–दो इन्द्रिय वाले प्राणी–शंख, सीप, लट आदि जीव।

(3) **त्रीन्द्रिय**–तीन इन्द्रिय वाले प्राणी–जूं, लीख, कीड़ी आदि जीव।

(4) **चतुरिन्द्रिय**–चार इन्द्रिय वाले प्राणी–मक्खी, मच्छर, भंवरा आदि जीव।

(5) **पंचेन्द्रिय**–पांच इन्द्रिय वाले जीव–मनुष्य, तिर्यंच, जलचर, स्थलचर, खेचर आदि जीव।

विधि : ईर्यापथिकी प्रतिक्रमण के पश्चात् कायोत्सर्ग-शुद्धि के लिए निम्नोक्त सूत्र का मनन किया जाता है–

Explanation : Sense of discrimination is the very life-force of dharma. One who performs activities in a vigilant manner with a sense of discrimination, he gets liberated from the bondage of the effect of that sin. A Jain monk performs all the daily activities with a sense of discrimination. In this aphorism (Sutra), the practitioner doing self-criticism of activities relating to movement, repents for faults arising out of lack of discrimination or due to any slackness. The word 'Ichhami' indicates that it is being done voluntarily and without any pressure or influence of others. He removes the thorn of sins from his soul by his natural feeling of compassion and the fear of the effect of sins.

The nature of living beings—one-sensed to five-sensed beings in brief is as follows:

(1) **One-sensed beings:** The earth-bodied, water-bodied, fire-bodied, air-bodied and plant-bodied living beings are called one-sensed living beings.

(2) **Two-sensed beings:** Counch-shell, lice and the like are two-sensed beings.

(3) **Three-sensed beings:** Ants, and the like are three-sensed beings.

(4) **Four-sensed beings:** Flies, mosquito, bumble-bee and the like are four sensed beings.

(5) **Five-sensed beings:** Human beings, acquatic animals, quadrupeds, birds and the like are five-sensed beings.

Procedure: After self-criticism of movement for the purification of detachment from physical body (Kayotsarg), the Sutra (Aphosism) mentioned below is recited.

उत्तरीकरण सूत्र

तस्स उत्तरीकरणेणं, पायच्छित्तकरणेणं, विसोहिकरणेणं, विसल्ली-करणेणं, पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए, ठामि काउसग्गं। अन्नत्थ ऊससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं, उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं, भमलीए, पित्तमुच्छाए, सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं, सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं, एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो, अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो। जाव अरिहंताणं भगवंताणं णमोक्कारेणं न पारेमि, ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि।

भावार्थ : दोषों से दूषित अपनी आत्मा की विशेष उत्कृष्टता के लिए, प्रायश्चित्त के लिए, विशुद्धि के लिए, शल्य रहित होने के लिए, पाप कर्मों के पूर्णतया विनाश के लिए कायोत्सर्ग की आराधना करता हूं।

(आगे कहे जाने वाले आगारों के अतिरिक्त शरीर संबंधी शेष व्यापारों का त्याग करता हूं। वे आगार इस प्रकार हैं–)

उच्छ्वास-निच्छ्वास से, खांसी, छींक, जंभाई, डकार तथा अपानवायु से, चक्कर आने से, पित्त के प्रकोप से, मूर्च्छा आने से, सूक्ष्म अंग संचालन से, सूक्ष्म रूप से कफ के संचालन से, सूक्ष्म दृष्टि संचालन से तथा इसी प्रकार की अन्य शरीर संबंधी स्वाभाविक क्रियाओं से मेरा कायोत्सर्ग भंग तथा विराधित न हो।

जब तक अरिहंतों-भगवंतों को नमस्कार करके कायोत्सर्ग को पूर्ण न कर लूं, तब तक के लिए एक स्थान पर स्थिर रह कर, मौन रह कर, ध्यानस्थ रह कर अपने आपको सभी पाप-क्रियाओं से अलग करता हूं।

Central Idea: In order to meticulously cleanse my soul affected by my faults, to repent for such faults, to purify it, to become free from thorns and to completely destroy all the effects of sins, I undertake Kayotsarg (the practice of detachment from the body) (I withdraw myself from all the physical activity,other than the exceptions detailed below)

The activity of in-haling and ex-haling, cough, sneezes, emitting air through the anus, yawning, uncommon movements of the head, stomach trouble, unconsciousness subtle movement of any part of the body, subtle effect of inner movement in the body minor movement of eyes and any other such like natural movements that are involuntary—such movements may not be considered as disturbance to my Kayotsarg (posture of detachment).

Until I finish Kayotsarg by obeisance to arihantas, I shall remain at one place observing complete silence in a state of meditation, detaching myself from all activities involving sin.

विवेचन : आत्मा की विशिष्ट शुद्धि के लिए कायोत्सर्ग की आराधना की जाती है। यह सूत्र कायोत्सर्ग की पूर्व भूमिका को स्पष्ट करता है। इसमें शरीर से संबंधित उन क्रियाओं का संकेत किया गया है जिन्हें रोक पाना (साधारण) साधकों के लिए संभव नहीं होता। साथ ही निर्देश किया गया है कि जब तक नमस्कार सूत्र द्वारा अरिहंतों को नमस्कार करके कायोत्सर्ग को पार न लूं तब तक कायिक-मानसिक-वाचिक स्थिरतापूर्वक मौन और ध्यानस्थ रह कर समस्त पापों से स्वयं को अलग करता हूं।

Elaboration: The practice of Kayotsarg is undertaken for unique purification of the soul. This aphorism (Sutra) clarifies the stage-setting for Kayotsarg. In it those activities of the body are mentioned which cannot be controlled by the practitioner. Simultaneously it has been mentioned that I shall keep myself stabilising mentally, verbally and physically observing complete silence and meditation (concentration) detaching myself from all worldly activities involving violence until I give it a finishing touch by reciting Namokar Sutra expressing my obeisance to omniscient (Arihantas).

विधि—उत्तरीकरण सूत्र के उच्चारण के पश्चात् मुनि निम्नोक्त **चतुर्विंशति जिन सूत्र** द्वारा चौबीस तीर्थंकर-भगवंतों की ध्यानावस्था में लीन होकर स्तुति करता है—

उत्तरीकरण सूत्र

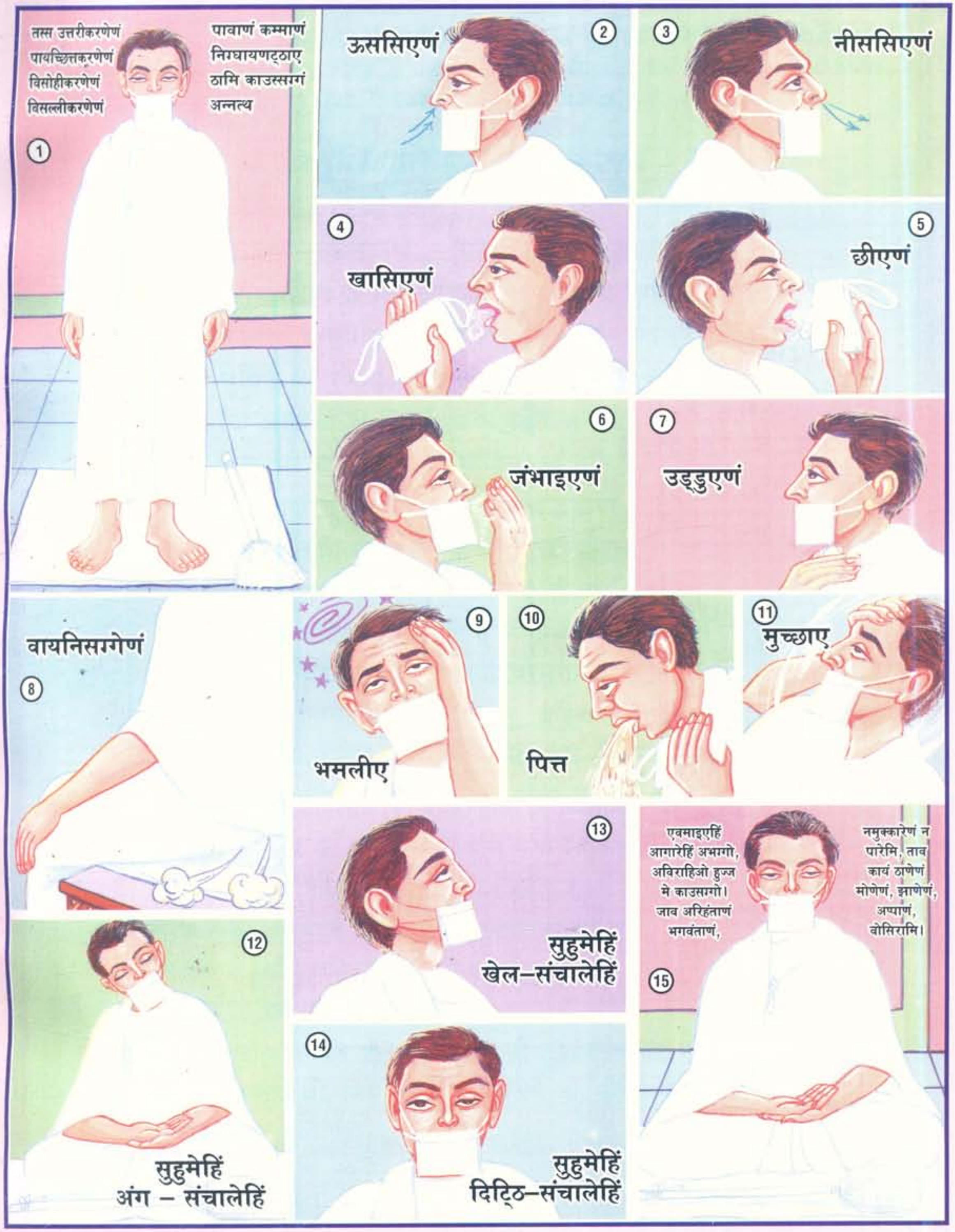

चित्र संख्या – 3

उत्तरीकरण सूत्र

आत्मा की विशिष्ट शुद्धि के लिए साधक कायोत्सर्ग – ध्यान करता है। कायोत्सर्ग में प्रवेश करने से पूर्व साधक उत्तरीकरण सूत्र स्मरण करता है। इस सूत्र में अपरिहार्य काय–व्यापारों के आगार का वर्णन है। उच्छ्वास (ऊंचा श्वास), निःश्वास (नीचा श्वास) से लेकर सूक्ष्म–दृष्टि–संचालन तक – ऐसे बारह (अथवा तेरह) आगारों को चित्रों द्वारा स्पष्ट किया गया है। ये शरीर की स्वाभाविक क्रियाएं हैं। उक्त क्रियाओं के चलते हुए भी साधक का कायोत्सर्ग भंग नहीं होता है।

अंतिम चित्र में साधक प्रतिज्ञाबद्ध होता है – जब तक अरिहंत भगवान को नमस्कार करके कायोत्सर्ग सम्पन्न न कर लूं तब तक एक स्थान पर स्थिर रहकर, मौन रहकर, धर्मध्यान में लीन रहकर स्वयं को सभी पाप–क्रियाओं से पृथक् करता हूं।

Uttrikaran Sutra

For the special purification of soul the practiser performs a body detachment meditation (kayotsarga dhyan). Prior to entry into the kayotsarga meditation, the practiser reeiles the Sutra of 'Uttrikaran'. In this sutra (aphorism) the description of the avoidance of the unavoidable activities of body are made. From inhaling and exhaling to the subtle movement of the sight such twelve (or thirteen) avoidance have been clarified through illustration. These are the natural activities of the physical body. While carrying out all these activities the meditation of body detachment of the practiser is not damaged.

In the last illustration the practiser pledges that bowing before the Lord Arihant until he completes his meditation of body detachment he separates himself from all the sinful activities through a steadfast posture at a fix place, observing silence and indulging in religious activities.

Procedure: After uttering Uttarikaran Sutra, the ascetic in a state of meditation is praises twenty four Trithankars by mentally going through the Chaturvinshati Sutra (Hymn in praise of twenty four Tirthankars) as mentioned below:

चतुर्विंशति जिन स्तव सूत्र

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्मतित्थयरे जिणे।
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसंपि केवली॥१॥
उसभमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे॥२॥
सुविहिं च पुप्फदंतं, सीअल-सिज्जंस वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि॥३॥
कुंथुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमि जिणं च।
वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च॥४॥
एवं मए अभित्थुआ, विहुय-रय-मला पहीणजरमरणा।
चउवीसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु॥५॥
कित्तिय वंदिय महिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा।
आरुग्ग-बोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दिंतु॥६॥
चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा।
सागरवर-गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसन्तु॥७॥

भावार्थ—अपने ज्ञान के आलोक से समग्र लोक को आलोकित करने वाले, धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले, राग-द्वेष को जीतने वाले, कर्म रूपी शत्रुओं का हनन करने वाले चौबीस केवलियों—तीर्थंकर-भगवंतों की मैं स्तुति करूंगा (करता हूं)।

आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेव जी एवं अजितनाथ जी को वन्दन करता हूं। श्री संभवनाथ जी, श्री अभिनन्दन जी, श्री सुमतिनाथ जी, श्री पद्मप्रभ जी, श्री सुपार्श्वनाथ जी तथा राग-द्वेष विजेता श्री चन्द्रप्रभ जी को वन्दन करता हूं।

श्री सुविधिनाथ जी अपरनाम श्री पुष्पदंत जी, श्री शीतलनाथ जी, श्री श्रेयांसनाथ जी, श्री वासुपूज्य जी, श्री विमलनाथ जी, जिनेश्वर श्री अनन्तनाथ जी, श्री धर्मनाथ जी एवं श्री शांतिनाथ जी को वंदन करता हूं।

श्री कुन्थुनाथ जी, श्री अरनाथ जी, श्री मल्लिनाथ जी, श्री मुनिसुव्रत जी एवं श्री नमि जिन को वन्दन करता हूं। इसी क्रम में श्री अरिष्टनेमि जी, श्री पार्श्वनाथ जी एवं श्री वर्धमान (महावीर) जी को नमस्कार करता हूं।

जिनकी मैंने स्तुति की है, पापों की रज व मैल से सर्वथा रहित, जरा और मृत्यु से मुक्त, धर्मतीर्थ के प्रवर्तक चौबीसों तीर्थंकर मुझ पर प्रसन्न हों।

जिनका मैंने कीर्तन, वंदन एवं पूजन किया है तथा जो लोक में उत्तम हैं, वे सिद्ध-तीर्थंकर देव मुझे आरोग्य, बोधिलाभ एवं उत्तम समाधि प्रदान करें।

जो चन्द्रमाओं से भी अधिक सुनिर्मल हैं, जो सूर्यों से भी अधिक प्रकाशमान हैं तथा स्वयंभूरमण सागर के समान गंभीर हैं, वे सिद्ध भगवान् मुझे सिद्धि प्रदान करें।

Literal Meaning: I sing in praise of twenty four omniscient Tirthankars. They illuminate the entire universe with their knowledge. They establish the spiritual order. They had completely subdued the feeling of attachment and hatred. They had destroyed the karmia enemies that adversely affect the soul.

I bow to first Tirthankar Shri Rishabh Dev and also Shri Ajit Nath. I also salute shri Sambhav Nath, Shri Abhinandan, Shri Sumati Nath, Shri Padam Nath, Shri Suparshva Nath and Shri Chandra Prabhu who had conquered attachment and hatred.

I bow to Shri Suvadhi Nath whose second name is Shri Pushpadant. I salute Sheetal Nath, Shri Shreyans Nath, Shri Vasupujya, Shri Vimal Nath, Shri Anant Nath, Shri Dharam Nath and Shri Shanti Nath.

I bow to Shri Kunthu Nath, Shri Arahnath, Shri Malli Nath, Shri Muni Suvrat and Shri Nami the omniscient. In this very order, I salute Shri Arishtanami, Shri Parshvanath and Shri Vardhaman.

Twenty four Tirthankars in praise of whom. I have spoken may kindly bless me. They are completely free from karmic dust and dirt. They are free from clutches of old age and death; they had established Dharam Tirth (Spiritual order).

The Tirthankar in whose praise I have sung, whom I have saluted and worshiped, they are the best in the world. They may kindly bless me with good health, spiritual knowledge and state of equanimity.

The Tirthankars who have become sidhas are more clean than the moon. They are too bright than the sun. They are self-absorbed like Svayamburaman ocean. They may kindly guide me in the path leading to Salvation.

विवेचन: प्रस्तुत सूत्र में अवसर्पिणीकालीन चौबीस तीर्थंकर देवों का भावपूर्ण शब्दों में कीर्तन, वन्दन एवं अर्चन किया गया है। स्तुति करने वाला स्तुत्य में रहे हुए सद्गुणों का धीरे-धीरे अधिकारी बन जाता है। तीर्थंकर देव आरोग्य, संबोधि, और समाधि के धाम हैं। उनकी अर्चना करने वाला इन आध्यात्मिक सद्गुणों को सहज ही प्राप्त कर लेता है।

प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या अरिहन्त भगवान् आरोग्य आदि दे सकते हैं? जैन धर्म तो कर्म-प्रधान है। **'कडाण कम्माण न मोक्खो अत्थि'** अर्थात् कृत् कर्मों के फल भोगे बिना मुक्ति नहीं होती, यह जैन धर्म का प्रमुख सिद्धान्त है। फिर भगवान् आरोग्य आदि कैसे दे सकते हैं?

समाधान में कह सकते हैं—घड़ा मिट्टी से बनता है। परन्तु वह अपने आप तो नहीं बनता। उसमें कुम्हार, चाक आदि भी निमित्त कारण हैं। मिट्टी और कुम्हार इन दोनों का घट-निर्माण में कार्य-कारण सहयोग है। इसी प्रकार आत्मा स्वयं अपने पराक्रम से कर्मों को जीर्ण करती है। परन्तु कर्म-निर्जरा का मार्ग तो अरिहन्तों से ही प्राप्त होता है। इसी दृष्टि से स्तुति करने वाला साधक अरिहन्तों से आरोग्य, बोधि, सिद्धि आदि की मांग करता है।

Elaboration : In the present Sutra, twenty four tirthankar of Avasarparni period have been praised, adored and worshipped with words full of natural excitement. One who appreciates them imbibes in his self slowly the good qualities that the person appreciated possesses. Tirthankars are the treasure of good health, unique knowledge and equanimity. One who worships them easily gets the spiritual virtues.

Now the question arises whether the omniscient (Arihant) can provide good health to others. According to Jainism, Karma is supreme. One cannot attain liberation without bearing the fruit of all the Karmas. This is the fundamental principle of Jainism. How the Tirthankar can provide health and the like to others?

In reply, we can say—A pot is prepared from the earth. But it cannot get that shape itself. In its preparation there is the role of potter, the wheel and the like. They are the secondary factors. Both the earth and the potter help each other in preparation of the pot. Similarly the soul with its own effort sheds the Karmas. But the path leading to the shedding of Karma is learnt from Arihant. In this context, one who praises Arihants, seeks their blessing for gaining health, knowledge and salvation.

विधि : 'नमो अरिहंताणं' अर्थात् अरिहंतों को नमस्कार करते हुए ध्यान पूर्ण किया जाता है। फिर खड़े होकर इसी (चतुर्विंशति स्तव) सूत्र को मुखर स्वर से बोला जाता है। तत्पश्चात्

बैठकर दायां जानु (घुटना) भूमि पर रखकर तथा बायां जानु ऊंचा रखते हुए दोनों हाथ जोड़कर प्रणिपात सूत्र पढ़ा जाता है।

Procedure: The meditation is completed by uttering obeisance to Arihants. Thereafter one stands, and verbally recites Chatur-vinishti stav. Thereafter he sits on the ground keeping his right knee touching the ground and the left knee lifted upwards and with folded hands utters Pranipat Sutra.

प्रणिपात सूत्र

णमोऽत्थु णं अरिहंताणं, भगवंताणं, आइगराणं, तित्थयराणं, सयंसंबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिसवरपुंडरीयाणं, पुरिसवरगंधहत्थीणं, लोगुत्तमाणं, लोगनाहाणं, लोगहियाणं, लोगपईवाणं, लोगपज्जोयगराणं, अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं, जीवदयाणं, बोहिदयाणं, धम्मदयाणं, धम्मदेसयाणं, धम्मनायगाणं, धम्मसारहीणं, धम्मवरचाउरंत-चक्कवट्टीणं, दीवोत्ताणं-सरण-गइ-पइट्ठाणं, अप्पडिहय-वरनाण-दंसणधराणं, वियट्टछउमाणं, जिणाणं जावयाणं, तिण्णाणं तारयाणं, बुद्धाणं बोहियाणं, मुत्ताणं मोयगाणं, सव्वण्णूणं, सव्वदरिसीणं, सिवमयल-मरुअ-मणंत-मक्खय मव्वाबाहमपुणराविक्ति सिद्धिगइं नामधेयं ठाणं संपत्ताणं, नमो जिणाणं जियभयाणं।

भावार्थ : राग-द्वेष रूपी शत्रुओं का हनन करने वाले अरिहन्तों-भगवन्तों को नमस्कार हो। (आगे के पदों में अरिहन्तों की महिमाएं-विशेषताएं बताई गई हैं-)

वे अरिहन्त भगवान् धर्म की आदि करने वाले हैं, चतुर्विध तीर्थ की स्थापना करने वाले हैं एवं स्वयं ही संबोधि को प्राप्त करने वाले हैं।

वे पुरुषों में उत्तम हैं, पुरुषों में सिंह के समान हैं, पुरुषों में श्रेष्ठ पुण्डरीक (श्वेत कमल) के समान हैं तथा पुरुषों में श्रेष्ठ गन्धहस्ती के समान हैं।

वे लोक में उत्तम हैं, लोक के स्वामी हैं, लोक का हित करने वाले हैं, लोक में दीपक के समान हैं तथा लोक में ज्ञान का उद्योत (प्रकाश) करने वाले हैं।

वे अभयदान देने वाले हैं, ज्ञान रूपी चक्षु देने वाले हैं, धर्म-मार्ग देने वाले हैं, शरण देने वाले हैं, संयम रूपी जीवन देने वाले हैं तथा बोधि बीज का दान देने वाले हैं।

वे धर्म के दाता हैं, धर्म के उपदेशक हैं, धर्म के नायक हैं, धर्म-रथ के सारथि हैं एवं चारों गतियों का अन्त करने वाले श्रेष्ठ धर्म के चक्रवर्ती हैं।

चार गति रूप संसार सागर में डूब रहे जीवों के लिए वे अरिहन्त भगवान् द्वीप के समान रक्षक, शरणभूत, आश्रयभूत एवं आधारभूत हैं। बाधारहित श्रेष्ठ ज्ञान और दर्शन को धारण करने वाले तथा घाती कर्मों से सर्वथा रहित हैं।

वे स्वयं राग-द्वेष रूपी कर्म शत्रुओं को जीतने वाले हैं तथा दूसरों को जिताने वाले हैं। वे संसार सागर से स्वयं तिर गए हैं तथा दूसरों को तिराने वाले हैं। उन्होंने स्वयं बोध को प्राप्त कर लिया है तथा दूसरों को बोध देने वाले हैं। वे स्वयं कर्मों से मुक्त हैं तथा दूसरों को मुक्त करने वाले हैं।

वे सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाले) हैं, सर्वदर्शी (सब कुछ देखने वाले) हैं, शिव (कल्याण रूप) हैं, अचल (स्थिर) हैं, अरुज (रोग रहित) हैं, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध (बाधा-पीड़ा आदि से रहित), पुनरागमन से रहित, एवं सिद्धि गति नामक स्थान को प्राप्त कर चुके हैं। समस्त प्रकार के भयों को जीतने वाले ऐसे जिनेन्द्र भगवन्तों को मेरा नमस्कार हो।

विशेष : प्रणिपात सूत्र दो बार पढ़ा जाता है। प्रथम बार **'ठाणं संपत्ताणं'** पद बोला जाता है। दूसरी बार इस पद के स्थान पर **'ठाणं संपाविउकामाणं'** यह पद बोला जाता है। 'ठाणं संपत्ताणं' पद द्वारा सिद्धि-स्थान को प्राप्त आत्माओं को नमस्कार किया जाता है तथा 'ठाणं संपाविउकामाणं' पद द्वारा सिद्धि-स्थान को प्राप्त करने का लक्ष्य रखने वाले अरिहंतों, केवलियों को वन्दन किया जाता है।

English Interpretation: I pay my obeisance to blessed omniscents (Arihants) who have crushed internal enemies namely attachment and hatred. (In the remaining part, the great traits of arihants have been narrated).

The Arihant are the founders of dharma. They establish four-fold order (Tirath). They gain perfect knowledge with their own effort.

They are excellent among human beings. They are fearless like lion. They are unique like white lotus. They are like grotesque elephants among men.

They are best in the universe. They are the master of the world. They are benevolent of the world. They are like the lighted lamp. They spread the light of true knowledge in the world.

They provide freedom from fear. They offer vision in the form of right knowledge. They show the spiritual path. They offer the protection. They bless with

life of self-restraint. They provide the basic seed of true knowledge. They grant dharma. They lecture about dharma. They are the source of dharma. They are emperor of unique dharma that brings an end to roaming in four states of existence.

They have themselves overpowered the inimical karma generating from feeling of attachment and hatred. They also assist others in such struggle. They have crossed the worldly ocean of birth and re-birth and help others in crossing it. They have gained omniscience with their own efforts and provide true knowledge to others. They are liberated from the clutches of karma and help others in the task of liberation.

They have perfect knowledge and perfect vision. They are citadel of welfare. They are stationary and are free from all disease. They have arrived at the permanent abode which is termed as Salvation (Siddha stage) where they shall remain for endless period and they shall never be eliminated from there and shall never come across any obstacle. They have overcome all sorts of fears. I bow to such souls (Jinendras)

Note: Pranipat Sutra is recited twice. In the first recitation word, thanum sampattanum' is uttered while in the second recitation instead of these words, thanum sampavaya-kammanum are uttered. With the words thanum sampattanum, there is obeisance to those souls who have attained salvation while in words thanum samapavayo-kammanum, there is obeisance to such human beings who have attained perfect knowledge and whose ultimate goal is to attain salvation.

विधि : तत्पश्चात् आवश्यक की आज्ञा के विधान के रूप में निम्नोक्त सूत्र पढ़ा जाता है–

Procedure: Thereafter, in order to get permission for reciting avashayak, the following aphorism is narrated.

आवस्सही सूत्र

आवस्सही इच्छाकारेण संदिसह भगवं! देवसी पडिक्कमणो ठायमि, देवसी-ज्ञान-दर्शन-चरित्त तप-अतिचार-चिन्तवणा अर्थं करेमि काउसग्गं।

भावार्थ : हे भगवन्! मुझे आज्ञा प्रदान करें, मैं दिवस-संबंधी आवश्यक करना चाहता हूं। मैं प्रतिक्रमण प्रारंभ करता हूं। दिवस संबंधी ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप आदि साध्वाचार में लगे हुए अतिचारों के चिन्तन के लिए मैं कायोत्सर्ग करता हूं।

Paraphrase: O Lord! Kindly grant me permission I want to recite avashyak relating to the affairs of the day. I start re-capitulation. I undertake meditation

(detachment from physical body) in order to recapitulate the digression that might have occurred during the day in activities relating to knowledge, perception, ascetic conduct austerities and the like in my life as mendicant.

विधि : इसके पश्चात् नमस्कार सूत्र का मनन करके (देखें पृष्ठ 8 पर) 'सामायिक सूत्र' द्वारा सामायिक की प्रतिज्ञा ग्रहण की जाती है।

Procedure: Thereafter Namaskar Sutra is uttered mentally and then the vow of Samayik is undertaken by uttering Samayik Sutra.

सामायिक सूत्र

करेमि भंते! सामाइयं सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, तिविहं तिविहेणं–मणेणं वायाए काएणं न करेमि, न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणु-जाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।

भावार्थ: हे भगवन्! मैं समता भाव रूपी सामायिक व्रत को ग्रहण करता हूं। समस्त सावद्य योगों (पाप रूप व्यापारों) का त्याग करता हूं। जीवन-भर मन, वचन, काया–इन तीनों योगों से न मैं स्वयं पाप कर्म करूंगा, न किसी अन्य से पापकर्म कराऊंगा और पापकर्म करने वालों का अनुमोदन भी नहीं करूंगा।

भगवन्! पहले किए गए पापों से मैं निवृत्त होता हूं, उन्हें हृदय से बुरा मानता हूं, आपकी साक्षी से उनकी निन्दा करता हूं, गुरु की साक्षी से गर्हा करता हूं एवं पाप रूप आत्मा का परित्याग करता हूं।

Literal Meaning: O Lord! I practice the vow of Samayik in a state of equanimity. I discard all the activities involving violence throughout my life. I shall not engage myself mentally, verbally or physically in any sinful activity. I shall not ask any one to engage in any such act and shall not even support any such acts.

O Lord! I detach myself from all sins committed earlier. I consider those sins as bad from the core of my heart. I despise them in your presence. I condemn them at the feet of my spiritual teacher. I discard the soul engrossed in sin.

विवेचन : सामायिक शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है–**समस्य आयः समायः, सः प्रयोजनं यस्य तत् सामायिकम्।** राग और द्वेष से ऊपर उठकर समता भाव में स्थित होने का प्रयोजन जिससे सिद्ध हो, उसे सामायिक कहा जाता है।

राग और द्वेष, ये दो दुर्दम्य बंधन हैं। अज्ञान के कारण आत्मा मन के अनुकूल वस्तुओं और व्यक्तियों पर राग करता है तथा मन के प्रतिकूल वस्तुओं और व्यक्तियों पर द्वेष भाव धारण करता है। इससे विषमता उत्पन्न होती है। विषमता ही दुख का कारण एवं संसार-भ्रमण का मूल है।

ज्ञान, दर्शन एवं आनंद, ये आत्मा के मूल स्वभाव हैं। आत्मा के मूल स्वभाव में रमण करना ही सामायिक है। व्यक्ति को जो भी सुख-दुख अथवा हानि-लाभ प्राप्त होता है, वह पूर्व कर्मों के अनुसार होता है। प्राप्त होने वाले सुख और दुख में जो व्यक्ति या वस्तु निमित्त है उस पर राग या द्वेष का भाव लाना अज्ञान है। सुख और दुख को स्वकृत जानकर व्यक्ति को समभाव का अभ्यास करना चाहिए। उसी का नाम सामायिक है।

प्रस्तुत सूत्र में साधक सामायिक (समताभाव में स्थिरता) की प्रतिज्ञा ग्रहण करते हुए संकल्प व्यक्त करता है—मैं तीन करण और तीन योग से सावद्य व्यापारों का त्याग करता हूं। अतीत काल में मैंने जो पाप किए हैं उनकी निन्दा और गर्हा करता हूं तथा उनका परित्याग करता हूं।

सावद्य का अर्थ है—पाप। हिंसा, झूठ, चोरी, दुराचार, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि अठारह पापस्थान हैं। सामायिक की साधना में इन अठारह पापों का त्याग किया जाता है।

तीन करण, तीन योग : करण का अर्थ है—प्रवृत्ति। किसी भी कार्य में प्रवृत्ति तीन तरह से होती है—(1) कृत—किसी कार्य को स्वयं करना, (2) कारित—दूसरों से करवाना, एवं (3) अनुमोदित—कार्य में प्रवृत्त दूसरों को अच्छा मानना।

योग—यह जैन पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ है—मन, वचन और काय। कार्य करने का संकल्प करना मनोयोग है। कार्य संबंधी वचन का उपयोग करना वचन योग है, तथा कार्य को करना काय योग है।

प्रस्तुत सामायिक सूत्र श्रमण के लिए है। श्रमणत्व की भूमिका में प्रवेश लेते हुए साधक तीन करण और तीन योग से अठारह पापों का जीवन भर (जावज्जीवाए) के लिए त्याग करता है। इसीलिए यहां **जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं** पदों का उपयोग हुआ है जिनका अर्थ है—जीवन भर के लिए पाप कर्मों का तीन करण (कृत, कारित्त, अनुमोदित) और तीन योग (मन, वचन, काय) से त्याग करता हूं।

श्रावक की सामायिक दो करण और तीन योग से होती है। श्रावक को पारिवारिक और सामाजिक दायित्वों का वहन करना होता है इसलिए सावद्य के अनुमोदन का त्याग उसके लिए संभव नहीं हो पाता है।

साधु की सामायिक जीवनपर्यंत के लिए होती है जबकि श्रावक की सामायिक एक, दो, तीन आदि मुहूर्त्त के लिए होती है। इसीलिए श्रावक के सामायिक सूत्र में "**जावज्जीवाए**" के स्थान पर "**जावनियमं**" (जब तक प्रतिज्ञा ली गई है) पद का व्यवहार होता है।

सूत्र में प्रयुक्त **निंदामि**–निंदा करता हूं, एवं **गरिहामि**–गर्हा करता हूं, ये दोनों शब्द समानार्थक होते हुए भी सूक्ष्म अर्थभेद रखते हैं। 'निंदामि' से तात्पर्य है–आत्म-साक्षी से पापों की निंदा करना और 'गरिहामि' से तात्पर्य है–गुरु की साक्षी से पापों का परित्याग करना।

अप्पाणं वोसिरामि–आत्मानं व्युत्सृजामि अर्थात् अपनी कषाय रूप आत्मा का परित्याग करता हूं।

Elaboration: An activity that segregates a person from attachment and hatred and helps in gaining the stable state of equanimity is called samayik.

Hatred and attachment are the two bondages that can be overcome only with very great effort. Due to wrong knowledge the self develops a feeling of attachment for those objects and persons that are functioning according to his liking and has a feeling of hatred for those objects and persons who are not functioning according to his desire. Such bent of mind generates disturbance and that disturbance is the cause of trouble. It then leads to wandering in the cycle of birth and death. The fundamental nature of self is right knowledge, right perception and ecstatic happiness. To remain absorbed in this state is in reality the Samayik. Whatever worldly pleasures or troubles, gains and losses that a person faces, it is all due to Karmas of earlier period (or earlier lives). It is lack of true knowledge in case one has any feeling of attachment or hatred in respect of objects or persons as they are only secondary agents in that act. The monk should practice state of equanimity knowing well that all objects that provide pleasure or pain to him are the creation of his own Karmas performed by him in the past. This is called Samayik.

In the present aphorism, the practitioner makes a firm resolve to remain in a state of equanimity. He expresses it in these words "I discard all the activities involving violence in three ways—doing, getting done and supporting what is done and in three forms namely mentally, verbally and physically. I curse that sin which I had committed in the past. I repent for it in the presence of my spiritual master and I discard it forever.

Savadya means sin. There are eighteen forms of sins namely violence, falsehoods, stealing, sex, attachment for possessions anger, greed, ego, deceit and the like. In the practice of Samayik all such eighteen types of sinful activities are discarded.

Three Karan, Three Yog

Karan means activity, to engage in any activity. A person engages himself in any acitivity in three ways—(1) To do any act himself, (2) To get the work done, (3) Anumodit—to appreciate the work done by others.

Yog: It is a special word used in Jainism. It is of three types—activity of mind, word and deed. The resolve in the mind to do an act is called Manoyog. To express it verbally is called Vachan Yog. To do the act physically is called Kaya Yog.

The present Samayik Sutra is for ascetics (Shramana). While entering in monkhood, the enterant discards all the eighteen type of sins for the entire life mentally, orally and physically (three yogas) and in three ways namely doing, getting done and in appreciating the sin being done by others. So the aphorism Javajjivaya tiviham tivehenam has been mentioned. It means discarding sins in three manners (doing, getting done and appreciation) and in three states of yoga (mentally, orally and physically)

The samayik of householder spiritual practitioner (Shrawak) is in two karans (doing and getting done) and three yogas—A sharavak has to discharge family and social responsibilities. So, it is not possible for him to avoid appreciating what is being done by others. The Samayik of a Jain monk is for the entire life while the Samayik of Shravak is for one, two, three and the like Muhurat (Muhurat is a period of 48 minutes). So in the Samayik Sutra of Shravak, the word upto the time mentioned in his resolve (Jaawa Niyam) instead of throughout life (Jaava Jeewaya) has been mentioned.

The word **Nindami**—I condemn and **Garihami**—I curse in public have almost the same meaning but there is a minor difference Nindami means that condemnation of sin in the presence of one's self while Garihami means that it is done in the presence of the spiritual master.

Appanum Vosirami—It means that I discard my soul besmeared with passions.

सामायिक आवश्यक

चित्र संख्या – 5

चित्र–परिचय – 5

Illustration No. 5

सामायिक आवश्यक

स्वयं को मन, वचन और काय – इन तीनों तलों पर समभाव में स्थापित करने की प्रतिज्ञा है सामायिक। चित्र में साधक सामायिक की प्रतिज्ञा ग्रहण कर रहा है।

इनसैट्स – में परिवार, सचित्त वनस्पति, खेती–बाड़ी, धन–स्वर्ण एवं क्लेश आदि को परिभाषित करने वाले चित्र हैं। उक्त संबंधों, वस्तुओं और हिंसात्मक व्यापारों से साधक स्वयं को जीवन पर्यंत के लिए अलग करने की प्रतिज्ञा करता है।

Samayik Aavashyak

"The Samayik" is a vow to establish oneself in equanimity at all the three levels of mind, speech and body. In the illustration the practiser is accepting the vows of observing a Samayik.

In the insets the pictures defining the afflictions etc. of family, organic vegetation, agriculture, wealth and gold have been illustrated. The practiser avows to keep himself separate from these relations, objects and violent activities for life time.

संक्षिप्त प्रतिक्रमण सूत्र

इच्छामि ठामि काउस्सग्गं जो मे देवसिओ अइयारो कओ, काइओ, वाइओ, माणसिओ, उस्सुत्तो, उम्मग्गो, अकप्पो, अकरणिज्जो, दुज्झाओ, दुचिंत्तिओ, अणायारो, अणिच्छियव्वो, असमण-पावग्गो, णाणे तह दंसणे, चरित्ते सुय सामाइए, तिण्हं गुत्तीणं, चउण्हं कसायाणं, पंचण्हं महव्वयाणं, छण्हं जीवनिकायाणं, सत्तण्हं पिंडेसणाणं, अट्ठण्हं पवयणमाऊणं, नवण्हं बंभचेर गुत्तीणं, दसविहे समण-धम्मे, समणाणं जोगाणं जं खंडियं जं विराहियं। जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

भावार्थ : (कायोत्सर्ग में प्रवेश का इच्छुक साधक दिवस-संबंधी संभावित दोषों से पीछे हटने की प्रतिज्ञा करता है-)

मैं दिवस संबंधी अतिचारों से निवृत्त होने के लिए कायोत्सर्ग करना चाहता हूं। मैंने मन, वचन, काय, संबंधी किसी अतिचार का सेवन किया हो, उत्सूत्र (आगम विरुद्ध) की प्ररूपणा की हो, उन्मार्ग (वीतराग मार्ग के विपरीत) को ग्रहण किया हो, अकल्पनीय और अकरणीय कार्य किया हो, आर्त्त एवं रौद्र ध्यानों को ध्याया हो, दुष्ट चिन्तन किया हो, अनाचार का सेवन किया हो, नहीं चाहने योग्य को चाहा हो, साधु-धर्म के विपरीत काम किया हो, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, श्रुत, सामायिक तथा तीन गुप्ति के विषय में कोई अतिचार सेवन किया हो, चार कषायों का दमन न किया हो, पांच महाव्रतों के पालन एवं छह जीवनिकायों की रक्षा में प्रमाद किया हो, सात पिण्डैषणाओं, आठ प्रवचन-माताओं, नवविध ब्रह्मचर्य गुप्तियों, दशविध श्रमण-धर्म तथा श्रमण संबंधी योगों (कर्त्तव्यों) का देशत: खण्डन किया हो अथवा विराधना की हो, तो उससे उत्पन्न पाप मेरे लिए निष्फल हों।

Literal Meaning: (The disciple desirous of practicing meditation (Kayotsarg) makes, a resolve in this manner to discard the possible faults that may occur during the day).

I want to do Kayotsarg in order to cleanse myself from digressions in the daily conduct. I might have committed any digression mentally, orally or physically. I may have interpreted scriptures different from the one enunciated by the omniscient. I may have practiced different from that laid by the omniscient. I might have done an act that should not have been done or that which is tabooed. I might have passed through

a state of remorse or anger. I might have had evil thoughts. I might have done any act not in line with ascetic code. I might have committed any fault in respect of right knowledge, right perception, right conduct, scriptural knowledge, practice of Samayik, and three stoppers (guptis). I might not have controlled four passions. I might have incurred slackness in practice of five major vows and in providing protection (or compassion) to six types of living being. I might have partially transgressed in practice of seven principles relating to collection of food (pindaishana), eight pravachan maata (five samitis and three guptis), nine principles relating to celibacy, ten types of ascetic dharma and in practice of ascetic conduct. I might have gone astray from spiritual code. I pray that that I may he absolved of the sin arising out of such wrong deed.

विवेचन : इस सूत्र में पूरे प्रतिक्रमण का सार समाहित है। साधु का पूरा जीवन नियमों और मर्यादाओं से रक्षित होता है। परन्तु प्रमाद आदि के कारण नियमों में दोषों की संभावना बनी ही रहती है। साधु पुनः पुनः अप्रमाद की साधना करता है और संभावित भूलों का प्रतिक्रमण द्वारा शोधन करता है।

प्रस्तुत सूत्र के माध्यम से साधक अपने आचरण का अवलोकन करता है। वह स्मरण करता है कि उसके ज्ञान, दर्शन, चारित्र में कहीं दोष तो नहीं लगा, उसने सूत्र-विरुद्ध और वीतराग मार्ग-विरुद्ध कोई आचरण तो नहीं किया। दुर्ध्यानों और कषायों में तो उसका मन नहीं भटका। गुप्तियों के आराधन, महाव्रतों के पालन, षड्जीवनिकाय के रक्षण में उससे प्रमाद तो नहीं हुआ। इसी प्रकार सात पिण्डैषणाओं, आठ प्रवचन माताओं, ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियों, दस प्रकार के श्रमण-धर्म तथा श्रमण-संबंधी समग्र आचार के पालन में कोई दोष तो उत्पन्न नहीं हुआ। यदि अंशरूप अथवा बहुरूप कोई दोष लगा हो तो वह **"तस्स मिच्छामि दुक्कडं"** द्वारा उससे पीछे हटने की प्रतिज्ञा करता है।

तीन गुप्तियों से लेकर दस प्रकार के श्रमण-धर्म तक का सूत्र में उल्लेख हुआ है। उनका संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

तीन गुप्ति–(1) मन गुप्ति, (2) वचन गुप्ति, एवं (3) काय गुप्ति।

चार कषाय–(1) क्रोध, (2) मान, (3) माया, और (4) लोभ।

पांच महाव्रत–(1) अहिंसा, (2) सत्य, (3) अस्तेय (अचौर्य), (4) ब्रह्मचर्य, एवं (5) अपरिग्रह।

संक्षिप्त प्रतिक्रमण सूत्र

चित्र संख्या 6

चित्र-परिचय – 6

Illustration No. 6

संक्षिप्त प्रतिक्रमण सूत्र

यहाँ पूरे प्रतिक्रमण का संक्षिप्त स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। प्रथम चित्र में साधक मन, वचन, काय से अतिचारों से पीछे लौटने का संकल्प करता है। आगे के चित्रों में प्रतीकों के माध्यम से उत्सूत्र आदि के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है।

- तृतीय चित्र में गौशालक के नियतिवाद नामक मोक्षमार्ग से विपरीत मार्ग यानि उन्मार्ग को चित्रित किया गया है।
- चतुर्थ चित्र में संभूत मुनि द्वारा चक्रवर्ती की ऋद्धि को देखकर निदान करने को दर्शाया है। निदान आदि साधु के लिए निषिध हैं।
- पांचवें चित्र में सुभद्रा आर्या को बालकों को खिलाते-खेलाते दिखाया है। साध्वी के लिए यह न करने योग्य कर्म है।
- छठे चित्र में कुण्डरीक मुनि साधु-धर्म को छोड़कर घर लौटने का विचार (दुर्ध्यान) कर रहा है।
- सातवें चित्र में नंद मणिकार के बावड़ी में आकर्षण को चित्रित किया गया है। आठवें और नौवें चित्रों में क्रमशः भूता आर्या और लक्ष्मणा आर्या के संयम के विपरीत आचार-विचार को दर्शाया गया है।
- अंतिम चित्र में श्रमणाचार की खण्डना-विराधना आदि के चिंतन के साथ दोषों के मिथ्या होने की कामना की गई है।

Repentance Sutra in Brief

The brief mode of full pratikraman has been presented here. In the first illustration the practiser resolves to withdraw from the excessive motions of mind, speech and body. In the next illustrations the modes of Utsutras have been clarified through symbols.

- In the third picture the "Niyativad" of Goshalak, the opposite way from the way to liberation, has been illustrated.
- In the fourth illustration Sambhut Muni has been shown contemplating of "Nidan" through seeing the extraordinary wealth of supreme lord (Chakravarti), "Nidan" etc. are improper for an ascetic.
- In fifth illustration Subhadra nun has been shown feeding and getting the children played, For a nun this kind of activity is prohibited.
- In the sixth illustration Kundrik Muni has been illustrated who contemplates to go back home embarrassing from the problems of monk's life.
- In the seventh picture the infatuation of Nand Manikar towards the (Bawali), a deep tank with steps has been illustrated. In eighth and nineth illustration the of the nuns Bhuta and Lakshmana in opposition to restraint have been shown.
- In the last illustration with the thought of the refutation of sagacity the faults to be made false has been desired.

छह जीवनिकाय–(1) पृथ्वीकाय, (2) अप्काय, (3) तेउकाय, (4) वायुकाय, (5) वनस्पतिकाय एवं, (6) त्रसकाय।

सात पिण्डैषणा–(1) असंसृष्टा, (2) संसृष्टा, (3) उद्धृता, (4) अल्पलेपा, (5) अवगृहीता, (6) प्रगृहीता, एवं (7) उज्झित धर्मा।

(विशेष जानकारी के लिए देखिए आचारांग सूत्र द्वितीय श्रुतस्कंध का पिण्डैषणा अध्ययन।)

आठ प्रवचन माता–पांच समिति और तीन गुप्ति के संयुक्त स्वरूप को आठ प्रवचन माता कहा जाता है। पांच समिति–(1) ईर्या समिति, (2) भाषा समिति, (3) एषणा समिति, (4) आदान भाण्ड मात्र निक्षेपणा समिति, एवं (5) उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण परिष्ठापनिका समिति। तीन गुप्तियों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियां–(1) विविक्त वसति सेवन, (2) स्त्रीकथा परिहार, (3) निषद्या-नुपवेशन (4) स्त्री अंगोपांगदर्शन वर्जन (5) कुड्यान्तर शब्द श्रवण-वर्जन, (6) पूर्वभोगा-ऽस्मरण, (7) प्रणीतभोजन त्याग, (8) अतिमात्रा भोजन त्याग, एवं (9) विभूषा वर्जन। (विशेष अध्ययन के लिए देखिए उत्तराध्ययन सूत्र का 16वां अध्ययन।)

दस प्रकार का श्रमण-धर्म–(1) क्षमा, (2) मुक्ति (संतोष), (3) आर्जव (सरलता), (4) मार्दव (अभिमान त्याग), (5) लाघव (लघुता-हल्कापन), (6) सत्य, (7) संयम, (8) तप, (9) त्याग, एवं (10) ब्रह्मचर्य।

Elaboration: In this aphorism, there is the gist of entire pratikraman. The entire life of a Jain monk is based on principle and limitations laid down in the ascetic code. But due to any slackness there is possibility of incurring digressions and faults in their practice. A monk again and agam practices the state of non-slackness. By recollecting possible foults and repenting for the same he cleans his self through pratikraman.

With the present aphorism the practitioner looks into his conduct. He recollects whether he has incurred any fault in practice of right knowledge, right vision and right conduct. He studies if he might have done anything not in line with scripture or the path enunciated by the omniscient. He recollects whether he had passed through evil thoughts or influence of passions in his mind. He observes if he had incurred any slackness in practice of guptis, five major vows and in protection to six types of living beings. He looks into whether he has committed any faults in practice of seven principles, relating to collection of alms, in practice of eight *pravachan maatas* nine

restrictions relating to celibacy, ten types of ascetic *dharma* and in practice of all principles, relating to ascetic code of conduct. In case he finds that he has committed any fault partially or repeatedly he resolves to divert from it by pronouncing *tuss michhami dukkadum.*

In the *Sutra,* there is mention of three *guptis* and ten types of *ascetic dharma.* Its nature in brief is as under:

Three Guptis—1. Stopping mental activities, 2. Stopping verbal activity, 3. Stopping movement of body.

Four passions—1. anger, 2. ego, 3. deceit , 4. greed

Five major vows—vows of 1. Non-violence, 2. Truth, 3. non-stealing, 4. celibacy, 5. non-attachment.

Six types of living beings—1. earth bodied, 2, water bodied, 3. fire-bodied, 4. air-bodied. 5. plant bodied and 6. mobile living beings.

Seven principles relating to food—1. asansrishta, 2. sansrishta, 3. Udhrit, 4. alp-lopa—that which is slightly pasted with butter 5. avagrihita, 6. pragrihita and 7. ujhit dharma—that which is kept by householder for merely discarding it (For detailed study. See chapter of Pindaishana in second part of Acharang Sutra).

Eight pravachan matas—Five samities and three guptis are collectively termed as eight pravachan matas. Five samatis are : Samitis relating to 1. movement (Iriya), 2. Speaking (Bhasha samiti), 3. Collection of food (Eshana), 4. handling pot or any article, 5. Discarding stool, urine, dirt of the mouth, body or nose.

Three guptis have been explained already.

Nine restrictions concerning practice of celibacy.

1. To stay in lonely place.
2. To avoid study about women—their features
3. To avoid talk on a seat where a lady had sit earlier
4. To avoid staring at the limbs of a women
5. To avoid listening to the amorous talk
6. To avoid recollecting early sexual life
7. To avoid rich food
8. To avoid consumption of food in large quantity

9. To avoid decoration of the body

(For special study see 16th chapter of Uttaradhyayan Sutra)

Ten types of shraman (Ascetic) dharma—Pardon, 2. Satisfaction, 3. Straight-forwardness, 4. To avoid ego. 5. To remain light in collection, 6. Truth, 7. Self-restraint, 8. Detachment, 9. Celebacy.

विधि : तत्पश्चात् 'उत्तरीकरण' सूत्र (पृष्ठ 15) को एक बार पढ़कर कायोत्सर्ग अवस्था में अतिचार के निम्नोक्त पाठों का क्रमशः मनन किया जाता है।

Procedure: Thereafter the Uttarikaran Sutra is recited once and then in the posture of meditation (Kayotsarg) the following sutra relating to digression, in vows is mentally meditated.

ज्ञान के अतिचारों का पाठ

आगमे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—सुत्तागमे, अत्थागमे, तदुभयागमे— एहवा श्रुत ज्ञान के विषय जे कोई अतिचार लगा होय ते मैं आलोउं—1. जंवाइद्धं, 2. वच्चामेलियं, 3. हीणक्खरं, 4. अच्चक्खरं, 5. पयहीणं, 6. विणयहीणं, 7. जोगहीणं, 8. घोसहीणं, 9, सुट्ठुदिण्णं, 10. दुट्ठुपडिच्छियं, 11. अकाले कओ सज्झाओ, 12. काले न कओ सज्झाओ, 13. असज्झाइए सज्झायं, 14. सज्झाइए न सज्झायं। जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

भावार्थ : आगम तीन प्रकार का कहा गया है, जैसे कि—(1) सूत्रागम, (2) अर्थागम, और (3) तदुभयागम। इस तीन प्रकार के ज्ञान के विषय में यदि कोई दोष लगा हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। (पाठ में कहे गए ज्ञान के चौदह अतिचारों का स्वरूप इस प्रकार है—)

(1) **जंवाइद्धं**—सूत्र के अक्षरों को आगे-पीछे पढ़ा हो।

(2) **वच्चामेलियं**—एक सूत्र का पाठ दूसरे सूत्र के पाठ के साथ मिलाकर पढ़ा हो।

(3) **हीणक्खरं**—सूत्र के पद को अक्षर कम करके पढ़ा हो।

(4) **अच्चक्खरं**—अधिक अक्षर युक्त पठन किया हो।

(5) **पयहीणं**—पदहीन अर्थात् पद छोड़कर पढ़ा हो।

(6) **विणयहीणं**—विनयहीन होकर पढ़ा हो।

(7) **जोगहीणं**—मन, वचन, काय की एकाग्रता से रहित होकर पढ़ा हो।

(8) **घोसहीणं**–उदात्त, अनुदात्त आदि स्वरों से रहित पढ़ा हो।

(9) **सुट्ठुदिण्णं**–शिष्य की योग्यता से अधिक शास्त्र पढ़ाया हो।

(10) **दुट्ठु-पडिच्छियं**–दुष्ट भावों से आगम पढ़ा हो।

(11) **अकाले कओ सज्झाओ**–अकाल (जिन सूत्रों के अध्ययन का जो समय शास्त्रों में कहा गया है, उससे भिन्न काल) में स्वाध्याय किया हो।

(12) **काले न कओ सज्झाओ**–शास्त्रों में कहे गए स्वाध्याय काल में स्वाध्याय न किया हो।

(13) **असज्झाइए सज्झायं**–अस्वाध्याय काल में स्वाध्याय किया हो।

(14) **सज्झाइए न सज्झायं**–स्वाध्याय काल में स्वाध्याय न किया हो।

उपरोक्त चौदह प्रकार के अतिचारों से उत्पन्न हुआ मेरा पाप निष्फल हो।

Literal meaning: The lesson relating to digression pertaining to right knowledge.

Aagame tivihay panattay tum jaha—Suttagamay, atthagamay, tadubhayagamay—In case I have committed any fault in respect of study of scriptural knowledge (concerning Agams and that study is of three types—Study of scriptures their meaning and both), I feel sorry for it. They are as under (The nature of likely fourteen faults in study of agams is given below.

1. ***Jamvaiddhum*:** I might have read scriptures not in their respective order.
2. ***Vachchameligam*:** I might have mingled one aphorism with the other wrongly.
3. ***Heenakharum*:** I might have omitted any word or phrase in the aphorism (Sutra).
4. ***Achchakharum*:** I might have added any word or phrase of my own
5. ***Payaheenum*:** I might have omitted any sentence.
6. ***Vinayheenum*:** I might have studied without offering due respect to that scripture.
7. ***Jogheenum*:** I might have studied without concentrating mind, speech and body in it.
8. ***Ghoseheenum*:** I might not have studied with desired accent.
9. ***Suthudinnum*:** The teacher might have taught to the disciple more them his capacity.

10. ***Duthu-padichhiyum*:** The disciple might have studied scripture with evil intention.
11. ***Akalay kao sajjhao*:** I might have studied scriptures at the improper time.
12. ***Kaley na kao sujjhao*:** I might not have studied scriptures at the proper time meant for that study.
13. ***Asajjhaiye sajjhaujam*:** I might have studied scriptures at the time not meant for it.
14. ***Sajhjhaiye ch sajjhayum*:** I might not have studied scriptures at the time prescribed for such study.

विवेचन : आगम तीन प्रकार का है–(1) **सूत्रागम**–तीर्थंकर के प्रवचन को सुनकर गणधर उसे सूत्रबद्ध करते हैं। उसी सूत्र रूप मूल पाठ को सूत्रागम कहा जाता है। (2) **अर्थागम**–तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट–प्रतिपादित अर्थ रूप उपदेश को अर्थागम कहा जाता है। (3) **तदुभयागम**–जिसमें मूल सूत्र और अर्थ का प्रतिपादन हो उसे तदुभयागम कहा जाता है।

ज्ञान के चौदह अतिचारों में अंतिम चार की अर्थ स्पष्टता इस प्रकार है–

अकाले कओ सज्झाओ–अकाल में स्वाध्याय किया हो। जिन आगमों के लिए अध्ययन का काल सुनिश्चित हो उन्हें कालिक सूत्र कहते हैं। शेष को उत्कालिक कहते हैं। जिस सूत्र के लिए स्वाध्याय का जो समय निर्धारित है, उस समय का उल्लंघन करके स्वाध्याय करना अकाल-स्वाध्याय कहलाती है, जो दोषपूर्ण है।

काले न कओ सज्झाओ–स्वाध्याय के लिए निर्धारित समय में स्वाध्याय न करने से यह अतिचार लगता है।

असज्झाइए सज्झायं–आगमों में 32 अनध्यायों का वर्णन है। उक्त अनध्याय के प्रसंगों की स्थिति में स्वाध्याय करने से यह अतिचार लगता है।

सज्झाइए न सज्झायं–अनध्याय न होने पर भी प्रमादवश स्वाध्याय न करना, उक्त अतिचार का परिचायक है।

Elaboration: Scriptural (Agams) study is of three types:

1. ***Suttagam*:** Gandhars listen to the lecture delivered by Tirthankar and then reproduce it in the form of Sutra (aphorism). This version is called Suttagum.
2. ***Atthagum*:** The substance delivered by tirthankars in their lecture is called Arthagum.

3. ***Tadubhayagum*:** It is that which contains both—Sutra and their meaning.

Out of the 14 digressions relating to scriptural studies, the distinct interpretation of the last four is as under:

***Akaalay Kao Sajjhao*:** The studies done at the time not prescribed for that study. The agam for which the time is specifically laid down for their study are called Kalik Sutras. In case that time is not kept in mind and these agams are studied at any different time, it is called study at improper time. So, that study is faulty.

***Kalay na Kao Sajjhao*:** The time has been prescribed in Agams for their study. If it is not studied at that time, it is called Kalay na kao sajjhao.

***Asajjhaijay sajjhayum*:** In scripture, there is mention of 32 periods when Agam should not be studied. If any *such* study is done at that time it is not free from fault.

***Sajjhayayna sajjhaiyum*:** If at a time—which is proper for study of Agams they are not studied due to any lethargy, it is called a fault.

दर्शन-अतिचार आलोचना

दर्शन सम्यक्त्व-रत्न पदार्थ के विषय में जे कोई अतिचार लागा होय ते मैं आलोउं, 1. श्री जिन वचन सम साचा श्रद्धा न होय, प्रतीत्या न होय, रुच्या न होय। 2. परदर्शन की आकांक्षा वांछा कीधी होय। 3. फल प्रति संदेह आण्या होय। 4. परपाषंडी की प्रशंसा कीधी होय। 5. परपाषंडी से आलाप-संलाप सहसा परचा करा होय, कराया हो, करतां प्रति अनुमोद्या होय। जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : मेरे द्वारा ग्रहण किए गए सम्यक् दर्शन (यथार्थ श्रद्धा) रूपी रत्न के विषय में यदि कोई दोष लगा हो, तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। (आगे कहे जाने वाले पांच प्रकार के अतिचारों से सम्यक्त्व रूपी रत्न दूषित होता है–) (1) यदि मैंने जिनेश्वर देव के वचनों में श्रद्धा न की हो, विश्वास न किया हो, रुचि न ली हो, (2) जैन दर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शनों को अपनाने की इच्छा-आकांक्षा की हो, (3) धर्म के फल में संदेह किया हो, (4) अन्य-मति की प्रशंसा की हो, (5) अन्य मति से वाद-संवाद या परिचय किया हो, उनमें विश्वास किया हो, दूसरों को वैसा करने के लिए प्रेरित किया हो, एवं वैसा करने वालों की अनुमोदना-प्रशंसा की हो, तो उक्त क्रियाओं से उत्पन्न मेरा दोष निष्फल हो।

Self-condemnation of Faults Relation To Right Perception:

I feel sorry for any fault that I might have committed in respect of right perception.

1. I might not have taken the word of the omniscient in right perspective. I might not have right faith in it. I might not have a keen desire to know it.
2. I might have a liking for any other philosophy.
3. I might have a doubt in the reward arising out of faith in Jain order.
4. I might have appreciated persons of other faith.
5. I might have developed intimacy with those of other faith.

I feel sorry for any such faults that I might have committed, got committed or supported the commitment of such faults.

Central Theme: In case I have committed any deviation in right faith accepted by me, I curse myself for the same (The right faith gets blurred by five transgressions mentioned ahead)

1. In case I did have faith in any word of the omniscent or not accepted it with interest.
2. In case I have any desire to accept any concept other than the Jain philosophical thought.
3. In case I have in mind any doubt about the reward of Dharma.
4. In case I have appreciated followers of any other faith.
5. In case I have developed intimacy with those of other faith or unnecessarily engaged in philosophical discussion or argument with them. In case I have believed them or inspired others to have an interest in them or appreciated those who follow that faith, then the sin generating from such actions of mine may vanish—I feel sorry for that.

विवेचन : सम्यक्त्व आत्मा का अलंकरण है। उसे रत्न कहा गया है। सम्यक्त्वी साधक वीतराग के वचनों का दृढ़ विश्वासी होता है। अन्य मत-मतान्तरों के भौतिक या क्षणिक आकर्षण उसे लुभा नहीं पाते। प्रस्तुत "दर्शन अतिचार आलोचना" पाठ के माध्यम से साधक आत्म-अवलोकन करता है और आत्म निरीक्षण करता है कि मेरा सम्यक्त्व प्रमाद या असावधानी से दूषित तो नहीं हुआ। यदि वैसी संभावना हुई है तो उससे उत्पन्न दोष से साधक स्वयं को तत्काल दूर कर लेता है।

Elaboration: Faith is an inner trait of the soul. It is termed as a jewel. The real practitioner has staunch faith in the word of the omniscent. He cannot be impressed or lured by the material or transient attractions in other faiths. With the present aphorism relating to repentance for digressions in right faith (or vision), the practitioner looks deeply at his self. He studies whether his perception has not been adversely affected by any slackness or lack of proper attention. In case he finds any such deviation, he immediately removes it.

चारित्र-अतिचार आलोचना सूत्र

ईर्या समिति अतिचार आलोचना

चारित्र पंच महाव्रत के विषय में जे कोई अतिचार लागा होय, ते मैं आलोउं–ईर्या-द्रव्य थकी नीची दृष्टि देख के न चाल्यो होय, खेत्र थकी झूसरे प्रमाण, काल थकी जाव रीयंते, भाव थकी बिन उपयोग प्रवरत्यो होय, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : चारित्र रूपी पांच महाव्रतों के विषय में यदि कोई दोष उत्पन्न हुआ हो, तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। (सर्वप्रथम चारित्र के प्रथम चरण गमन संबंधी अतिचारों की आलोचना करते हुए साधक मनन करता है–) द्रव्य की अपेक्षा से यदि मैंने नीची (गन्तव्य मार्ग पर) दृष्टि रखते हुए गमन न किया हो, क्षेत्र की अपेक्षा से शरीर प्रमाण (साढ़े तीन हाथ प्रमाण) भूमि को बिना देखते हुए गमन किया हो, काल की अपेक्षा से जब तक गमन किया हो–अर्थात् दिन में देखे बिना एवं रात्रि में रजोहरण से पूंजे बिना गमन किया हो, एवं भाव की अपेक्षा से उपयोग (विवेक) रहित गमन किया हो, तो उक्त दिन संबंधी ईर्या के अतिचारों से मैं निवृत्त होता हूं। उससे उत्पन्न पाप निष्फल हो।

(Aphorism relating to repentance for deviation in practice of right conduet)

I feel sorry if I have committed any fault in practice of five great vows—In case I might not have moved keeping my looks downward; I might not have properly looked at the ground ahead upto my length, in case I might not have taken notice of the instruction regarding time of the movement, in case I might not have a proper sense of discrimination while moving—all my faults concerning the day may vanish—I feel sorry for them.

Central Idea: The ascetic conduct lies in practice of five great vows. In case I have committed any fault in that practice, I criticize the same (First of all the practitioner looks into the deviations in respect of his movement which is the first step, ponders over it. In case I might have moved without having a close attention on the path; in case I have moved without looking at the ground upto the length of my body (three and a half haath), in respect of time, in case during the day I have moved without having a close look at the ground and during the night without gently wiping the path with holy broom and I have moved without proper sense of discrimination—I discard these faults committed during the day. May I be absolved of those faults—I feel sorry for them.

भाषा-समिति-अतिचार आलोचना

भाषा समिति के विषय में जे कोई अतिचार लागा होय, ते मैं आलोउं–भाषा कर्कश कठोर परप्राणी को पीड़ाकारी, छेदकारी, भेदकारी, कलहकारी, सावज्जकारी, निश्चयकारी, मिश्र, खोटी भाषा बोली होय, बुलाई होय, बोलतां प्रति अनुमोद्या होय–जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : भाषा (वचन-व्यवहार) के संबंध में यदि मुझे कोई दोष लगा हो तो उसकी मैं आलोचना करता हूं। यदि मैंने कर्कश, कठोर, दूसरे प्राणियों को पीड़ा देने वाली, दूसरों में छेद या भेद उत्पन्न करने वाली, कलह उत्पन्न करने वाली, हिंसाजनक, निश्चयात्मक, कुछ सत्य-कुछ असत्य (मिश्रित), एवं सभ्यजनों के प्रतिकूल भाषा स्वयं बोली हो, दूसरों से बुलवायी हो अथवा बोलने वालों को अच्छा माना हो, तो इस प्रकार की भाषा बोलने से उत्पन्न हुए पाप से मैं पीछे हटता हूं। मेरा वह पाप निष्फल हो।

Self-Criticism of Transgressions in Practice of Code Regarding Speech

I repent for any transgression in practice of the order (samiti) regarding speech. In case I have.uttered any harsh, rude word or such word that hurts the feelings of others or which is likely to create biterness or devision among others, or a word that generates quarrel or produces violence, or word indicating absolute affirmation, or a version which is partially true and partially false or a language which is against the civilized one, such transgression done by me, got done by me or supported by me may generate sin. That sin of mine may be absolved. I retrieve from it. I feel sorry fot it.

एषणा समिति अतिचार आलोचना

एषणा समिति के विषय में जे कोई अतिचार लागा होय, ते मैं आलोउं–सोलह उद्गमन दोष, सोलह उत्पादन दोष, दश एषणा के दोष, पांच मांडले के दोष, पूर्व कर्म, पश्चात् कर्म, असुज्झता आहार-पानी भोगा होय, भोगाया होय, भोगतां प्रति अनुमोद्या होय, सुज्झते आहार-पाणी की गवेषणा न कीधी होय, सैंतालीस दोष माहिलो जे कोई दोष-पाप लाग्या होय–जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : (आहार-पानी प्राप्त करने एवं उपभोग करने की विधि 'एषणा' कहलाती है। एषणा संबंधी संभावित दोषों का पर्यालोचन करते हुए साधक चिन्तन करता है–)

एषणा समिति के संबंध में यदि कोई दोष उत्पन्न हुआ हो तो मैं उसकी आलोचना करतां हूं। सोलह उद्गम दोष (ऐसे दोष जिनका निमित्त गृहस्थ होता है), सोलह उत्पादन दोष (इन दोषों का निमित्त स्वयं साधु होता है), दस एषणा दोष (इन दोषों के निमित्त साधु और गृहस्थ दोनों ही होते हैं), एवं पांच मांडले के दोष (आहार करते हुए रसलुब्ध साधु द्वारा लगाए जाने वाले दोष), ऐसे सैंतालीस दोषों से मेरी एषणा दूषित हुई हो, पूर्वकर्म एवं पश्चात् कर्म की संभावना वाला आहार-पानी ग्रहण किया हो, दूसरों को दिया हो, एवं ऐसा दूषित आहार भोगने वालों को अच्छा जाना हो, साधु के लिए उपयुक्त निर्दोष आहार की अन्वेषणा न की हो, तो उपरोक्त सैंतालीस दोषों के सेवन से उत्पन्न दोषों से मैं पीछे हटता हूं। मेरे वे दोष निष्फल हों।

Self-Criticism of Transgressions in Practice of Collecting Bhiksha (Eshana)

I curse myself for any deviation that I might have committed in practice of instruction relating to collection of bhiksha (food etc). Sixteen likely transgressions relate to production of any substance (Udgaman), sixteen relate to procedure of acceptance. (utpaadan) and ten relate to acceptance and offering (Eshana). Five transgressions relate to consumption (Mândala). I curse myself for any of such forty seven faults committed during the day. May I be absolved of that sin.

Central Theme: The procedure of collecting food and liquids and the way the same should be consumed is called Eshana. Recollecting the likely faults in this practice the practitioner contemplates as under.

In case I have committed any fault relating to Eshana, I condemn the same. Sixteen faults relate to the production (Udgam) of the substance. They occur due to

lack of discrimination by the householder. Sixteen faults relate to acceptance. They are directly caused by the monk by lack of sense of discrimination. Ten faults relate to Eshana (Both the monk and the householder are responsible for these faults). Five faults relate to the caution concerning the way the article should be consumed sitting collectively (in mândala). (They occur in case the ascetic looks into the taste during consumption). Thus my soul might have been marred due to said forty seven faults of Eshana. I might have accepted the food and liquid in which there is likelihood of faults before its acceptance or after its acceptance. I might have offered such faulty food to others or I might have appreciated those who consume such faulty food. I might not have taken care of collecting only faultless food. I now retrieve myself from said forty seven faults. May my faults be absolved.

विवेचन : प्रस्तुत सूत्र में श्रमण की भिक्षा-विधि के दोषों की आलोचना का वर्णन है। इसमें उद्गम, उत्पादन, एषणा एवं ग्रासैषणा के दोषों का संकेत किया गया है। उद्गम के 16, उत्पादन के 16, एषणा के 10 एवं ग्रासैषणा के 5, ऐसे भिक्षा के 47 दोषों का विधान आगमों में हुआ है। 47 दोषों का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है—

Elaboration: In the present sutra, the procedure of self-criticism of faults relating to collection of bhiksha by an ascetic is narrated. The faults relating to production (udgam), collection (utpadan), both (Eshana) and consumption have been mentioned in the scriptures (Agam). The brief description of 47 faults is as under:

सोलह उद्गम दोष

गृहस्थ के निमित्त से ये दोष लगते हैं।

(1) **आधाकर्म**—साधु के निमित्त से बनाया हुआ भोजन लेना आधाकर्म दोष है।

(2) **औद्देशिक**—अन्य मतावलंबी साधुओं के लिए बनाया हुआ भोजन लेना।

(3) **पूतिकर्म**—आधाकर्म आदि दोष से दूषित आहार का कण भी जिस आहार में मिला हो, उसे ग्रहण करना।

(4) **मिश्रजात**—ऐसा आहार जिसे गृहस्थ ने स्वयं के लिए एवं साधु के लिए मिश्रित—संयुक्त रूप से बनाया है, उसे ग्रहण करना।

(5) **स्थापना**—साधु के लिए दूध और पानी आदि को अलग रखना, उस अलग से रखे गए आहार को ग्रहण करना स्थापना दोष है।

(6) **प्राभृतिका**–साधु के निमित्त से जिस जीमणवार का समय आगे-पीछे किया गया है, उस जीमणवार से आहार लेना।

(7) **प्रादुष्करण**–अन्धकार पूर्ण स्थान में दीपक जलाकर दिया गया आहार लेना।

(8) **क्रीत**–साधु के निमित्त से जो आहार खरीद कर लाया गया है, उसे लेना।

(9) **प्रामित्य**–साधु के निमित्त से जो आहार उधार मांग कर लाया गया है, उसे लेना।

(10) **परिवर्तित**–साधु के निमित्त से वस्तुओं का परस्पर आदान-प्रदान कर ज़ो आहार तैयार किया गया है, उसे लेना।

(11) **अभिहृत**–उपाश्रय में लाया हुआ आहार लेना।

(12) **उद्भिन्न**–लिप्य पात्र का लेप हटाकर अथवा सील तोड़कर दिया गया आहार लेना।

(13) **मालापहृत**–ऊपरी मंजिल या छींके आदि से उतार कर दिया गया आहार लेना।

(14) **आच्छेद्य**–निर्बल से छीना हुआ आहार लेना।

(15) **अनिसृष्ट**–सांझे की वस्तु को बिना सभी सांझेदारों की स्वीकृति के लेना।

(16) **अध्यवपूरक**–साधु के निमित्त से बनाए जाते हुए आहार में वृद्धि कर दी जाती है। ऐसे आहार को लेना अध्यवपूरक दोष है।

SIXTEEN FAULTS OF PRODUCTION UDGAM

These faults are committed due to negligence of householder.

1. ***Aadhakarm*:** To accept food prepared by the householder specifically for that monk is marred with aadhakarm fault.
2. ***Audeshik*:** To accept food prepared for the monks of other faiths.
3. ***Pootikarm*:** To accept food which contains a little elements of food that incurs fault of aadhakarm and the like.
4. ***Mishrajaat*:** To accept food prepared by the householder collectively for his family and the monk.
5. ***Sthapana*:** To accept food separately kept by the householder for offering to the monk.
6. ***Prabharitika*:** To accept food from a feast the timings of which has been shifted specifically for visit of the monk.
7. To accept food offered by lighting the lamp at the dark place where it exists.

8. ***Kreet*:** To accept food offered by the householder after purchasing it for the monk.
9. ***Pramiliya*:** To accept food etc. taken on credit by the householder for offering to the monk.
10. ***Parivertit*:** To accept food etc. exchanged by the householder with others for offering to the monk.
11. ***Abhihret*:** To accept food brought by the householder at the place of stay of the monk.
12. ***Udbhim*:** To accept the food offered by the householder after removing the seal or the paste at the top of container.
13. ***Malapahrit*:** To accept the food from the upper floor or taken out from a hanging pot.
14. ***Achhedyn*:** To accept food forcibly snatched by the householder from others for offering to monk.
15. ***Anirisht*:** To accept substance of common ownership without the consent of all the owners.
16. ***Adhyavapoorak*:** To accept food in the preparation of which addition is made for offering to the monk.

सोलह उत्पादन के दोष

निम्नोक्त दोषों का निमित्त स्वयं साधु होता है।

(1) **धात्री**—गृहस्थ के बच्चों को खिला-खेलाकर आहार-पानी लेना।

(2) **दूती**—गृहस्थों के संदेशों का आदान-प्रदान करके आहार लेना।

(3) **निमित्त**—शुभ-अशुभ निमित्त बताकर आहार लेना।

(4) **आजीव**—अपनी जाति, कुल आदि बताकर आहार लेना।

(5) **वनीपक**—दीनता प्रकट करके भिक्षा लेना।

(6) **चिकित्सा**—औषध आदि बताकर भिक्षा लेना।

(7) **क्रोध**—श्राप आदि का भय दिखाकर आहार लेना।

(8) **मान**—लब्धि आदि से गर्वोन्मत्त होकर, अथवा प्रभुत्व दर्शा कर आहार लेना।

(9) **माया**—छलपूर्वक आहार लेना।

(10) **लोभ**–सरस आहार के लिए अधिक घरों में घूमकर भिक्षा लेना।

(11) **पूर्व-पश्चात्-संस्तव**–दाता के माता-पिता अथवा सास-श्वसुर से अपना परिचय बताकर आहार लेना।

(12) **विद्या**–विद्या-सिद्धि की विधि बताकर आहार लेना।

(13) **मंत्र**–मंत्रादि का प्रयोग करके, अथवा मंत्रादि का प्रयोग सिखा कर आहार लेना।

(14) **चूर्ण**–वशीकरण चूर्ण आदि का प्रयोग करके अथवा प्रयोग बता कर आहार लेना।

(15) **योग**–योग-साधना का प्रयोग करके अथवा प्रयोग सिखा कर आहार लेना।

(16) **मूलकर्म**–गर्भधारण, पातन या स्तंभन के प्रयोग बताकर भिक्षा लेना मूलकर्म दोष है।

SIXTEEN FAULTS OF COLLECTION (UTPADAN)

These faults are committed by the monk himself.

1. ***Dhatri*:** To accept food as a reward for playing with children of the householder.
2. ***Dooti*:** To accept food as a reward for conveying the message of the householder to the desired person.
3. ***Nimitt*:** To accept food by telling good and bad future.
4. ***Aajeev*:** To accept food by a monk by telling the family and the caste to which he belongs.
5. ***Vaneepak*:** To accept food by seeking it like a beggar.
6. ***Chikitsa*:** To seek food by telling the treatment for any illness.
7. ***Anger*:** To collect food etc. by indicating the fear of any curse (if not offered).
8. ***Ego*:** To accept the food by showing his miraculous powers.
9. ***Maya*:** To accept food in a deceitful manner.
10. ***Greed*:** To visit many houses in order to collect only tasty food.
11. ***Pooran Pashehat Sanstav*:** To collect food from the parents or in-laws of the person by telling one's bio data.
12. ***Vidya*:** To collect food by telling the donor procedure of learning special trait.
13. ***Mantia*:** To collect food by using any mantra or telling the procedure of reciting any mantia for material benefit.

14. ***Chooran*:** To accept food etc. as a reward for telling the procedure of influencing any person or the method how it should be used.

15. ***Yog*:** To accept food etc. as a reward for teaching any yoga or by using any yoga.

16. ***Mook karm*:** To accept food etc. as a reward for telling the method of becoming pregnant or the method of abortion or of delaying the birth.

दस एषणा के दोष :

(1) **शंकित**–दोषों की संभावना वाला आहार लेना।

(2) **म्रक्षित**–सचित्त पदार्थों का स्पर्श होते हुए भी आहार ले लेना।

(3) **निक्षिप्त**–सचित्त पदार्थ पर रखा हुआ आहार लेना।

(4) **पिहित**–सचित्त पदार्थ से ढ़का हुआ आहार लेना।

(5) **संहृत**–पात्र में पहले से ही अकल्पनीय पदार्थ रखा हो। उस पदार्थ को हटाकर उसी पात्र से आहार ले लेना।

(6) **दायक**–जो दान देने के अयोग्य अथवा असमर्थ है, ऐसे शराबी, गर्भिणी स्त्री आदि के हाथ से आहार लेना।

(7) **उन्मिश्र**–सचित्त पदार्थों से मिश्रित आहार लेना।

(8) **अपरिणत**–ऐसे शाकादि को ग्रहण कर लेना जो पूरी तरह पका नहीं है।

(9) **लिप्त**–तत्काल लीपी हुई भूमि पर चलकर आहार लेना, अथवा दूध, दही, घृत आदि से लिप्त होने वाले हाथ या पात्र से आहार लेना। क्योंकि लेप को सचित्त जल से धोए जाने के कारण पूर्व या पश्चात् कर्म की संभावना रहती है।

(10) **छर्दित**–टपकाए-गिराए जाते हुए आहार को ग्रहण करना।

TEN FAULTS OF ESHANA

1. ***Shankit*:** To accept food which is not free from doubt.
2. ***Prakshit*:** To accept a thing which is touching a living substance
3. ***Nikshipt*:** To accept food which is placed on an organic (sachit) substance
4. ***Pihit*:** To accept food which is covered with a sachit substance
5. ***Sankrit*:** In case the pot is containing the unacceptable foodstuff; to accept food from the pot offered after removing that foodstuff.

6. ***Daayak*:** To accept food from such a person who is unfit or unacceptable in making any offers namely a drunkard or a woman who is pregnant.
7. ***Oonamishra*:** To accept food which is mixed with sachet substance
8. ***Aparinat*:** To accept that vegetable which is not as yet fully cooked
9. ***Lift*:** To accept food after moving on land which is recently **plastered** with cow dung or accept food from the person whose hand is **besmeared** with milk, curd, ghee and the like or the pot contains any such matter as there is the possibility of cleaning it with line water before or after the offering.
10. ***Chherdit*:** To accept food part of which is dripping while the **thing** is being offered. In addition to the above said 42 faults, there are five faults relating to consumption **(graseshna).**

ग्रासैषणा के पांच दोष

ये पांच दोष लाए हुए आहार का उपभोग करते हुए साधु को लगते हैं।

(1) **संयोजना**–दूध, शक्कर, घृत आदि को स्वाद हेतु मिलाकर खाना।

(2) **अप्रमाण**–स्वाद के वशीभूत होकर प्रमाण से अधिक आहार करना।

(3) **अंगार**–आहार की प्रशंसा करते हुए खाना। इससे साधु का संयम अंगार की भांति जलकर राख हो जाता है।

(4) **धूम**–अरस-विरस आहार की निन्दा करते हुए खाना। इससे साधु का संयम धुएं की भांति उड़ जाता है।

(5) **अकारण**–बल-वीर्य की वृद्धि का लक्ष्य रखकर आहार-पानी ग्रहण करना।

FIVE FAULTS OF CONSUMPTION

While consuming the food and liquids that has been brought by the monk during his wandering for bhiksha.

1. ***Sanyajama*:** To mix sugar, ghee and the like in milk in order to make it tasty.
2. ***Apraman*:** To take food more in quantity than normal consumption under the impact of its taste.
3. ***Angaar*:** To appreciate the dish while consuming it. It mars the conduct of self restraint in a monk just as fire reduces things into ashes.

4. ***Dhoom***: *Azas-Viras*: To condemn a foodstuff while consuming it. It wipes out the ascetic conduct of restraint like the smoke.
5. ***Akaaran***: To consume food in order to improve physical strength of the body.

निक्षेपणा समिति अतिचार आलोचना

आयाण भंड-मत्त निखेवणा समिति के विषय में जे कोई अतिचार लागा होय, ते मैं आलोऊं, भंडोवगरण वस्त्र-पात्र बिना पूंजे, बिना पडिलेहे लीधा होय, मूक्या होय, भोगा होय, भोगाया होय, भोगतां प्रति अनुमोद्या होय, काल के काल यथाविधि पूंजणा-पडिलेहणा न करी होय, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : (साधु के उपयोग में आने वाले वस्त्र, पात्र, पुस्तक आदि जितने भी उपकरण हैं उन्हें ग्रहण करने और रखने में विवेक की परम आवश्यकता रहती है। प्रस्तुत समिति में उपकरणों के ग्रहण करने एवं रखने से उत्पन्न दोषों की आलोचना की गई है।)

आदान भाण्डमात्र निक्षेपणा समिति के विषय में यदि कोई दोष लगा है तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। यदि मैंने कोई भी वस्त्र, पात्र आदि उपकरण बिना अच्छी तरह देखे एवं बिना रजोहरण से पूंजे उठाया हो, रखा हो, उपयोग में लिया हो, दूसरों को उपयोग के लिए दिया हो, बिना विवेक से उपकरणों को उपयोग करने वालों की अनुमोदना की हो, शास्त्रोक्त काल में विधिपूर्वक वस्त्रादि की प्रतिलेखना न की हो, तो उक्त अयत्ना से उत्पन्न दोषों से मैं पीछे हटता हूं। मेरा वह दुष्कृत मिथ्या हो।

SELF-CRITICISM OF FAULTS OF NIKSHEPAN SAMITI

I repent for any fault that I may have committed in respect of handling the articles in my possession (Adaan bhund mutt nikhevana samiti). I may have used a cloth or a pot without properly wiping it. I may have taken it without properly examining it. I may have used it in that condition or given it to another for use or may have appreciated one who used it in that condition. I may have done wiping etc. not in the prescribed manner and at prescribed time. May my this fault committed during the day be fruitless. I repent for them.

Central Theme: It is necessary to have a sense of discrimination in respect of accepting and keeping the pieces of cloth, pot book, and the like that are used by

a monk. In the current aphorism, self-criticism of faults committed in this context has been made.

I curse myself for any lack of discrimination in observing the procedure laid down in the code for handling such articles.

In case I may have picked up any cloth, pot or other article of use without properly examining it and wiping it with the ascetic broom (*rajoharn*). I may have placed it on the ground or made use of it myself or got it used by others or appreciated those who use it without proper discrimination. I might not have examined them at the prescribed time in the prescribed manner as laid down in the code. I withdraw myself from the faults arising out of that absence of discrimination. May I be absolved of them.

परिष्ठापनिका समिति अतिचार आलोचना

उच्चार-प्रस्त्रवण, खेल-जल्ल-मल-सिंघाण परिठावणिया समिति के विषय में जे कोई अतिचार लागा होय ते मैं आलोउं, उच्चारादि बिना पूंजे बिना पडिलेहे परठव्या हो, परठाया हो, परठतां प्रति अनुमोद्या होय, परठ के वोसिरे वोसिरे न करी होय, जावता आवस्सही 2, आवता निस्सही 2 न करी होय, थोड़ी भूमिका पडिलेही घणी भूमिका उपरि परठव्या होय, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

भावार्थ : (मल, मूत्र, कफ, शरीर का मैल, खण्डित पात्र (जिनका उपयोग संभव न हो), आदि पदार्थों को परठने (निरवद्य स्थान पर गिराने) को परिष्ठापनिका समिति कहते हैं। इस समिति के संबंध में श्रमण चिन्तन करता है–)

उच्चार, प्रस्त्रवण, खेल (श्लेष्म), जल्ल, मल, सिंघाण आदि के परठने के संबंध में यदि कोई दोष लगा हो, तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। उच्चार आदि पदार्थों को स्थण्डिल भूमि (परठने योग्य अचित्त भूमि) का अच्छी प्रकार से निरीक्षण किए बिना, पूंजे बिना परठा हो, दूसरों से परठवाया हो एवं परठने वालों की प्रशंसा की हो, परठने के पश्चात् 'वोसिरामि' न कहा हो, उपाश्रय से बाहर जाते हुए 'आवस्सही-आवस्सही' एवं पुन: उपाश्रय में प्रवेश करते हुए 'निस्सही निस्सही' इन शब्दों का उच्चारण न किया हो, थोड़ी भूमि का प्रतिलेखन किया हो और अधिक भूमि पर उच्चार आदि परठे हों, तो उपरोक्त दोषों के लिए 'मिच्छामि दुक्कडं' करता हूं। उक्त दोष मेरे लिए मिथ्या हों।

SELF CRITICISM OF FAULTS OF DISPOSAL

I feel sorry for any fault that I may have committed in respect of disposal of excreta (Uchchar), urine (prasravan), sputum (khel) dirt generated by perspiration (Jall), dirt of the body (mal) nose dirt (Singhaan). In case I have disposed of got disposed or appreciated such disposal of excreta and the like without properly examining the spot and cleaning it with the broom, or after such like disposal not uttered that I snap my attachment with it (bosare). While moving out for this purpose I may have not uttered (aavasehi) that I go out for such an essential purpose and on return not uttered (Nissehi) that I have come back to the place of my master. I feel sorry for such deviation committed during the day. May my faults be remitted.

Central Theme: The procedure for disposal of excreta, urine, sputum, body dirt, broken pot that can no longer be used at a place free from violence to any living being is called Parithavana Samiti:

गुप्ति विषयक अतिचार

मन गुप्ति अतिचार आलोचना

मन गुप्ति के विषय में जे कोई अतिचार लागा होय ते मैं आलोउं, मन अट्ट-दुहट्ट, संकल्प-विकल्प, राग-द्वेष की चिंत्वणा करी होय, कराई होय, करतां प्रति अनुमोदी होय, मन का योग खोटा परवरताया होय, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : (गुप्ति का अर्थ है–गोपन करना। पापमयी चिन्तन से मन को रोकना मन गुप्ति है।)

प्रस्तुत पाठ में साधक मानसिक व्यापारों/विचारों का अवलोकन करता है। वह पड़ताल करता है कि मेरा मन कहीं राग-द्वेष, दुर्ध्यान आदि में तो नहीं उलझा। यदि ऐसा हुआ है तो वह इस पाठ द्वारा उक्त दोषों का परिहार करता है।)

मन गुप्ति के संबंध में यदि कोई दोष लगा है तो मैं उसकी निन्दा करता हूं। यदि मेरा मन आर्त्त-रौद्र ध्यान में प्रविष्ट हुआ हो, संकल्प-विकल्प में भटका हो, राग और द्वेष से दूषित हुआ हो, राग-द्वेष का चिन्तन स्वयं किया हो, दूसरों से कराया हो, दुश्चिन्तन करते हुओं को अच्छा जाना हो, बुराइयों में मन उलझा हो, तो उक्त पापों से मैं पीछे हटता हूं। मेरा वह दुश्चिन्तन मिथ्या हो।

FAULTS RELATING TO GUPTIS

Self Criticism of Faults of Disturbance (Gupti in Mind): I feel sorry for any fault occurring in the mind, I may have stray thoughts. I may have feeling of attachment or hatred in my thoughts. I may have inspired to have such thoughts or may have appreciated such thoughts in others. I might have thought in a condemnable manner. I feel sorry for all such faults committed during the day. I pray that I may he absolved of such sins.

Central Idea : (Gupti means to stop). To stop bad thoughts arising in the mind is called gupti)

In the aphorism, the practitioner looks at the thoughts arising in his mind. He examines whether his mind is not entangled in any feeling of attachment, hatred or ill thoughts. In case he notices any such deviation, he with this aphorism discards such faults.

In case I have committed any faults relating to mental stopper (Gupt), I curse it. My mind may have had any fit of anger or may have gone astray in thought activities or had any feeling of attachment or hatred. I may have reflected myself in a state of attachment or hatred. I may have inspired others to reflect in such a manner. I may have supported those who reflect in that manner. My mind might have entangled in such bad reflections. I withdraw myself from such bad activities. May I be absolved of them.

वचन गुप्ति अतिचार आलोचना

वचन-गुप्ति के विषय में जे कोई अतिचार लागा होय ते मैं आलोउं, वचन-स्त्रीकथा, भत्तकथा, देशकथा, राजकथा, चार विकथा माहिलि अनेरी विकथा करी हो, कराई होय, करतां प्रति अनुमोदी होय, बिना उपयोग भाषा बोली हो, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : वचन गुप्ति के संबंध में यदि कोई दोष लगा हो तो उसकी मैं निन्दा करता हूं। मैंने अपने वचन का उपयोग स्त्री संबंधी विकथाओं में, भोजन-पान संबंधी विकथाओं में, देश-विदेश संबंधी विकथाओं में, एवं राजनीति संबंधी विकथाओं में किया हो, दूसरों को वैसा करने के लिए कहा हो, अथवा वैसा करने वालों को अच्छा जाना हो, विवेक रहित होकर वचन का उच्चारण किया हो, तो इस प्रकार से उत्पन्न दोषों से मैं पीछे हटता हूं। मेरे वे दोष निष्फल हों।

Self Criticism of Faults Concerning Stoppage of Speech: I feel sorry for any fault that I may have committed relating to avoiding of speech. I might have talked about women (Istri katha), about food (bhatt katha), about country or about state administration. I may have done such talk myself, inspired others for such talks or supported others who make such talks. May my such faults committed during the day be absolved. I feel sorry for them. I feel sorry for any utterance made without sense of proper discrimination.

काय-गुप्ति अतिचार आलोचना

काय गुप्ति के विषय में जे कोई अतिचार लागा होय ते मैं आलोउं, काया–उठते-बैठते, हिलते-चलते, संकोचत्ते-पसारते भूत-प्राणी जीवों की विराधना करी होय, कराई होय, करतां प्रति अनुमोदी होय, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : काय-गुप्ति के संबंध में यदि कोई दोष लगा है, तो मैं उसकी निन्दा करता हूं। उठते हुए, बैठते हुए, हिलते हुए, चलते हुए, देह को संकोचते हुए, फैलाते हुए यदि सूक्ष्म या स्थूल जीवों की विराधना (हिंसा) मैंने स्वयं की हो, दूसरों से विराधना कराई हो एवं विराधना करने वालों का समर्थन किया हो, तो उक्त अतिचारों से मैं पीछे हटता हूं। मेरे वे दोष निष्फल हों।

Self Criticism of Faults Relating to Bodily Stoppage: I feel sorry for any fault in practicing the vows of stoppage (gupti) of physical activity (kaya) while standing sitting, moving or walking, stretching or pressing my body I may have caused any harm or disturbance to any living being. I might have got done or appreciated the harm being caused by others during the day. May that sin be pardoned.

छह काय संबंधी अतिचार आलोचना

पृथ्वीकायिक विषयक अतिचार आलोचना

पृथ्वीकाय के विषय में जे कोई अतिचार लागा होय ते मैं आलोउं, पृथ्वी-काय–माटी, मरुढ, गेरु, पांडु, हिंगलु, हरताल, लून, खड़िया, जंगाल, सचित्त रज प्रमुख की विराधना करी होय, कराई होय, करतां प्रति अनुमोदी होय, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : पृथ्वी ही जिन एक इन्द्रिय वाले जीवों का शरीर है, उसके संबंध में यदि मैंने किसी प्रकार की हिंसा की हो, तो मैं उसकी आलोचना करता हूं।

सचित्त मिट्टी, मरुड़, गेरु, पाण्डु, हिंगलु, हरताल, नमक, खड़िया, जंगाल (ये सभी पृथ्वी से उत्पन्न होने से उस के अंग माने जाते हैं) एवं सचित्त रज आदि की विराधना मैंने स्वयं की हो, दूसरों से करायी हो, अथवा विराधना करने वालों की अनुमोदना की हो, तो उक्त विराधना से उत्पन्न दोषों का मैं प्रायश्चित्त करता हूं। मेरा वह दुष्कृत मिथ्या हो।

Self Criticism in Respect of Earth-bodies Beings: I feel sorry for any fault committed in case of earth-bodied living beings Earth bodied living beings are in the form of soft earth, hard earth, red earth (gem), hingalu, hartaal, salt, kharia rust, organic earth, I might have caused harm or appreciated those who might have caused such disturbance. I feel sorry for them. May I be absolved of that sin.

अप्काय विषयक अतिचार आलोचना

अप्काय के विषय में जे कोई अतिचार लागा होय ते मैं आलोउं, अप्काय– ओस, हिम, गड़ा, फुंवार, छार, धूयर प्रमुख की विराधना करी होय, कराई होय, करतां प्रति अनुमोदी होय, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : जल ही जिन जीवों का शरीर है, उन जीवों से संबंधित यदि मैंने हिंसादि दोषों का सेवन किया है तो मैं आत्मनिन्दा करता हूं।

जल के विविध रूपों, जैसे कि ओस, बरफ, ओला, फुआर, छार, धुन्ध आदि के आश्रित जीवों की यदि मैंने स्वयं विराधना की हो, दूसरों से कराई हो, विराधना करने वालों को अच्छा जाना हो, तो मैं प्रायश्चित्त करता हूं। उक्त दोषों से मैं पीछे हटता हूं। मेरे वे दुष्कृत निष्फल हों।

Self Criticism regarding Water Bodied Beings: I feel sorry for any fault committed in respect of water-bodied living being, **dew**, snow, hail, frost, mist are various forms of water-bodied beings. In case I may have caused, got caused or appreciated any hurt caused to such beings during the day. I repent for the same and pray that I may be absolved of that sin.

I curse myself for any violence caused to such beings whose body is made of water.

तेजस्काय विषयक अतिचार आलोचना

तेउकाय के विषय में जे कोई अतिचार लागा होय ते मैं आलोउं, तेउकाया– संघट्टे आहार-पानी बहरया होय, बहराया होय, बहरतां प्रति अनुमोद्या होय, तेउकाय प्रमुख की विराधना करी होय, कराई होय, करतां प्रति अनुमोदी होय, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : अग्नि ही जिन जीवों का शरीर है, उनके विषय में यदि हिंसादि दोष लगा है तो मैं उसकी आलोचना करता हूं।

यदि अग्नि से स्पर्शित आहार-पानी मैंने स्वयं ग्रहण किया हो, दूसरों से ग्रहण करवाया हो एवं ग्रहण करने वालों की अनुमोदना की हो, अंगार, ज्वाला आदि अग्निकाय प्रमुख की विराधना की हो तो उससे उत्पन्न दोष की मैं निन्दा करता हूं। मेरा वह दुष्कृत मिथ्या हो।

Self Criticism of Violence to Fire Bodied Beings: I am sorry for any violence caused to fire-bodied living beings. I curse myself for any such fault committed, got committed appreciated by me.

वायुकाय विषयक अतिचार आलोचना

वाउकाय के विषय में जे कोई अतिचार लागा होय ते मैं आलोउं, वाउकाया– वस्त्रे करी, लूंगड़े करी, छेड़े करी, उठते-बैठते, हालते-चालते, पूंजते-पड़िलेहते वाउकाया प्रमुख की विराधना करी होय, कराई होय, करतां प्रति अनुमोदी होय, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : वायु ही जिन जीवों का शरीर है, ऐसे वायुकाय के संबंध में यदि किसी प्रकार का दोष लगा है तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। जैसे कि–वस्त्र या वस्त्रखण्ड के अयत्नापूर्वक झटकने से, अयत्नापूर्वक (खुले मुख) बोलने से, अयत्ना पूर्वक उठने-बैठने, हिलने-चलने, पूंजने एवं प्रतिलेखन करने से वायुकाय प्रमुख की मैंने स्वयं हिंसा की हो, दूसरे से करायी हो एवं करते हुए का अनुमोदन किया हो तो उससे उत्पन्न होने वाला पाप मिथ्या हो। उस दुष्कृत से मैं पीछे हटता हूं।

Self Criticism of Faults to Air Bodied Beings: I feel sorry for any violence to air-bodied beings. While improperly handling cloth. dressing up, sitting or standing,

moving about or while wiping violence may be caused to air-bodied beings. I condemn myself for the same and also for any such violence caused through other by me or appreciated by me.

वनस्पतिकाय विषयक अतिचार आलोचना

वनस्पति-काय के विषय में जे कोई अतिचार लागा होय ते मैं आलोउं, वनस्पति–कंद, मूल, फल-फूल, बीज, हरी, अंकुर, कणक, कपासिया, नीलण-फूलण प्रमुख की विराधना करी होय, कराई होय, करतां प्रति अनुमोदी होय, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : वनस्पति ही जिन जीवों का शरीर है, ऐसे वनस्पतिकाय के संबंध में यदि कोई दोष लगा है तो मैं आत्मसाक्षी से उसकी आलोचना करता हूं। वनस्पति की जातियां–जैसे कि–कंद, मूल, फल, फूल, बीज, हरितिमा, अंकुर, कणक, कपास, नीलण, फूलण आदि की विराधना मैंने स्वयं की हो, दूसरों से कराई हो, विराधना करने वालों को अच्छा जाना हो, तो तत्संबंधी मेरा दुष्कृत निष्फल हो। उस दुष्कृत से मैं पीछे हटता हूं।

Self Criticism of Violence to Plant-Bodied Beings: I feel sorry for any violence caused by me to plant-bodied beings. Root, stalk, flower, fruit, seed, green vegetable, petal, moss are various forms of plant-bodied living being.

I might have caused, got caused or appreciated violence to such being. I curse myself for the same and seek pardon.

द्वीन्द्रिय अतिचार आलोचना

बेइन्द्रिय के विषय में जे कोई अतिचार लागा होय ते मैं आलोऊं, बेइन्द्रिय–सीप, शंख, जोंक, अलसिया, गंडोया, चूरनीया, कौड़ी, लट, गंजाई प्रमुख की विराधना करी होय, कराई होय, करतां प्रति अनुमोदी होय, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : शरीर और रसना–इन दो इन्द्रिय वाले जीवों के विषय में यदि कोई दोष लगा हो तो उस दोष की मैं आलोचना करता हूं। दो इन्द्रिय वाले जीव, जैसे कि–सीप, शंख, जोंक, अलसिया, गंडोया, चूरणीया, कौड़ी, लट, गंजाई आदि जीवों की मैंने स्वयं विराधना की हो,

दूसरों से कराई हो एवं करते हुओं का समर्थन किया हो तो उसके लिए मैं आत्मनिन्दा करता हूं। मेरा वह दुष्कृत निष्फल हो।

Self Criticism of Violence to Two Sensed Beings: I feel sorry for violence to two-sensed beings. Counch shell, louse, earth-worm, alsiya, churniya are various forms of two sensed beings. I might have caused, got caused violence or supported violence to such beings. I curse myself for such faults. May my sin be pardoned.

Two sensed beings have two senses, sense of touch and sense of taste.

त्रीन्द्रिय अतिचार आलोचना

तेइन्द्रिय के विषय में जे कोई अतिचार लागा होय ते मैं आलोउं, तेइन्द्रिय जूं, लीख, चाचड़, माकड़, ढोरा, सुलसली, कीड़ी, कुंथुवा प्रमुख की विराधना करी होय, कराई होय, करतां प्रति अनुमोदी होय, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : (शरीर, रसना और घ्राण (नासिका) वाले जीव त्रीन्द्रिय कहलाते हैं।)

त्रीन्द्रिय जीवों के विषय में यदि कोई अतिचार लगा हो तो मैं आलोचना करता हूं।

तीन इन्द्रिय वाले जीव, जैसे कि जूं, लीख, चाचड़, माकड़, ढ़ोरा, सुसरी, चींटी, कुंथुवा आदि जीवों की विराधना मैंने स्वयं की हो, दूसरों से कराई हो, करने वालों को अच्छा जाना हो तो तत्संबंधी मेरा पाप निष्फल हो।

Self Criticism of Violence to Three Sensed Beings: I feel sorry for any violence caused to three sensed beings. Ant, insects in pulses, spider and the like are three sensed beings. I may have caused violence got caused or supported violence to such beings. I curse myself for the same. May I be absolved of that sin.

Three sensed beings have sense of touch, sense of taste and sence of smell.

चतुरिन्द्रिय अतिचार आलोचना

चौरिंद्रिय के विषय में जे कोई अतिचार लागा होय ते मैं आलोउं, चौरिन्द्रिय–मक्खी, मच्छर, भमरी-भमरा, टिडा, पतंगिया, बिच्छू प्रमुख की विराधना करी होय, कराई होय, करतां प्रति अनुमोदी होय, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : (शरीर, रसना, घ्राण एवं नेत्र, इन चार इन्द्रिय वाले जीव चतुरिन्द्रिय कहलाते हैं।) इन जीवों के विषय में यदि मैंने अतिचारों का सेवन किया हो तो उसकी आलोचना करता हूं। प्रमुख चतुरिन्द्रिय जीव, जैसे कि–मक्खी, मच्छर, भंवरा, भंवरी, टिडा, पतंगिया, बिच्छू आदि जीवों की विराधना मैंने स्वयं की हो, कराई हो, करते हुओं को अच्छा जाना हो, तो मेरा वह पाप निष्फल हो। वैसा दुष्कृत मैं पुन: नहीं करूंगा।

Self Criticism of Violence to Four-Sensed Beings: I feel sorry for any violence caused by me to four-sensed beings—mosquito, bumble-bee; grasshopper, locust, light worm, scorpion, fire worm and the like are various forms of four-sensed beings. I might have caused, got caused or supported violence to such beings during the day. I curse myself for the same. I may be absolved of that sin.

पञ्चेन्द्रिय अतिचार आलोचना

पंचेन्द्रिय के विषय में जे कोई अतिचार लागा होय ते मैं आलोउं, पंचेन्द्रिय–जलचर, थलचर, खेचर, उरपुर, भुजपुर, सण्णी, असण्णी, गरभेजक चौदह ठिकाणे छमु-छम मनुष्य पंचेन्द्रिय प्रमुख की विराधना करी होय, कराई होय, करतां प्रति अनुमोदी होय, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : (शरीर, रसना, घ्राण, चक्षु एवं श्रोत्र (कान), इन पांच इन्द्रियों वाले जीव पंचेन्द्रिय कहलाते हैं।) पांच इन्द्रिय वाले जीवों के विषय में यदि कोई अतिचार लगा हो, तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। पांच इन्द्रिय वाले जीव, जैसे कि–जल में चलने वाले मछली आदि, स्थल–भूमि पर चलने वाले पशु आदि, आकाश में उड़ने वाले पक्षी आदि, पेट के बल चलने वाले सर्प आदि, भुजाओं के बल चलने वाले नेवला, गिलहरी आदि, समनस्क एवं अमनस्क प्राणी, गर्भ से उत्पन्न होने वाले प्राणी, तथा खेल-प्रस्रवण आदि चौदह स्थानों में उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छिम जीव ऐसे पंचेन्द्रिय प्रमुख जीवों की यदि मैंने विराधना की हो, दूसरों से विराधना करायी हो, एवं विराधना करने वालों को अच्छा जाना हो तो उससे उत्पन्न पाप मेरे लिए मिथ्या हो।

Self-Criticism of Violence to Five-Sensed Beings: I feel sorry for any violence caused by me to five-sensed beings. Aequatic animals moving on the land, birds, creeping animals, animals moving with their arms, crawling on their breast, animals with developed mind, animals not possessing mental faculty, animals taking birth from the womb of their mothers, beings generating from fourteen places of

impurity are various types of five-sensed beings. I might have caused, got caused or supported violence to such beings during the day. I curse myself for the same. May my sin be pardoned.

The living beings that possess sense of touch, sense of taste, sense of smell, sense of sight and sense of hearing are called five-sensed beings. Mangoose, squirrel, snakes, cattle, birds, fish and the like are five-sensed beings. I curse myself for any violence caused, got caused or supported by me.

सत्य महाव्रत अतिचार आलोचना

बीजे महाव्रत के विषय में जे कोई अतिचार लागा होय ते मैं आलोउं, क्रोधे करी, लोभे करी, भयकरी, हासे करी, क्रीडे करी, कुतूहले करी, रागे करी, द्वेषे करी, मृषावाद झूठ बोल्या होय, बोलवाया होय, बोलतां प्रति अनुमोद्या होय, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : ('सत्य' साधु का द्वितीय महाव्रत है।)

सत्य महाव्रत के विषय में यदि मुझे कोई दोष लगा हो, तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। यदि मैंने क्रोध, लोभ, भय, हास्य, क्रीड़ा, कौतूहल, राग, द्वेष आदि के वशीभूत होकर स्वयं झूठ बोला हो, दूसरों को झूठ बोलने के लिए प्रेरित किया हो, अथवा झूठ बोलने वालों का समर्थन किया हो तो मैं उस दोष से पीछे हटता हूं। मेरा दुष्कृत निष्फल हो।

Self-Criticism for Deviation in Vow of Truth: I feel sorry for any deviation committed by me in practicing the second major vow of truth. In a fit of anger, greed, fear, laughter, cutting joke, passing on remarks, attachment or hatred I may have told a lie, got told a lie or supported one who has made a false statement. I curse myself for the same and seek pardon.

The second major vow of a monk is the vow of practicing truth.

.अदत्तादान विरमण महाव्रत अतिचार आलोचना

तीजे महाव्रत के विषय में जे कोई अतिचार लागा होय ते मैं आलोउं–देव-अदत्त, गुरु-अदत्त, राय-अदत्त, गाहावई-अदत्त, सहामीय-अदत्त, पांच अदत्तादान माहेला अनेरा अदत्तादान लीधा होय, मूक्या होय भोग्या होय, भोगाया होय, भोगतां प्रति अनुमोद्या होय–जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : (बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण न करना, दी हुई प्रासुक वस्तु को संतोषपूर्वक ग्रहण करना, यह 'अदत्तादानविरमण' महाव्रत है।)

अदत्त त्याग रूपी तृतीय महाव्रत के विषय में यदि मुझसे कोई भूल हुई है तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। देव (धर्माचार्य), गुरु, राजा, गाथापति (सेठ), एवं साधर्मी, इन पांचों द्वारा अदत्त वस्तु, अथवा कोई भी अदत्त वस्तु यदि मैंने ली हो, उसका स्वयं उपभोग किया हो, दूसरों से उपभोग कराया हो एवं उपभोग करने वालों को अच्छा जाना हो, तो उक्त आचार से उत्पन्न मेरा दोष निष्फल हो। उस दोष से मैं पीछे हटता हूं।

Self Criticism of Deviation in Practice of Vow of Non-Stealing: I curse myself for any fault committed in practice of the third major vow of non-stealing. Stealing is of five types—taking a thing not offered by angel, teacher, ruler, noble man, or one of the same faith. In case I may have taken anything of such five persons without their permission, or enjoyed or made use of any thing belonging to them in that manner or appreciated any such stealing during the last one day, I curse myself for the same. May I be absolved of that sin.

Explanation: Not to take anything which has not been offered and to accept patiently the acceptable thing that has been offered is called the major vow of non-stealing.

ब्रह्मचर्य महाव्रत अतिचार आलोचना

चौथे महाव्रत के विषय में जे कोई अतिचार लागा होय, ते मैं आलोउं–काम-राग, स्नेहराग, दृष्टिराग, देवता-देवी सम्बन्धी, मनुष्य-तिर्यञ्च सम्बन्धी माठा योग प्रवरताया होय, नव प्रकार का औदारिक सम्बन्धी, नव प्रकार का वैक्रिय सम्बन्धी, अठारह प्रकार का मैथुन सेव्या होय, सेवाया होय, सेवतां प्रति अनुमोद्या होय, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : (तीन करण, तीन योग से कुशील चिन्तन-सेवन का त्याग करना ब्रह्मचर्य महाव्रत है।) ब्रह्मचर्य महाव्रत के संबंध में यदि मुझे कोई दोष लगा है तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। यदि मैंने कामराग, स्नेहराग, दृष्टिराग–इनमें से कोई राग किया हो, देव-देवी, मनुष्य एवं तिर्यंच संबंधी भोगों की कामना की हो, नौ प्रकार के औदारिक संबंधी एवं नौ प्रकार के वैक्रिय संबंधी–ऐसे अठारह प्रकार के मैथुन का मैंने स्वयं सेवन किया हो, दूसरों को इसके लिए प्रेरित

किया हो, एवं सेवन करने वालों का समर्थन किया हो, तो मैं स्वयं को उससे पीछे लौटाता हूं। मेरा वह दुष्कृत मिथ्या हो।

Self-criticism of Fault committed in Practice of Vow of Celibacy: I feel sorry for any fault committed by me in practicing the fourth major vow of the Jain monk. The lust can be in feeling, in attachment and in feeling towards an angel, a human being or an animal. In case I may have any disturbance in mind, body or speech which is of nine types, in respect of physical body, nine types in respct of fluid body and I may have cohabited with them in any of the eighteen ways. I may have encouraged other for such sexual acts or supported such acts of others relating to the day. I condemn myself for the same. May that sin be pardoned.

अपरिग्रह महाव्रत अतिचार आलोचना

पांचवें महाव्रत के विषय में जे कोई अतिचार लागा होय, ते मैं आलोउं–छती वस्तु की ममता-मूर्छा कीधी होय, अछती वस्तु की वांछा कीधी होय, भण्डोवगरण, वस्त्र-पात्र, शरीर उपरि ममता-मूर्छाभाव आण्यो होय, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : (वस्तुओं और शरीर के ममत्व का पूर्णत: परिहार करना अपरिग्रह महाव्रत है।) अपरिग्रह महाव्रत के विषय में यदि कोई दोष लगा है तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। विद्यमान वस्तु पर यदि ममत्व किया हो, अविद्यमान वस्तु की इच्छा की हो, वस्त्र-पात्र आदि भण्डोपकरण तथा शरीर पर ममत्वभाव धारण किया हो तो उस दोष से मैं पीछे हटता हूं। मेरा वह दुष्कृत मिथ्या हो।

Self-Criticism of Fault Relating to Vow of Non-Attachment: I curse myself for any fault committed by me in practice of fifth major vow of non-attachment for articles in my possession. I may have a lurking desire to procure those articles which are not in my possession. I may have attachment for the pots, clothes and my body. I curse myself for any feeling of attachment during the day. May I be absolved of that sin.

रात्रि-भोजन विरमण अतिचार आलोचना

छठा रात्रि भोजन के विषय में जे कोई अतिचार लागा होय, ते मैं आलोउं– असणं, पाणं, खाइमं, साइमं सीत-मात्र रात-बासी रखा होय, रखाया होय, रखतां प्रति अनुमोद्या होय, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : रात्रि-भोजन विरमण व्रत के विषय में यदि कोई अतिचार लगा है तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। अशन, पान, खादिम और स्वादिम--ऐसे चतुर्विध आहार में से यदि कण मात्र भी रात्रि में रखा हो, किसी से रखवाया हो अथवा रखने वाले का समर्थन किया हो तो मेरा वह दोष निष्फल हो। उस दोष से मैं पीछे हटता हूं।

Self Criticism of Fault Relating to Vow of Not taking Meals at Night: The sixth vos of Jain monk is about taking meals at night. In case I may have committed any fault in practice of this vow by taking any food, liquid, sweets or fragrant thing, cold food at night or kept any stale food or got the same stored or appreciated those who commit such fault, I curse myself for the same. May I be absolved of that sin.

सामूहिक अतिचार आलोचना

पांच महाव्रत की पच्चीस भावना सम आराधी न होय, सम पाली न होय, सम फरसी न होय, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : ऊपर कहे गए पांचों महाव्रतों की पच्चीस भावनाओं का यदि सम्यक् प्रकार से आराधन, परिपालन एवं स्पर्शन न किया हो तो उससे उत्पन्न दोष की मैं आलोचना करता हूं। मेरा वह दोष निष्फल हो।

Combined Self-Criticism of Faults: There are twenty five reflections in respect of practice of five major vows. I may not have properly reflected on them, may not have properly practiced them during the day. I curse myself for the same. May I be absolved of that sin.

तैंतीस आशातना आलोचना

तैंतीस आसातना माहिली जे कोई अनेरी आसातना करी होय, कराई होय, करतां प्रति अनुमोदी होय, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : (देव, गुरु, धर्म के प्रति अनुचित व्यवहार आशातना कहलाती है। वह तैंतीस प्रकार की है।) तैंतीस आशातनाओं में से यदि कोई आशातना मैंने स्वयं की हो, दूसरों से कराई हो, करने वालों का समर्थन किया हो तो उससे उत्पन्न अतिचार की मैं आलोचना करता हूं। मेरा वह दुष्कृत मिथ्या हो।

(तैंतीस आशातनाओं के विवरण हेतु देखिए पृष्ठ 116)

Self Criticism of Thirty Three Faults in Daily Behaviour (ASHATANA): In case I may have committed any faults out of thirty three faults relating to behaviour towards seniors or got any fault committed or supported those who committed any such fault, I condemn myself for the same.

Explanation: Any improper behaviour towards devas, spiritual teacher or dharma (teachings of the omniscient) is called Ashatana. It is of thirty three types (See page 51 for detailed version of thirty three ashatanas)

अठारह पाप-स्थानों की आलोचना

अठारह पापस्थानक के विषय में जे कोई अतिचार लागा होय ते मैं आलोउं–प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, रति-अरति, माया-मोसा, मिच्छा-दर्शन-शल्य, एह अठारह पापस्थानक माहिलो जे कोई पापस्थानक सेव्या होय, सेवाया होय, सेवतां प्रति अनुमोद्या होय, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : अठारह पाप-स्थान हैं, जैसे कि–(1) हिंसा, (2) झूठ, (3) चोरी, (4) मैथुन, (5) परिग्रह, (6) क्रोध, (7) अहंकार, (8) छल-कपट, (9) लोभ, (10) रागभाव, (11) द्वेषभाव, (12) क्लेश करना, (13) किसी पर झूठा दोष लगाना, (14) चुगली खाना, (15) निन्दा करना (16) भोगों की प्राप्ति पर हर्षित होना और अप्राप्ति पर दुखी होना, (17) छलपूर्वक झूठ बोलना, एवं (18) विपरीत विश्वास (मिथ्या/अंध श्रद्धा)। इन अठारह पाप-स्थानों में से किसी पाप-स्थान का मैंने सेवन किया हो, सेवन कराया हो, सेवन करने वाले का समर्थन किया हो, तो मेरा वह दोष निष्फल हो। उस दुष्कृत से मैं पीछे हटता हूं।

Self Criticism of Eighteen Sins: I may have committed any fault in avoiding eighteen sins. The eighteen sins are causing violence, telling lie, stealing (accepting that which has not been offered) having sex, attachment for possessions, anger, ego, deceit, greed, feeling of love or hatred, quarrel, talking ill of others, back-biting, condemning others, to have sense of enjoyment for worldly things and non-enjoyment for practice of ascetic discipline and to have wrong faith or wrong perception. I may have committed any sin out of the said eighteen or got any sin committed or

appreciated those who committed any such sin during the day. I curse myself for the same and withdraw myself from it. May my fault be condoned.

मूलगुण-उत्तरगुण विषयक सामूहिक आलोचना

मूलगुण पंचमहाव्रत, उत्तरगुण दशविधि पच्चक्खाण, इण विषय में जे कोई अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार जाणते- अजाणते मन-वचन-काया कर सेव्या होय, सेवाया होय, सेवतां प्रति अनुमोद्या होय जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : (पांच महाव्रतों को मूलगुण एवं दस प्रकार के प्रत्याख्यान को उत्तरगुण कहा जाता है।) इन पांच मूल एवं पांच उत्तर गुणों के विषय में यदि किसी प्रकार के अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार एवं अनाचार का जानते हुए या अजानते हुए, मन, वचन एवं काय से सेवन किया हो, कराया हो, या करते हुए का समर्थन किया हो तो उक्त दोषों से मैं पीछे लौटता हूं। मेरा वह दुष्कृत मिथ्या हो।

अतिक्रम आदि पदों का अर्थ इस प्रकार है –

(1) **अतिक्रम**–व्रत-भंग करने का विचार उत्पन्न होना।

(2) **व्यतिक्रम**–व्रतभंग करने के लिए तैयार होना।

(3) **अतिचार**–व्रत भंग करने के लिए साधन जुटाना, आंशिक रूप से व्रतों को भंग कर देना।

(4) **अनाचार**–ग्रहण किए हुए व्रतों को पूर्ण रूपेण भंग कर देना।

सच्चे हृदय से किए गए प्रतिक्रमण से अतिचार पर्यंत दोषों की शुद्धि संभव है। अनाचार की शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त का विधान है।

Combined Self-Criticism Relating to Faults in Practice of Primary Vows and Secondary Rules: The primary duties are practice of five major vows. The secondary duties are withdrawing oneself from (worldly) physical requirement in ten different ways. In case I may have committed any faults in practice of these vows and rules knowingly or unknowingly (inadvertently) mentally, orally or physically by intending to commit a fault, preparing for it or partially breaking a vow, or encouraging anyone to break the vow or appreciated those who commit such fault. I curse myself for the same. May my fault be condoned.

The intention of breaking any vow is Ati-kram.

To prepare oneself for breaking a vow is called Vyati-kram.

To collect material for breaking a vow or to partially break a vow is called Atichaar.

To completely break the vow is anachar Self-introspection (Pratikraman) with a faithful bent of named purifies the faults committed upto the level of atichaar. If any vow has been completely broken, one has to accept punishment (prayashechit) for the same.

सामूहिक अतिचार आलोचना

इच्छामि आलोइयं–जो मे देवसि अइयारो कओ–काइओ, वाइओ, माणसिओ, उस्सुत्तो, उम्मग्गो, अकप्पो, अकरणिज्जो, दुज्झाओ, दुचिंतिओ, अणायारो, अणिच्छियव्वो, असमणपावग्गो, नाणे तह दंसणे, चरित्ते, सुय, सामाइए, तिण्हं गुत्तीणं, चउण्हं कसायाणं, पंचण्हं महव्वयाणं, छण्हं जीवनिकायाणं, सत्तण्हं पिंडेसणाणं, अठण्हं पवयण माऊणं, नवण्हं बंभचेर-गुत्तीणं, दसविहे समणधम्मे, समणाणं जोगाणं जं खंडियं, जं विराहियं जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(सूचना : इस पाठ का भावार्थ पीछे पृष्ठ 27 पर दिया जा चुका है।)

(The meaning of it is already given at Page 27)

श्रुत अतिचार आलोचना

सब सब देवसियं, दुचिंतियं, दुभासियं, दुचिट्ठियं, दुपालियं, अधिका, ओछा, काना मात्र विपरीत कह्या होय, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

भावार्थ : भगवान् की आज्ञा के प्रतिकूल यदि किसी भी प्रकार का अनुचित चिन्तन या भाषण किया हो, कम, अधिक बोला हो, विपरीत प्ररूपणा की हो तो उक्त अतिचार से मैं पीछे हटता हूं। मेरा वह दुष्कृत मिथ्या हो।

Central Idea: In case I have in any manner had improper reflection or utteance using words or spoken excessively or interpreted scriptures different from what the omniscient meant, I feel sorry for the same and withdraw myself from those faults. May I be absolved of that bad conduct.

विधि : तत्पश्चात् 'नमो अरिहंताणं' का उच्चारण करते हुए कायोत्सर्ग पूर्ण करें।

Procedure: Thereafter he should conclude his meditations by uttering namo arihantanum.

॥ प्रथम अध्ययन (सामायिक आवश्यक) सम्पूर्ण॥

|| First Chapter (Samayik Essential) concluded ||

○○

द्वितीय अध्ययन : चतुर्विंशति-स्तव

आमुख :

आवश्यक सूत्र का द्वितीय चरण है—चतुर्विंशति-स्तव अर्थात् चौबीस तीर्थंकर-भगवंतों की स्तुति। प्रथम आवश्यक में सामायिक का विधान है। समता भाव की परिपक्वता के लिए किसी शुभ आलम्बन की आवश्यकता होती है। चतुर्विंशति-स्तव: सर्वश्रेष्ठ शुभ आलम्बन है।

चतुर्विंशति स्तव में वर्तमान अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव से लेकर अंतिम तीर्थंकर श्री वर्धमान महावीर स्वामी पर्यंत चौबीस जिनदेवों की भावपूर्ण स्तुति की गई है। ये चौबीस ही अर्हत् पुरुष अध्यात्म जगत के पूज्य-पुरुष हैं। समस्त श्रेष्ठताएं इनके जीवन में सर्वांगीण रूप में पुष्पित और फलित हुईं। क्षेत्र और काल की दृष्टि से चौबीसों तीर्थंकर अलग-अलग क्षेत्र और काल में हुए, परन्तु ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की दृष्टि से चौबीसों तीर्थंकर अभिन्न हैं, समरूप हैं। सच्चे हृदय से की गई स्तुति से स्तुत्य (स्तुति के योग्य) के सद्गुण स्तोता (स्तुति करने वाले) के जीवन में उतर आते हैं। स्तुत्य का जीवन दर्शन स्तोता का जीवन दर्शन बन जाता है।

प्र. चउव्वीसत्थएणं भंते! जीवे किं जणयइ?

प्रभु! चतुर्विंशति स्तव से जीव को किस फल की प्राप्ति होती है? —उत्त. २९/९

उ. चउव्वीसत्थएणं दंसण विसोहिं जणयइ।

गौतम! चतुर्विंशति स्तव से जीव को दर्शन शुद्धि का लाभ होता है।

स्तुति से मिथ्यात्व रूपी अन्धकार नष्ट होता है। यथार्थ दर्शन की क्षमता प्राप्त होती है। आत्मा अन्धकार से प्रकाश, असत्य से सत्य एवं संसार से मोक्ष के पथ पर गतिशील हो जाती है। द्वितीय आवश्यक के रूप में साधक भक्तिभाव से चौबीस तीर्थंकरों का गुणगान करता है और भावना करता है कि चौबीस जिनदेवों में अध्यात्म का जो उत्कर्ष उत्पन्न हुआ, मेरी आत्मा में भी वही उत्कर्ष उत्पन्न हो।

○○

Second Chapter : CHATURVINSHTI-STAVA

Introduction

The second phase of Avashyak Sutra is hymn in praise of 24 Tirthankars. In the first Avashyak there is permission about samayik for stabilising in the state of equanimity. It is essential to take a good assistance. The Chatur-vinshati Stav is itself the most important Shelter.

In Chatur-vinshati Stav, the benediction towards Rishabh dev the first Tirthankar upto Vardheman Mahavir the last tirthankar is done The twenty four omniscients are the most honoured one of the Avasarparni time cycle. Their life had fully blossomed with all the good qualities of human existence. In the context of location and the period, the twenty four Tirthankars had been in different periods and at different places but their knowledge, perception and conduct had been identical. Their appreciation uttered with true heart rightly affects the life of the worshipper. The perception of the worshipped becomes the perception of the worshipper.

In para 10 of chapter 29 of Uttaradhyayan Sutra, in reply to a query from Gautam, Mahavir had replied that by reciting this hymn in praise of 24 Tirthankars, the perception of the worshipped becomes principled, He then can see everything in proper perspective.

This hymn destroys the darkness of wrong perception. One gets the capability of having right perception. The soul moves from darkness to light, from falsehood to truth and from worldly path to the path leading to Salvation.

The pupil with great devotion recites the second essential (Avashyak) in praise of 24 Tirthankars. He has an inward reflection that the miracle of spirituality that appeared in 24 omniscient may develop in his soul also.

OO

चतुर्विंशति स्तव सूत्र
(चतुर्विंशति आवश्यक)

चित्र संख्या 4

चित्र-परिचय – 4

Illustration No. 4

चतुर्विंशति स्तव सूत्र (चतुर्विंशति आवश्यक)

ध्यान मुद्रा में स्थित होकर साधक अरिहंतों की स्तुति करता है। भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर पर्यंत सभी तीर्थंकरों की नाम-स्मरण सहित अर्चना – वंदना करता है।

चित्र में चौबीस तीर्थंकरों को चित्रित किया गया है। अन्य चित्रों में अरिहंतों की महिमा का दर्शन कराया गया है। ये अरिहंत भगवान लोक को प्रकाशित करने वाले, धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले तथा अज्ञान, मोह आदि अंतरंग शत्रुओं को नष्ट करने वाले हैं। वे चन्द्रमा से भी अधिक निर्मल, सूर्य से अधिक प्रकाशमान एवं स्वयंभूरमण समुद्र से भी अधिक गम्भीर हैं। अंतिम चित्र में ध्यानस्थ साधक प्रार्थना करता है कि सिद्ध प्रभो! मुझे सिद्धि प्रदान करें।

Chaturvinshti Satva Sutra
(Chaturvinshti Aavashyak)

Establishing in meditation gesture the practiser eulogises the Arihant Dev from Bhagwan Rishabh Dev to Bhagwan Mahavir Swami, He propitiates and worships reciting the holy names of all the Ford Makers.

In this illustration twenty four Ford Makers (Tirthankaras) have been illustrated. In other pictures the greatness of Arihant Bhagwan has been shown. All those Arihant Bhagwan are the illuminators of the cosmos, propounder of the religious ford and the destroyer of inner enemies like ignorance and delusion. They are even more clear than moon, even more bright than sun and even more deep than Swayambhuraman ocean. In the last illustration the meditation of practiser prays that O' Sidha Prabho ! give me Sidhi.

चतुर्विंशति-स्तव आवश्यक
Chaturvinshti-stava Avashyak (Essential)

विधि : 'तिक्खुत्तो' के पाठ से गुरु महाराज को वन्दन करके द्वितीय आवश्यक की आज्ञा लें। तत्पश्चात् निम्नलिखित चतुर्विंशति जिन स्तव का पाठ खड़े होकर मुखर शब्दों में पढ़ें।

Procedure: Seek the permission of the Guru for reciting the second essential by greeting him with the lesson of Tikhutto. Thereafter while standing recite loudly the hymn given below:

श्री चतुर्विंशति जिन स्तव

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्मतित्थयरे जिणे।
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसंपि केवली॥1॥
उसभमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे॥2॥
सुविहिं च पुप्फदंतं, सीअल-सिज्जंस वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि॥3॥
कुंथुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमि जिणं च।
वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च॥4॥
एवं मए अभित्थुआ, विहुय-रय-मला पहीणजरमरणा।
चउवीसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु॥5॥
कित्तिय वंदिय महिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा।
आरुग्ग-बोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दिंतु॥6॥

चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा।
सागरवर-गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसन्तु॥7॥

(विशेष : इस पाठ का भावार्थ पृष्ठ 17-18 पर देखें।)

(Note: Explanation of this chapter see page 17-18.)

॥ द्वितीय अध्ययन (चतुर्विंशति-स्तव आवश्यक) संपूर्ण ॥

|| Second Chapter (Chaturvinshti-stav essential) Concluded ||

OO

तृतीय अध्ययन : वन्दन

आमुख :

"वन्दन" तृतीय आवश्यक है। द्वितीय आवश्यक में साधक भाव-विभोर होकर चौबीस जिनदेवों की स्तुति करता है। स्तुति से साधक का हृदय आध्यात्मिक उल्लास और आनंद से खिल जाता है। तत्पश्चात् वह जिनदेवों के उत्तराधिकारी एवं जिनदेवों के स्वरूप का बोध देने वाले गुरु के प्रति भक्तिभाव से ओत-प्रोत हो जाता है। फलस्वरूप वह विनयावनत होकर गुरु को वन्दन करता है। इसीलिए जिन स्तुति के पश्चात् गुरु-वन्दन का आवश्यकीय विधान है।

विनय जिनशासन का मूल है। जैसे जड़ में वृक्ष के प्राण बसते हैं वैसे ही विनय में जिनशासन के प्राणों का निवास है। विनीत आत्मा ही समस्त आध्यात्मिक संपत्तियों का स्वामी बनता है। विनय सुपात्रता है। उसके अभाव में अध्यात्म-संपदा को धारण नहीं किया जा सकता।

विनय से वंदन फलित होता है। वन्दन की फलश्रुति क्या है, यह निम्न प्रश्नोत्तरी में स्पष्ट हो जाती है।

वंदणएणं भंते! जीवे किं जणयइ?

वंदणएणं णीयगोयं कम्मं खवेइ, उच्चगोयं कम्मं णिबंधइ, सोहग्गं च णं अप्पडिहयं आणाफलं णिव्वत्तेइ, दाहिणभावं च णं जणयइ। –उत्त. 29/10

भंते! वन्दन से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

गौतम! वन्दन से जीव नीच गोत्र के कर्मों का क्षय करता है, उच्चगोत्र का उपार्जन करता है, सौभाग्य प्राप्त करता है, उसकी आज्ञा सभी स्वीकार करते हैं, कुशलता और सर्वप्रियता की उसे प्राप्ति होती है।

वन्दन करते हुए व्यक्ति भले ही नीचे झुकता हुआ दिखायी देता है, परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से वह ऊर्ध्वारोहण करता है। उसके सुख, सौभाग्य और कुशलताएं निरन्तर बढ़ती जाती हैं। ○○

Third Chapter : VANDAN (Salutation)

Introduction

Vandan is the third essential. In the second essential the pupil recites hymn in appreciation of 24 Tirthankars from the core of his heart. Thereafter he becomes extremely devoted to the successors of Tirthankars and spiritual master who has acquainted him with the nature of omniscient. So, with great humility he salutes the maser. Therefore, after the hymn in appreciation, it is essential to bow to the spiritual master.

Humility is the basic tenet of Jain philosophy Just as the life force of tree lies in its root. similarly the life force of Jain thought lies in humility. A humble soul becomes the master of all the spiritual wealth. Humility is a good virtue. In its absence spirituality cannot be attained Salutation fructifies due to humility. In reply to a query by Gautam about the effect of salutation, Bhagwan Mahavir replied, "Gautam! As a result of salutation in prescribed manner, the living being destroys karmas leading him to low caste. He collects karmas leading to high status (gotra). He is blessed with good fortune. Everyone obeys his command. His virtues go on increasing continuously.

○○

वंदन आवश्यक

चित्र संख्या – 7

चित्र-परिचय – 7

Illustration No. 7

वन्दन आवश्यक

प्रस्तुत चित्र में गुरु वंदन के उत्कृष्ट स्वरूप को दर्शाया गया है। यह वंदन विधि द्वादश आवर्त्तन पूर्वक सम्पन्न होती है। गुरु के प्रति शिष्य की मानसिक, वाचिक और कायिक विनय और भक्ति का यह अनुपम उदाहरण है। चित्र के हार्द को समझने के लिए वंदन आवश्यक का भावार्थ एवं विवेचन देखें।

Salutation Essential

The Supreme mode of reverential greetings to ones spiritual teacher (Guruji) has been exhibited in this present illustration. The said salutation method is completed through twelve rotations. This one is the extraordinary example of the mental, oral and bodied submissiveness and devotion of the disciple towards his spiritual teacher (Guruji). To discern the main theme of this picture, please, consult the implied meaning and appraisal of "Salutation Essential".

वन्दन आवश्यक
Vandan Avashyak (Salutation)

विधि : 'तिक्खुत्तो' के पाठ से गुरु महाराज को वन्दना करके 'वन्दन' नामक तृतीय आवश्यक की आज्ञा ली जाती है। तत्पश्चात् निम्नलिखित पाठ विधिपूर्वक पढ़ा जाता है–

Vandan Avashyak (ESSENTIAL SALUTATION): Procedure. By bowing to the master reciting Tikhutto lesson, permission is sought for uttering the essential—titled Vandan. Thereafter the following lesson is recited in the manner as directed.

इच्छामि खमासमणो

इच्छामि खमासमणो! वंदिउं जावणिज्जाए, निस्सीहियाए अणुजाणह मे मि उग्गहं निसीहि, अहो कायं कायसंफासं खमणिज्जो भे किलामो अप्पकिलंताणं बहुसुभेणं देवसि वइक्कंतो जत्ता भे जवणिज्जं च भे खामेमि खमासमणो! देवसि वइक्कमं, आवस्सियाए पडिक्कमामि। खमासमणो देवसियाए आसायणाए तेत्तीसण्णयराए जं किंचि मिच्छाए, मणदुक्कडाए, वयदुक्कडाए, कायदुक्कडाए कोहाए, माणाए, मायाए, लोभाए, सव्वकालियाए, सव्वमिच्छोवयाराए, सव्वधम्म-अइक्कमणाए, आसायणाए, जो मे देवसि अइयारो कओ, तस्स खमासमणो! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।

भावार्थ : हे क्षमाश्रमण! मैं अपने शरीर को यथाशक्ति पाप क्रियाओं से हटाकर आपको वन्दन करना चाहता हूं। इसलिए आप मुझे मितावग्रह (गुरुदेव जहां विराजमान हों, उनके चारों ओर की साढ़े तीन हाथ प्रमाण भूमि) में प्रवेश करने की आज्ञा प्रदान करें। (शिष्य के इस

निवेदन पर गुरु 'अनुजानामि' अर्थात् आज्ञा देता हूं, इस प्रकार कह कर आज्ञा प्रदान करें। गुरु की आज्ञा प्राप्त होने पर शिष्य अग्रिम पद बोले–)।

मैं सावद्य व्यापारों को त्याग कर आपके चरण-कमलों का अपने हाथों और मस्तक से स्पर्श करता हूं। भगवन्! आप क्षमा करने योग्य हैं। मेरे स्पर्श से आपको कोई कष्ट पहुंचा हो तो मुझे क्षमा करें। यूं तो आप सभी प्रकार की बाधाओं से मुक्त हैं, फिर भी मैं जानना चाहता हूं कि आप का आज का दिवस सुखपूर्वक व्यतीत हुआ है न? आपकी संयम-यात्रा निराबाध है न? आपका शरीर मानसिक एवं ऐन्द्रिक बाधाओं से तो रहित है न?

अहो क्षमाशील श्रमण! मैं अपने दिवस संबंधी अपराधों (भूलों) के लिए क्षमा मांगता हूं। दिन भर में आवश्यक क्रियाएं करते हुए मुझसे जो भूलें हुई हैं उनसे मैं निवृत्त होता हूं। तेंतीस आशातनाओं में से आप क्षमाश्रमण की मैंने किसी प्रकार की आशातना की हो तो मुझे क्षमा करें। भगवन्! किसी भी मिथ्याभाव से आशातना हुई हो, दुष्ट मन से, दुर्वचन से, शारीरिक दुश्चेष्टाओं से, क्रोध से, मान से, माया से, लोभ से, किसी भी काल में, किसी भी मिथ्याभावना से, क्षमा आदि धर्मों का उल्लंघन करने वाली किसी भी प्रकार की आशातना हुई हो, तो उससे लगने वाले दिवस संबंधी अतिचारों से मैं निवृत्त होता हूं। हे क्षमाश्रमण! मुझ से जो भी भूलें हुई हैं उनके लिए मैं क्षमायाचना करता हूं। संभावित भूलों की शुद्धि के लिए प्रतिक्रमण करता हूं, निन्दा करता हूं, गर्हा करता हूं और पाप रूप आत्मा का परित्याग करता हूं।

Exposition: Reverend Sir! I withdrawing my physical body from sinful activities according to my inner strength, want to pay my homage to you. So kindly allow me to enter the area upto three and a half cubits from the place where you are seated (the guru then grants permission by saying anujanami). After obtaining the permission, the pupil should say the following.

Discarding all activities involving violence. I touch your feet with my hands and forehead. Sir, you can grant pardon. You pardon me in case my touch has in any way caused any trouble to you. You are free from all obstructions. Still I wish to know whether you have passed the day peacefully and you have gone ahead on your path of self-restraint without any hurdles. I hope your physical body is free from mental and sensual disturbance.

O blessed monk! I seek pardon for the sins committed during the day. I withdraw myself from the faults committed while performing daily duties. In case out of 33 states of disrespect, I have committed any one, kindly forgive me. I might have

caused disrespect to you in a state of wrong contemplation in a fit of evil mind, in uttering a bad word or in my physical postures. I might have done anything in a state of anger, ego, deceit and greed at any time in a wrong state of reflection. I might have transgressed the code of monk relating to various tenets including pardon. I discard all such faults done during the day. I seek pardon for all such faults. I withdraw myself in order to rectify the likely faults. I condemn such activities, declare them in public and discard them.

वन्दन-विधि

'**मत्थएण वंदामि**' यह पद सामान्य वन्दन का सूचक है जिसका उच्चारण शिष्य 'गुरु' के प्रति किए जाने वाले प्रत्येक व्यवहार में करता है।

"**तिक्खुत्तो**" के पाठ से विधि सहित किया जाने वाला मध्यम वन्दन है। विहार से आते हुए, विहार के लिए जाते हुए, गुरु महाराज के बाहर से आगमन या गमन, एवं शास्त्र आदि की वाचना लेते हुए एवं वाचना संपन्न होने पर शिष्य "तिक्खुत्तो" के पाठ से गुरुदेव को वन्दन करता है।

"**इच्छामि खमासमणो**" के पाठ से किया जाने वाला उत्कृष्ट वन्दन है। पाठ के भावार्थ से इस वन्दन का महात्म्य सरलता से समझा जा सकता है। शिष्य की उत्कृष्ट विनम्रता इस पाठ में साकार हुई है। यह वन्दन दोनों संध्याओं में आवश्यक के तृतीय चरण के रूप में प्रतिदिन किया जाता है।

बारह आवर्त्तन पूर्वक यह वन्दन-विधि सम्पन्न होती है।

आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज ने बारह आवर्त्तन का स्वरूप और क्रम इस प्रकार स्पष्ट किया है–

प्रथम "अहो कायं काय" इस सूत्र को पठन करता हुआ साधक तीन आवर्त्तन करे। अर्थात्–दोनों हाथों को फैलाकर दशों अंगुलियां गुरु के चरणों पर लगाता हुआ मुख से "**अ**" अक्षर उच्चारण करे। फिर दोनों हाथ मस्तक को स्पर्श करता हुआ "**हो**" अक्षर कहे, सो इस प्रकार से प्रथम आवर्त्तन होता है।

इसी प्रकार पूर्वोक्त विधि से ही "**का**" और "**यं**" अक्षरों के उच्चारण से द्वितीय आवर्त्तन हो जाता है। "**का**" "**य**" यह तृतीय आवर्त्तन है।4

इसी प्रकार "**जत्ता**" "**भे**" "**जवणि**" "**ज्जं च भे**" इन सूत्रों के भी तीन-तीन ही आवर्त्तन होते हैं, जैसे कि–

मंद स्वर के साथ **"ज"** अक्षर का उच्चारण करे, फिर मध्यम स्वर से **"त्ता"** ऐसे कहे, फिर ऊंचे स्वर के साथ हाथ मस्तक को लगाता हुआ **"भे"** ऐसे वर्ण का उच्चारण करे, सो इन तीन अक्षरों से प्रथम आवर्त्तन होता है।

फिर **"ज" "व" "णि"** इन तीन अक्षरों का पूर्वोक्त स्वरों के अनुकूल उच्चारण करने से द्वितीय आवर्त्तन होता है।

फिर **"जं" "च" "भे"** इन तीनों वर्णों के पूर्वोक्त प्रकार से उच्चारण करने से तृतीय आवर्त्तन होता है।

इस प्रकार से षट् आवर्त्तन एक पाठ से होते हैं और दो बार उच्चारण करने से द्वादश आवर्त्तन हो जाते हैं। किन्तु द्वितीय बार के पाठ में **"आवस्सियाए"** यह पाठ न पढ़े, अपितु पूरे सूत्र का पाठ करे।

Procedure for Salutation:

Matthayen Vandami—this aphorism denotes elementary salutation. The disciple utters it in every action done towards his master.

Salutation by uttering the lesson beginning with tikhutto is secondary salutation. The disciple salutes the master in this manner when he goes out or returns or when the master arrives or leaves. He also utters it when he gets the lesson and when the lesson is concluded.

Salutation with Ichhami Khamasamano is the salutation of highest order. The importance of it can be easily understand from the exposition of this lesson. The lesson reflects the humility of the highest order in the pupil. This salutation is done as third essential in early morning and at sunset.

In this salutation twelve rounds are made Acharya Samrat Shri Atmaram Ji has explained the twelve rounds as under:

In the first step the pupil uttering the word, ***'aho kayam kaya'***: should make three rounds spreading both the hands and touching the feel of the master with all the ten fingers, he should utter the letter 'a'. Thereafter touching his forehead with both the hands he should say 'ho'. Thus, he should complete the first round similarly in the second round, he should utter 'Ka' and 'yum' in the same manner and in the third round, he should say 'ka' and 'ya'.

In the same manner, these are three rounds, each in respect of words 'Jatta" 'bhay' 'javani' and 'jum ch bhay'

The letter 'j' should be uttered in a low voice the letter 'ta' in medium voice and the word 'bhay' in loud voice touching the forhead with the hand. These three letters thus complete the first round.

Thereafter in the same manner the second round should he completed with letters 'j', 'va' and 'ni'.

The third round should be completed with letters 'jum' 'ch' 'bhay' uttering in the same manner.

Thus with one recitation of this lesson six rounds are completed and by reciting it twice twelve rounds are completed. The word 'awassiyaye' should not be uttered in the second recitation.

॥ तृतीय अध्ययन (वन्दन आवश्यक) संपूर्ण ॥

|| Third Chapter (Vandan essential) Concluded ||

○○

चतुर्थ अध्ययन : प्रतिक्रमण

आमुख :

आवश्यक का चतुर्थ चरण है–प्रतिक्रमण। आवश्यक के प्रथम तीन चरण–सामायिक, चतुर्विंशति-स्तव एवं वन्दन, 'प्रतिक्रमण' की भूमिका तैयार करते हैं। समता भाव में स्थित साधक, चौबीस जिनदेवों की स्तुति एवं वन्दनमय भावों के फलस्वरूप अपने भीतर आध्यात्मिक उल्लास को अनुभव करता है। तत्पश्चात् वह आत्म-अवलोकन की यात्रा पर निकलता है। इसी यात्रा का नाम प्रतिक्रमण है।

'प्रतिक्रमण' शब्द प्रति उपसर्ग और क्रमु धातु के संयोग से बना है। जिसका अर्थ है–बाहर से भीतर लौटना, अथवा परस्थान से स्वस्थान में लौटना। प्रतिक्रमण की आराधना द्वारा साधक मिथ्यात्व, प्रमाद, अज्ञान, असंयम आदि परस्थानों से सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप स्वस्थान में लौट आता है।

'प्रतिक्रमण' आत्मदर्शन एवं आत्मशुद्धि की विशिष्ट साधना है। आत्मदर्शन के बिना आत्मशुद्धि संभव नहीं है और आत्मशुद्धि के अभाव में निर्वाण संभव नहीं है। निर्वाण/मुक्ति आत्मा का अंतिम लक्ष्य है। आत्मदर्शन मुक्ति-महल का प्रथम सोपान है। आत्म-दर्शन द्वारा साधक स्वयं के गुण-दोषों का आकलन करता है। गुणों में उसका अनुराग बढ़ता है और दोषों से विराग भाव पैदा होता है। प्रतिक्रमण की अवस्था में साधक, न केवल अपने दोषों का स्मरण करता है बल्कि उन दोषों से मुक्ति का भी वह संकल्प करता है।

साधक का जीवन व्रतों, महाव्रतों एवं मर्यादाओं से पूर्णतः रक्षित होता है। परन्तु जीवन-व्यवहार को साधते हुए व्रतों की आराधना में स्खलना हो जाना साधारण बात है। इन्हीं स्खलनाओं की शुद्धि के लिए प्रतिक्रमण किया जाता है। जैसे स्नान करने से शरीर पर जमी धूल-मिट्टी दूर हो जाती है, उसी प्रकार प्रतिक्रमण से आत्मा पर लगी हुई पाप रूपी धूल दूर हो जाती है। स्नान से जैसे शरीर में ताजगी और हल्कापन अनुभव होता है, ऐसे ही प्रतिक्रमण से आत्मा निर्भार और निर्मल होकर आनन्द को अनुभव करती है।

आगमज्ञों ने प्रतिक्रमण के भेदोपभेदों पर विस्तार से चिन्तन किया है। मुख्य रूप से प्रतिक्रमण के दो भेद बताए गए हैं—द्रव्य-प्रतिक्रमण और भाव प्रतिक्रमण। यश प्राप्ति के लिए एवं मात्र परम्परा के निर्वाह के लिए किया जाने वाला प्रतिक्रमण द्रव्य प्रतिक्रमण है। इसमें व्यक्ति सूत्र-पाठों को तो पढ़ता है पर उनके अर्थ पर चिन्तन नहीं करता और न ही उसके हृदय में पापों के प्रति ग्लानि उत्पन्न होती है। ऐसा साधक प्रतिदिन प्रतिक्रमण करता है और साथ ही पुनः पुनः दोषों का सेवन भी करता रहता है।

भाव प्रतिक्रमण में साधक एकाग्रचित्त होकर पूरे मनोयोग से प्रतिक्रमण की आराधना करता है। वह अपने दोषों का स्मरण करता है, दोषों के प्रति उसके हृदय में तीव्र ग्लानि उत्पन्न होती है और वह पुनः दोष न हो इसके लिए पूर्ण अप्रमत्त रहता है।

भाव प्रतिक्रमण ही वास्तविक प्रतिक्रमण है। इसी से आत्मशुद्धि और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर से पूछा—

पडिक्कमणेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

भगवन्! प्रतिक्रमण से जीव को किस फल की प्राप्ति होती है?

भगवान् ने फरमाया—

पडिक्कमणेणं वयछिद्दाणि पिहेइ। पिहियवयछिद्दे पुण जीवे निरुद्धासवे असबलचरित्ते अट्ठसु पवयण-मायासु उवउत्ते अपुहत्ते सुप्पणिहिए विहरइ। —उत्त. २९/११

गौतम। प्रतिक्रमण से जीव व्रत के छिद्रों को ढांपता है। शुद्ध व्रतधारी होकर आस्रवों को रोकता हुआ, शबल आदि दोषों से रहित, शुद्ध संयम वाला होकर आठ प्रवचनमाताओं में सावधान हो जाता है। विशुद्ध चारित्र को प्राप्त करके, उनसे अलग न होता हुआ समाधिपूर्वक संयम-मार्ग में विचरण करता है।

प्रतिक्रमण के अभाव में सिद्धि संभव नहीं है। इसीलिए प्रतिक्रमण का आवश्यकीय विधान आवश्यक सूत्र में हुआ है। दोनों संध्याओं—दिवसान्त एवं निशांत में भावपूर्वक प्रतिक्रमण की आराधना करने वाला साधक शीघ्र ही संसार-सागर को तैर लेता है।

○○

Fourth Chapter : PRATIKRAMAN

Introduction

The fourth step in Avashyak is pratikraman. The earlier three steps of avashyak namely Samayik, Chaturvinshati Stava (hymn in praise of 24 tirthankars) and vandana prepare the background for pratikraman. The practitioner stabilizing himself in a state of equanimity, recites hymn in praise of 24 tirthankars and bowing to them experiences a sublime spiritual happiness. Thereafter, he starts on the voyage to see the sublime self. This voyage is called pratikraman.

The word pratikraman is formed of two words—prati and kraman. They mean to return from outer field to the inner one or to return from external self to inner self. By practicing pratikraman, the practitioner discards wrong vision, slackness, ignorance, non-restraint and the like and re-gains his true nature namely right knowledge, right faith and right conduct.

Pratikraman is the exalted practice for self-realisation and self-purification. Without self-realisation self-purification is not possible and in the absence of self-purification, one cannot attain salvation. The ultimate goal is salvation or liberation. The true vision of self is the first step towards liberation. Through it, the practitioner looks into his merits and demerits. His interest develops in merits and he detaches himself from demerits. In the state of pratikraman, the practitioner not only recollects his demerits but also makes a resolve to eliminate his demerits.

The life style of spiritual practitioner is totally secure due to resolves, major vows and restraints. But while practicing the vows in actual daily routine same deviations ordinarily occur. Pratikraman is done for purification of self from effect of such deviations. Just as by taking bath, the dirt struck to the body is removed smoothly through pratikraman the effect of sins on the soul is removed. By taking bath one feels light and fresh. Similarly by pratikraman one experiences ecstatic pleasure as a result of purification and lightness in the soul.

The scholars of Agams have dwelt in detail on divisions and sub-divisions of pratikraman. Primarily there are two type of pratikraman namely dravya pratikraman and bhava (inner) pratikraman. The pratikraman which is practiced only to follow the tradition and to gain applause is called dravya pratikraman. In it the practitioner recites the various lessons of the Sutra but does not reflect on their real meaning. Further, he does not feel in his heart hatred for the sins committed by him. Such a practitioner recites pratikraman daily but again and again commits the same sins.

In bhava pratikraman, the practitioner practices pratikraman with complete concentration of the mind. He recollects his sins and it generates in him severe abhorrence towards them. He remains vigilant so that such faults may not be committed again and the real practikraman is bhava pratikraman. Self purification and salvation can be attained only through it.

In reply to the query raised by Gautam about the result of practice of pratikraman, Bhagawan Mahavir replied, 'Gautam! Through pratikraman, the spiritual practitioner recollects the deviations committed by him in practice of the vows. Then by meticulously practicing the vows, he stops the inflow of karmic matter. He becomes free from major faults. His life of restraint becomes pure and spotless. He becomes extremely vigilant in practices of five samitis and three guptis. He gains right conduct and practices the life of self-restraint in a state of equanimity.

In the absence of pratikraman, salvation is not possible. So in Aavashyak Sutra it is termed as essential spiritual practice. The practitioner of pratikraman who with full concentration daily practices it both the times namely after sunset and before sunrise gains liberation from the worldly turmoil soon.

○○

प्रतिक्रमण आवश्यक
Pratikraman Avashyak (Essential)

विधि : "तिक्खुत्तो" के पाठ से गुरुदेव को वन्दन करके चतुर्थ आवश्यक की आज्ञा ली जाती है। तत्पश्चात् प्रथम अध्ययन में ध्यानावस्था में पढ़े गए तीस पाठों को खड़े होकर मध्यम स्वर में पढ़ा जाता है। उसके बाद पुनः वंदन करके भूमि पर बैठकर दक्षिण जानु खड़ा रखके एवं वाम जानु भूमि पर रखकर निम्नलिखित सूत्र का उच्चारण किया जाता है–

Procedure: After saluting the master with 'Tikhutto lesson' the permission for fourth essential is sought, Thereafter thirty aphorism uttered in the first chapter in a state of meditation are repeated in a medium voice while standing. Thereafter again after saluting the master, the pupil sits on the ground keeping his right knee lifted and left knee touching the ground. Then he utters the aphorism given below:

श्रमण-सूत्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।
एसो पंच णमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं॥

(**भावार्थ**–पूर्व सम समझें।)

(Its exposition has been given earlier)

सामायिक सूत्र

करेमि भंते! सामाइयं सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि, जावज्जीवाय, तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए कायेणं, न करेमि, न कारवेमि, करंतंपि अन्ने न समणु-जाणामि, तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।

(**भावार्थ**–पूर्व सम समझें।)

(Its exposition has been given earlier.)

मंगल सूत्र

चत्तारि मंगलं–अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवलि-पण्णत्तो धम्मो मंगलं।
चत्तारि लोगुत्तमा–अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलि-पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि–अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि,
साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलि-पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

भावार्थ : जगत में चार मंगल हैं, जैसे कि–(1) अरिहंत भगवान् मंगल हैं, (2) सिद्ध भगवान् मंगल हैं, (3) साधु-मुनिराज मंगल हैं, एवं (4) सर्वज्ञ-सर्वदर्शी केवली भगवान् द्वारा प्रतिपादित धर्म मंगल है।

जगत में चार उत्तम हैं, जैसे कि–(1) अरिहंत भगवान् उत्तम हैं, (2) सिद्ध भगवान् उत्तम हैं, (3) साधु-मुनिराज उत्तम हैं, एवं (4) केवली भगवान् द्वारा प्रतिपादित धर्म उत्तम है।

मैं चार की शरण ग्रहण करता हूं। (1) अरिहंतों-भगवंतों की शरण ग्रहण करता हूं, (2) सिद्धों की शरण ग्रहण करता हूं, (3) साधुओं की शरण ग्रहण करता हूं, एवं (4) केवली-प्ररूपित धर्म की शरण ग्रहण करता हूं।

Exposition: These are four good omens in the world namely (1) Arihantas are ominous (2) Sidhhas are ominous (3) Sadhus are ominous (4) Dharma propounded by omniscient is ominous.

Four are excellent in world namely (1) Arihantas (2) Siddhas (3) Sadhus (4) Dharma enumerated by the omniscient.

I accept the patronage of four namely (1) of Arihantas (2) of Siddhas (3) of Sadhus (4) of Dharma as propagated by omniscient.

विवेचन : श्रेष्ठतम की प्राप्ति के लिए श्रेष्ठतम की शरण अनिवार्य है। इस जगत में जो भी श्रेष्ठतम एवं मंगल रूप हैं, वे चार ही हैं–अरिहंत, सिद्ध, साधु एवं सर्वज्ञोक्त धर्म। इन चारों की सन्निधि से व्यक्ति आत्मलाभ प्राप्त करता है। आत्मलाभ ही परम और श्रेष्ठ लाभ है। भौतिक (धन, यश, पुत्र आदि) लाभ क्षणिक हैं। उन्हें नष्ट होना ही होता है। धर्मलाभ अनश्वर है। उसके आराधन से जीव शाश्वत पद मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। इसीलिए धर्म एवं धर्म के आधारभूत अरिहंत, सिद्ध और साधु को मंगल कहा गया है। जो गले नहीं, नष्ट न हो, सदैव बना रहे, उसे ही मंगल कहा जाता है।

Explanation : In order to gain excellence it is essential to seek the patronage of the excellent in this world The excellent and ominous one are only four namely Arihants, Siddhas, Sadhus and Dharma defined by ominscients With the patronage of these four, the pupil gains self-realisation and self-realisation is the unique benefit of highest order. Material benefits such as money, worldly honour, son and the like are transitory. They ultimately wither away The gain in the form of dharma is permanent. By following dharma, the pupil ulitimately gets the highest state namely salvation. So, Dharma and Arihantas, Sidhas and Sadhus who are propagators of dharma are termed as ominous, Mangal is that which never perishes, never dissolves and always remains stable. So, it is called ominous.

सामूहिक आलोचना सूत्र

इच्छामि पडिक्कमिउं, जो मे देवसि अइयारो कओ, काइओ, वाइओ, माणसिओ, उस्सुत्तो, उम्मग्गो, अकप्पो, अकरणिज्जो, दुज्झाउ, दुचिंतिओ, अणायारो, अणिच्छियव्वो, असमणपावग्गो, णाणे तह दंसणे, चरित्ते सुएसामाइए, तिण्हं गुत्तीणं, चउण्हं कसायाणं, पंचण्हं महव्वयाणं, छण्हं जीवनिकायाणं, सत्तण्हं पिंडेसणाणं, अट्ठण्हं पवयण माऊणं, नवण्हं बंभचेरगुत्तीणं, दसविहे समण धम्मे, समणाणं, जोगाणं, जं खंडियं, जं विराहियं, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

ईर्यापथ सूत्र

इच्छामि पडिक्कमिउं–इरिया वहियाए, विराहणाए, गमणागमणे, पाणक्कमणे, बीयक्कमणे, हरियक्कमणे, ओसा–उत्तिंग, पणग–दग, मट्टी–मक्कडा संताणा–

संकमणे, जे मे जीवा विराहिया एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया, अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया, ठाणाओ-ठाणं संकामिया जीवियाओ ववरोविया, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(सूचना : आलोचना सूत्र एवं ईर्यापथ सूत्र का भावार्थ सामायिक आवश्यक में देखें।)

(Exposition of these Sutra may be seen in Samayik Avashayak.)

शयन संबंधी अतिचारों की आलोचना

शय्यासूत्र

इच्छामि पडिक्कमिउं पगामसिज्जाए, निगामसिज्जाए, संथारा उवट्टणाए, परियट्टणाए, आउट्टणाए, पसारणाए, छप्पई-संघट्टणाए, कूइए, कक्कराइए, छीइए, जंभाइए, आमोसे, ससरक्खामोसे, आउलमाउलाए, सोअणवत्तियाए, इत्थीविप्प-रियासियाए, दिट्ठिविप्परियासियाए, मणविप्परियासियाए, पाणभोयणविप्परिया-सियाए, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : मैं शयन-संबंधी अतिचारों के निवारण के लिए प्रतिक्रमण करना चाहता हूं। यदि मैं नियम-विरुद्ध काल तक सोता रहा हूं, पुनः पुनः बहुत काल तक सोता रहा हूं, अयतना से करवट बदली हो अथवा पुनः पुनः करवट बदली हो, अयतना से हाथ-पैर आदि अंगों को समेटा या फैलाया हो, कठोर स्पर्श से यूका (जूं) आदि जीवों को कष्ट पहुंचाया हो, अयतना से खांसी आदि की हो अथवा जोर से शब्द किया हो, शय्या के गुण-दोष बखाने हों, अयतना से छींक ली हो, अयतना से उबासी ली हो, अयतना से शरीर को खुजलाया हो, सचित्त धूल से युक्त वस्त्रों को छुआ हो, स्वप्न में विवाह-युद्ध आदि के दृश्यों को देखने से आकुलता-व्याकुलता रही हो, स्वप्न में स्त्री आदि के प्रति आसक्ति उत्पन्न हुई हो, स्वप्न में दृष्टि राग-रञ्जित हुई हो, मन में विकार भाव उत्पन्न हुआ हो, स्वप्न में भोजन-पानी संबंधी संयम विरुद्ध भाव आए हों, इस प्रकार मेरे द्वारा दिन के समय शयन संबंधी जो भी अतिचार सेवन किया गया है उससे मैं पीछे लौटता हूं। मेरा वह दुष्कृत निष्फल हो।

Exposition: I want to self-criticise in order to remove faults relating to bed rest. In case I might have been sleeping for a period more than the one prescribed or sleeping again and again for a very long period or I changed side without proper care or changed side repeatedly, or twisted or spread my body, hands and feet without

discrimination. I may have spit loudly. I may have caused hurt to the lice and other. I may have coughed in an improper manner. I may have spoken in a loud voice: I may have found faults with my bed. I may have sneezed in a rustic manner. I may have yawned improperly. I may have scrubbed my body without discrimination. I may have touched cloth containing live dust. I may have felt upset by seeing marriage scene or battle scene in dream. I may have got attracted toward a woman in dream. My perception may have been affected with attachment in dream. I may have had adverse reflections in the mind. I may have had thoughts not in line with prescribed code regarding food and liquid in the dream. I feel sorry for all such faults committed by me during the day and withdraw myself from them. May my faults be condoned.

विवेचन : प्रस्तुत सूत्र में दिवस संबंधी निद्रा-दोषों की आलोचना की गई है। प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या साधु दिन के समय निद्रा ले सकता है? स्वस्थ और युवा साधु के लिए दिवाशयन निषिद्ध है। साधु यदि रुग्ण है, वृद्ध है अथवा विहार आदि से थका हुआ है तो दिन में परिमित काल के लिए विश्राम करना, निद्रा ले लेना आगम-विरुद्ध नहीं है।

जैन साधना का यह उच्च प्रमाण है कि साधु जागृत अवस्था में हुई भूलों का तो प्रतिक्रमण/शोधन करता ही है, निद्रा अवस्था में हुई संभावित भूलों को भी वह अपराध मानता है और उनकी शुद्धि के लिए प्रतिक्रमण करता है।

Explanation: In this aphorism self-criticism has been done in respect of faults relating to sleep committed during the day. The question arises whether a monk can sleep during the day. Sleeping during the day is prohibited for a healthy or young monk. In case a monk is ill or is old and tired due to his wanderings, he can take rest for a limited period. To sleep is against the code.

It is an important proof of Jain asceticism that a Sadhu repents for the faults committed not only in awakened state but also of possible faults that are likely to occur in sleep and consider them as sin. He feels sorry for them.

तत्पश्चात् गोचर-चर्या शुद्धि का स्मरण किया जाता है-

Thereafter the purification of movement is resorted to.

गोचरचर्या सूत्र

पडिक्कमामि गोयरचरियाए, भिक्खायरियाए, उग्घाडकवाड-उग्घाडणाए, साणावच्छादारासंघट्टणाए, मंडीपाहुडियाए, बलि-पाहुडियाए, ठवणापाहुडियाए, संकिए, सहसागारिए, अणेसणाए, पाणभोयणाए, बीयभोयणाए, हरियभोयणाए,

शय्या सूत्र

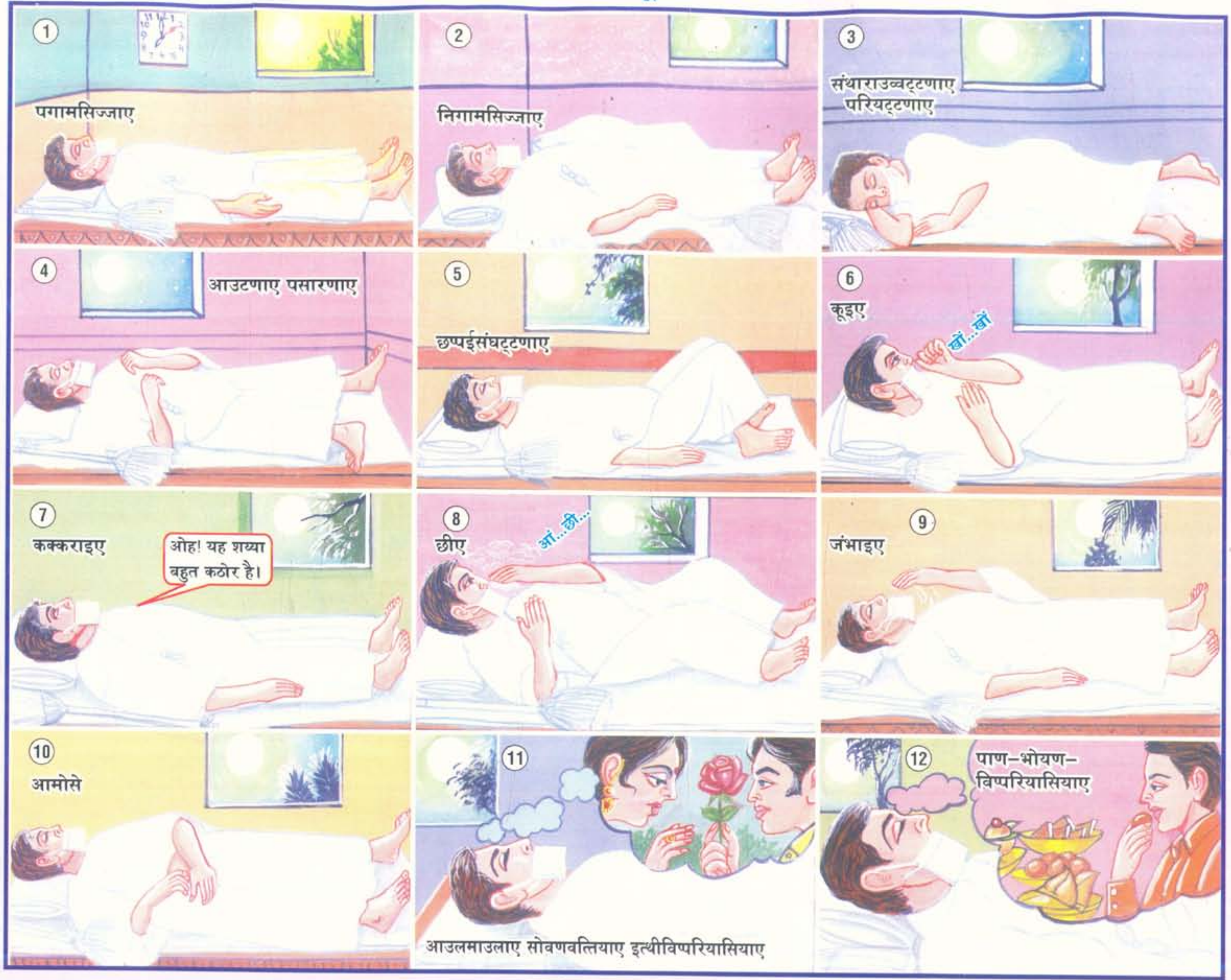

चित्र संख्या 8

शय्या सूत्र

मर्यादा से अधिक सोना, पुनः–पुनः निद्रा लेना, अविवेक से करवट बदलना, अयतना से हाथ–पैर फैलाना–संकोचना, सोते हुए सूक्ष्म जीवों का ध्यान न रखना, अविवेक पूर्वक खांसना, शय्या के दोष कहना, अमर्यादित ढंग से छींकना–जंभाई लेना, बिना पूंजे शरीर को खुजलाना, स्वप्न में स्त्री आदि को देखकर आकुल–व्याकुल होना, स्वप्न में आहारादि करना या वैसी कल्पना का उत्पन्न होना – ये सभी निद्रा संबंधी दोष चित्रों में दर्शाए गए हैं। प्रतिक्रमण की बेला में मुनि उक्त दोषों का स्मरण करता है तथा उनसे पीछे लौटने की प्रतिज्ञा करता है।

Sleeping (Bedding) Sutra

To sleep more than difined, to sleep frequently, to turn side unwisely, to stretch and contract the hands carelessly, not to take care of subtle organism during sleep, coughing unwisely, to say the faults of bedding, yawning and sneezing in unrestraint manner, to scratch the body without using woolen broom, to be preplexed seeing a woman in dreams. to eat in dreams or to imagine likewise, all these faults regarding sleep have been illustrated in these pictures. At the time of repentance the ascetic remembers all these faults and pledges to withdraw from them.

पच्छाकम्मियाए, पुरेकम्मियाए, अदिट्ठहडाए, दग-संसट्ठ-हडाए, रयसंसट्ठहडाए, पारिसाडणियाए, परिट्ठावणियाए, ओहासणभिक्खाए, जं उग्गमेणं, उप्पायणेसणाए, अपरिसुद्धं, परिग्गहियं, परिभुत्तं वा, जं न परिट्ठवियं तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : गोचरी रूप भिक्षाचरी करते हुए जो भी अतिचार लगा हो उसकी शुद्धि के लिए प्रतिक्रमण करता हूं।

आधे खुले हुए किवाड़ों को खोलने से, कुत्ते, बछड़े एवं बच्चे को लांघ कर भिक्षा लेने से, अग्रपिण्ड (धर्मार्थ निकाले हुए आहार अथवा अग्नि पर सेंकी जाती हुई रोटी जिसे मांडा कहा जाता है) की भिक्षा लेने से, बलि कर्म (कुत्ते, कौए या गाय के लिए अथवा ग्राम देवता की पूजा के निमित्त से निकाले हुए आहार) के लिए रखे हुए भोजन की भिक्षा लेने से, भिक्षुओं के लिए तैयार किए गए अथवा अलग निकाल कर रखे गए अन्न की भिक्षा लेने से, आधा-कर्म आदि दोषों की शंका वाला आहार लेने से, अविवेकपूर्वक शीघ्रता से आहार लेने से, बिना जांच-पड़ताल किए आहार लेने से, प्राणी युक्त (ऐसा खाद्य-पेय जिसमें मक्खी आदि जीव पड़ा हो) आहार लेने से, बीजों वाला आहार लेने से, सचित्त वनस्पति वाला आहार लेने से, पश्चात् कर्म (साधु को आहार देने के बाद हाथों या बर्तनों को सचित्त जल से धोना) या पुरः-कर्म (साधु को आहार देने के लिए हाथों या बर्तनों आदि को सचित्त जल से धोना) की संभावना वाला आहार लेने से, अदृष्ट स्थान से लाकर दिए गए आहार को लेने से, सचित्त जल से युक्त या संस्पर्शित वस्तु का आहार लेने से, सचित्त रज से स्पर्शित आहार लेने से, दाता द्वारा टपकाते-गिराते हुए दिया जाने वाला आहार लेने से, पूर्व प्राप्त निरस आहार को परठ कर गृद्धिवश सरस आहार ग्रहण करने से, बिना किसी विशेष प्रयोजन के उत्तम पदार्थ मांगकर लेने से, उद्गम, उत्पादन एवं एषणा के दोषों की संभावना वाला आहार लेने से, दोष युक्त आहार करने से और परठने योग्य आहार को न परठने से–उपरोक्त दोषों से दूषित आहार यदि मैंने लिया और भोगा हो तो उससे उत्पन्न दोष निष्फल हों। उक्त दोषों का मैं परिहार-परित्याग करता हूं।

Exposition: I feel sorry for faults if any committed during my wandering for seeking food so that I may cleanse myself of those faults.

I may have opened a door which is partly opened. I may have crossed a dog, a calf or a child for seeking alms. I may have taken a loaf being roasted on fire which is called manda. I may have taken as alms the foodstuff taken out for a dog., a crow or for worship of a village deity. I may have taken alms out of food prepared for mendicants or kept separately for bhikshus. I may have taken food wherein there is likelihood of fault or food mixed with one prepared specifically for the monk.

I may have accepted alms in a hurry without proper discrimination and without detailed enquiry. I may have accepted food that contains living being, for instance a fly may have fallen in it. I may have taken food containing seeds or organic vegetation. I may have accepted food from the donor who has to wash his hands or utensils with live water after it or who washes hands or utensils with live water before offering. I may have accepted food brought from an invisible place. I may have taken food containing live water or touching live water or live dust. I may have taken food part of which is dripping from the hand of the donor. I may have discarded food received earlier and in its place taken tasty food with a sense of attachment for it. I may have asked for some good article without any special need. I may have accepted food wherein there is possibility of faults relating to preparation, production and acceptance mentioned in the code. I may have consumed faulty food and not discarded faulty food worthy of being discarded.

In case I accepted any such food and the like and consumed it or used it. I feel sorry for all such faults. I condemn those faults and discard them. May my faults he condoned.

विवेचन : जैन श्रमण अकिंचन होता है। गृहस्थ की भाँति जीवन-निर्वाह के लिए कृषि, उद्योग या व्यापार नहीं करता। परन्तु जीवन-निर्वाह के लिए अन्न, वस्त्र, पात्र आदि की उसे भी जरूरत होती है। अपनी इस जरूरत को वह भिक्षाविधि से पूरी करता है।

श्रमण 'भिक्षु' होकर भी भिखारी नहीं होता। भिखारी की भिक्षावृत्ति में दीनता का भाव रहता है जबकि श्रमण की भिक्षावृत्ति में दीनता के लिए किंचित् भी अवकाश नहीं होता। भिखारी की भिक्षावृत्ति में संतोष और नियम के लिए कोई स्थान नहीं होता, जबकि श्रमण की भिक्षावृत्ति की भित्ति संतोष और नियम-उपनियमों के आधार पर खड़ी होती है।

Explanation: A Jain monk does not keep any possession. He does not engage himself in cultivation, industry or trade like a householder. Still in order to live he requires food, cloth, pot and the like. He fulfils the need by seeking alms according to the prescribed code.

A Shraman is a bhikshu and not a beggar. In begging one feels humble and weak while in practice of seeking alms as a bhikshu there is no scope of showing ones weakness or destitute state. In seeking alms, a beggar has no principle of satisfaction or limit while a Jain monk has always a sense of satisfaction and is vigilant about the prescribed rule, and sub-rules for seeking alms.

स्वाध्याय एवं काल प्रतिलेखना सूत्र

चित्र संख्या 9

चित्र-परिचय – 9

Illustration No. 9

स्वाध्याय एवं काल प्रतिलेखना सूत्र

आलस्य अथवा प्रमाद साधक का सबसे बड़ा शत्रु है। उससे साधक स्वाध्याय – प्रतिलेखन आदि आवश्यकीय क्रियाओं को विस्मृत करके पथभ्रष्ट हो जाता है। छह चित्रों के माध्यम से एक आलसी मुनि की मनोदशा का चित्रण किया गया है।

Study and Cleaning (Pratilekhna) Sutra

The biggest enemy of a practiser is laziness and inertia. By that the practiser forgetting the essential activities of study and cleaning (pratilekhna) deviates from the path. Through six illustrations the mental condition of a lazy ascetic has been illustrated.

स्वाध्याय एवं काल-प्रतिलेखना सूत्र

पडिक्कमामि चउकालं सज्झायस्स अकरणयाए, उभओ कालं भंडोवगरणस्स अप्पडिलेहणाए, दुप्पडिलेहणाए, अप्पमज्जणाए, दुप्पमज्जणाए, अइक्कमे, वइक्कमे, अइयारे, अणायारे, जो मे देवसी अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : स्वाध्याय एवं प्रतिलेखना संबंधी दोषों की निवृत्ति हेतु प्रतिक्रमण करता हूं। दिन और रात्रि के प्रथम और अंतिम प्रहरों–अर्थात् चारों कालों में यदि स्वाध्याय न किया हो, उभय काल (दिन के प्रथम और अंतिम–इन दो प्रहरों) में भाण्ड, उपकरण, वस्त्र, पात्र आदि की प्रतिलेखना न की हो अथवा प्रमादवश उचित विधि से प्रतिलेखना न की हो, वस्त्रादि का प्रमार्जन न किया हो, अथवा उचित विधि से प्रमार्जन न किया हो, फलस्वरूप अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार के कारण जो भी दिवस संबंधी पाप मुझे लगा हो, उससे मैं पीछे हटता हूं। मेरा वह दुष्कृत मिथ्या हो।

Exposition: I critically examine myself in order to wash off faults relating to study and proper examination of article of use. I may not have engaged myself in study of scriptures in the first and last quarter of the day and of the night and then I may not have properly examined discriminately the cloth, pot and other article, which I use. I may not have cleaned them properly as prescribed in the code. As a result of transgression in mind or action I may have committed any faults during the day. I withdraw myself from them.

विवेचन : साधु के लिए यह नियम है कि वह दिन और रात्रि के प्रथम और अंतिम प्रहर में स्वाध्याय करे। इस प्रकार दिन-रात्रि के कुल आठ प्रहरों में से चार प्रहर स्वाध्याय करना श्रमण का आचार है।

इसी प्रकार दिन के प्रथम और अंतिम प्रहर में संयम के लिए उपयोगी वस्त्र, पात्र, पुस्तक आदि की प्रतिलेखना का विधान है। काल के काल स्वाध्याय और प्रतिलेखना साधु के लिए आवश्यक है। प्रस्तुत सूत्र से प्रमाद वश स्वाध्याय और प्रतिलेखना में उत्पन्न दोषों की शुद्धि की गई है।

Explanation: It is laid down for a Jain monk that in the first and last quarter of the day and of night he should engage himself in study or revision of scriptures. Thus it is essential for the monk to study scripture in four quarters out of eight quarters of day and night.

Similarly in the first and last quarter of the day he should discriminately examine the cloth, pot, books and the like which he uses in his ascetic life. It is essential for him to study scriptures and to examine his articles, discriminately during the period as laid down in the code. In this aphorism the faults in respect of alms and examination of articles arising due to any slackness are cleansed.

तेंतीस बोल का पाठ

पडिक्कमामि—एगविहे असंजमे।

पडिक्कमामि दोहिं बंधणेहिं—राग बंधणेणं, दोस बंधणेणं।

पडिक्कमामि तिहिं दंडेहिं—मणदंडेणं, वयदंडेणं, कायदंडेणं।

पडिक्कमामि तिहिं गुत्तीहिं—मणगुत्तीए, वयगुत्तीए, कायगुत्तीए।

पडिक्कमामि तिहिं सल्लेहिं—माया सल्लेणं, नियाण सल्लेणं, मिच्छा-दंसण-सल्लेणं।

पडिक्कमामि तिहिं गारवेहिं—इड्ढी-गारवेणं, रस-गारवेणं, साया-गारवेणं।

पडिक्कमामि तिहिं विराहणाहिं—णाण-विराहणाए, दंसण-विराहणाए, चरित्त-विराहणाए।

भावार्थ : एक प्रकार के असंयम से उत्पन्न दोषों की निवृत्ति हेतु मैं प्रतिक्रमण करता हूं, अर्थात् दोषों से पीछे हटता हूं।

दो प्रकार के बन्धनों से उत्पन्न हुए दोषों का प्रतिक्रमण करता हूं। वे दो बन्धन हैं—राग रूपी बन्धन एवं द्वेष रूपी बन्धन।

तीन प्रकार के दण्डों से उत्पन्न दोषों का प्रतिक्रमण करता हूं। वे तीन दण्ड हैं—(1) मनोदण्ड, (2) वचन दण्ड, एवं (3) काय दण्ड।

तीन गुप्तियों में जो दोष लगे हैं, उनका प्रतिक्रमण करता हूं। तीन गुप्तियां हैं (1) मन गुप्ति, (2) वचन गुप्ति, (3) काय गुप्ति।

तीन प्रकार के शल्यों से उत्पन्न दोषों का प्रतिक्रमण करता हूं। तीन शल्य हैं—(1) माया शल्य, (2) निदान शल्य, एवं (3) मिथ्या दर्शन शल्य।

तीन प्रकार के गौरव (अहंकार) से उत्पन्न दोषों का प्रतिक्रमण करता हूं। तीन गौरव हैं—(1) ऋद्धि गौरव, (2) रस गौरव, एवं (3) साता गौरव।

तीन प्रकार की विराधनाओं से उत्पन्न हुए दोषों का प्रतिक्रमण करता हूं। तीन विराधनाएं हैं–(1) ज्ञान विराधना, (2) दर्शन विराधना, एवं (3) चारित्र विराधना।

Exposition: I do self analysis in order to wash off faults arising out of deviation from self-restraint. I retreat from faults arising out of two types of bondage—bondage of attachment and bondage of hatred.

I feel sorry for faults arising out of deviation of mind, speech and physical activity.

I repent for faults committed in practicing three guptis namely, gupti of mind, word and body Gupti is discriminately restricting oneself.

I withdraw myself from faults arising out of three thorns—thorn of deceit, thorn of seeking wordly gain in exchange of ascetic conduct and thorn of wrong perception.

I feel sorry for faults arising out of three type of pride—pride of wealth, pride of good taste and pride of comforts.

I feel sorry for faults arising out of three types of conduct against the code namely that relating to scriptural knowledge, right perception and one concerning practice of right conduct.

पडिक्कमामि चउहिं कसाएहिं–कोह-कसाएणं, माण-कसाएणं, माया- कसाएणं, लोह-कसाएणं।

पडिक्कमामि चउहिं सण्णाहिं–आहार-सण्णाए, भय-सण्णाए, मेहुण-सण्णाए, परिग्गह-सण्णाए।

पडिक्कमामि चउहिं विकहाहिं–इत्थी-कहाए, भत्त-कहाए, देस-कहाए, राय-कहाए।

पडिक्कमामि चउहिं झाणेणं–अट्टेणं झाणेणं, रुद्देणं झाणेणं, धम्मेणं झाणेणं, सुक्केणं झाणेणं।

भावार्थ : चार प्रकार के कषायों से लगने वाले दोषों का प्रतिक्रमण करता हूं। चार कषाय हैं–(1) क्रोध कषाय, (2) मान कषाय, (3) माया कषाय, एवं (4) लोभ कषाय।

चार प्रकार की संज्ञाओं के कारण उत्पन्न हुए दोषों का प्रतिक्रमण करता हूं। चार संज्ञाएं हैं–(1) आहार संज्ञा, (2) भय संज्ञा, (3) मैथुन संज्ञा एवं (4) परिग्रह संज्ञा।

चार प्रकार की विकथाओं के कथन-श्रवण से उत्पन्न हुए दोषों से पीछे हटता हूं अर्थात् प्रतिक्रमण करता हूं। वे चार विकथाएं हैं-(1) स्त्रीकथा, (2) भक्त (भोजन-पान) कथा, (3) देशकथा, एवं (4) राजकथा।

चार प्रकार के ध्यानों से अर्थात् प्रथम दो ध्यानों को ध्याने से एवं अंतिम दो ध्यानों को नहीं ध्याने से जो दोष लगा है उससे पीछे हटता हूं। चार ध्यान हैं-(1) आर्त्तध्यान, (2) रौद्र ध्यान, (3) धर्मध्यान, एवं (4) शुक्ल ध्यान।

Exposition: I critically examine faults arising out of four types of passions—passion of anger, passion of ego, passion of daceit and passion of greed.

I feel sorry for faults arising out of four types of desires (Sanjnan)—desire for food, feeling arising out of fear, desire of sex, desire of possession.

I condemn myself for faults arising out of listening four types of prohibited talk-talk about women, talk about food, talk about the country and talk about administration.

I withdraw myself from faults arising out of four types of meditation-in other words engaging myself in first two types of reflections and not engaging myself in the other two contemplations The four types of meditation are (1) Deeply reflecting on Sad situation (2) Arrogant haughty attitude (3) engaging in dharma (4) Pure chaste reflections.

पडिक्कमामि पंचहिं किरियाहिं-काइयाए, अहिगरणियाए, पाउसियाए, पारिता-वणियाए, पाणाइवायकिरियाए।

पडिक्कमामि पंचहिं कामगुणेहिं-सद्देणं, रूवेणं, गंधेणं, रसेणं, फासेणं।

पडिक्कमामि पंचहिं महव्वएहिं-सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं, सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं।

पडिक्कमामि पंचहिं समिईहिं-ईरिया समिईए, भासा समिईए, एसणा समिईए, आयाण-भंडमत्त-निक्खेवणा-समिईए, उच्चार-पासवण-खेल-जल्ल-सिंघाण परिट्ठावणिया समिईए।

भावार्थ : पांच प्रकार की क्रियाओं से उत्पन्न दोषों का प्रतिक्रमण करता हूं। पांच क्रियाएं

हैं–(1) कायिकी, (2) आधिकरणिकी, (3) प्राद्वेषिकी, (4) पारितापनिकी, एवं (5) प्राणातिपातिकी।

पांच कामगुणों से उत्पन्न दोषों का प्रतिक्रमण करता हूं। पांच कामगुण हैं–(1) शब्द, (2) रूप, (3) रस, (4) गंध और (5) स्पर्श।

पांच महाव्रतों में लगे हुए दोषों का प्रतिक्रमण करता हूं। पांच महाव्रत हैं–(1) सर्व प्राणातिपात विरमण (अहिंसा), (2) सर्व मृषावाद विरमण (सत्य), (3) सर्व अदत्तादान विरमण (अस्तेय), (4) सर्व मैथुन विरमण (ब्रह्मचर्य) एवं (5) सर्व परिग्रह विरमण (अपरिग्रह)।

पांच समितियों की सम्यक् आराधना न कर पाने से जो दोष लगे हैं उनका प्रतिक्रमण करता हूं। पांच समिति हैं–(1) ईर्या, (2) भाषा, (3) एषणा, (4) आदान भाण्डमात्र निक्षेपणा, एवं (5) उच्चार-प्रस्रवण खेल-जल-मल-सिंघाण परिष्ठापनिका समिति।

Exposition: I withdraw myself from faults arising out of five types of activities. Five activities are: (1) Physical activity, (2) activity with some weapon, (3) activity arising out of hatred, (4) to cause trouble (5) to destroy some life-force.

I feel sorry for faults arising out of five types of sensual pleasures—(1) pleasant word, (2) pleasant sight (3) pleasant taste (4) pleasant smell and (5) pleasant touch.

I condemn myself for faults in practice of five major vows. Five major vows are: (1) Avoiding violence completely, (2) Avoiding falsehood totally, (3) Avoiding stealing totally, (4) Completely avoiding cohabitation and (5) Completely avoiding attachment to possessions.

I feel sorry for faults arising out of not properly practicing five samitis—(1) In movement (2) In talk (3) In seeking alms (4) In handling and handing over ones cloth, pot etc. and (5) In discarding stool, urine, dirt of nose, body, mouth.

पडिक्कमामि छहिं जीव-निकाएहिं–पुढविकाएणं, आउकाएणं, तेउकाएणं, वाउकाएणं, वणस्सइ-काएणं, तसकाएणं।

पडिक्कमामि छहिं लेसाहिं–कण्ह-लेसाए, नील-लेसाए, काउ-लेसाए, तेउ-लेसाए, पम्ह-लेसाए, सुक्क-लेसाए।

भावार्थ : छह प्रकार के जीव-निकायों (जीवों की राशि या समूह) की हिंसा से उत्पन्न अतिचारों का प्रतिक्रमण करता हूं। छह जीव निकाय हैं–(1) पृथ्वीकाय, (2) अप्काय, (3) तेउकाय, (4) वायुकाय, (5) वनस्पतिकाय, एवं (6) त्रसकाय।

अप्रशस्त लेश्याओं के आचरण एवं प्रशस्त लेश्याओं के अनाचरण से जो अतिचार लगा है, उसका प्रतिक्रमण करता हूं। छह लेश्याएं हैं–(1) कृष्ण लेश्या, (2) नील लेश्या, (3) कापोत लेश्या (ये तीन अप्रशस्त लेश्याएं हैं), (4) तेजो लेश्या, (5) पद्म लेश्या, एवं (6) शुक्ल लेश्या। (अंतिम तीन प्रशस्त लेश्याएं हैं।)

Exposition: I condemn myself for faults in ascetic conduct arising out of violence to six types of living being—earth bodied, water bodied, fire bodied, air bodied, vegetable bodied and mobile living beings.

I feel sorry for faults arising out of practice of ignomous reflections and non practice of ominous reflections. Six thought reflections are: (1) Black (2) Blue (3) Grey reflection. These three are ignominious reflections (4) Bright (Tejo) reflection (5) Padma (yellow) reflection and (6) White reflection (the last three are ominous reflections)

पडिक्कमामि सत्तहिं भयट्ठाणेहिं, अट्ठहिं मयट्ठाणेहिं, नवहिं बंभचेरगुत्तीहिं, दसविहे समणधम्मे, एक्कारसहिं उवासगपडिमाहिं, बारसहिं भिक्खुपडिमाहिं, तेरसहिं किरियाठाणेहिं, चउद्दसहिं भूयगामेहिं, पण्णरसहिं परमाहम्मिएहिं, सोलसहिं गाहासोलसएहिं, सत्तरसविहे असंजमेहिं, अट्ठारसविहे अबंभेहिं, एगूणवीसाए णायज्झयणेहिं, वीसाए असमाहि ठाणेहिं, एगवीसाए सबलेहिं, बावीसाए परीसहेहिं, तेवीसाए सूयगडज्झयणेहिं, चउवीसाए देवेहिं, पणबीसाए भावणाहिं, छव्वीसाए दसाकप्पववहाराणं उद्देसण कालेहिं, सत्तावीसाए अणगार गुणेहिं, अट्ठावीसाए आयारप्पकप्पेहिं, एगूणतीसाए पावसुयप्पसंगेहिं तीसाए महामोहणीयट्ठाणेहिं, एगतीसाए सिद्धाइगुणेहिं, बत्तीसाए जोगसंगहेहिं, तेत्तीसाए आसायणाहिं।

भावार्थ : मैं प्रतिक्रमण करता हूं अर्थात् आगे कहे जाने वाले सात से तैंतीस बोल पर्यंत स्थानों में से प्रशस्त के अनाचरण और अप्रशस्त के आचरण से उपन्न दोषों से पीछे हटता हूं–

सात भय के स्थानों अर्थात् कारणों से, आठ मद के स्थानों से, नौ प्रकार की ब्रह्मचर्य गुप्तियों की सम्यक् आराधना न करने से, दस प्रकार के श्रमण धर्म की विराधना से, ग्यारह श्रावक-प्रतिमाओं की विपरीत प्ररूपणा करने से, बारह भिक्षु-प्रतिमाओं की सम्यक् आराधना न करने से, तेरह क्रियास्थानों से, चौदह जीव-समूहों की हिंसा से, पन्द्रह प्रकार के परम-अधार्मिकों–परमाधामी देवों जैसा व्यवहार करने से, सूत्रकृतांग सूत्र के प्रथम श्रुत-स्कंध के सोलह अध्ययनों में कथित श्रमणाचार का पालन न करने से, सतरह प्रकार के असंयम से, अठारह

प्रकार के अब्रह्मचर्य में वर्तने से, ज्ञातासूत्र के उन्नीस अध्ययनों में वर्णित संयमाचार की आराधना न करने से, बीस असमाधि स्थानों से, इक्कीस शबल दोषों से, बाईस परीषहों में समताभाव न रखने से, सूत्रकृतांग सूत्र के तेईस अध्ययनों में कहे गए आचार के विपरीत वर्तने अथवा विपरीत प्ररूपणा से, चौबीस देवों की अवहेलना करने से, पांच महाव्रतों की पच्चीस भावनाओं का सम्यक् आचरण न करने से, दशाश्रुत, बृहत्कल्प एवं व्यवहार–इन तीन सूत्रों में कहे गए छब्बीस उद्देशन कालों का विधिसहित पालन न करने से, साधु के सत्ताईस गुणों की सम्यक् आराधना न करने से, आचारांग और निशीथ के अट्ठाईस अध्ययनों में वर्णित आचार के उल्लंघन से, उनतीस पापश्रुत के प्रसंगों से, तीस महामोहनीय कर्म के स्थानों से, सिद्धों के इकतीस गुणों में श्रद्धा न रखने से, बत्तीस योग संग्रहों का विधिवत् पालन न करने से, तथा तैंतीस प्रकार की आशातनाओं से उत्पन्न अतिचारों की निवृत्ति के लिए प्रतिक्रमण करता हूं।

I do pratikraman. In other words, I withdraw myself from faults arising out of practicing improper conduct and non-practicing proper conduct in respect of seven to thirty three heads mentioned as under:

I condemn myself and feel sorry for faults arising out of seven causes of fear, eight types of pride, not-properly practicing nine types of restrictions relating to practice of celibacy, faults committed in practice of ten types of ascetic conduct, explaining eleven types of special practices (pratimas) of Shravak in a manner contrary to the established code, not properly practicing twelve special practices (pratimas) relating to Jain monk, practicing thirteen prohibited activates, causing violence to fourteen types of living beings, behaving like fifteen types of nasty gods, not practicing properly the ascetic conduct as mentioned in sixteen chapters of first book of Sutrakritang, practicing seventeen types of non-restraint, preaching eighteen types of non-celibacy, ignoring directions mentioned in nineteen chapters of Jnaṭadharm Katha Sutra adopting twenty types of stages of non-equanimity, incurring twenty one types of major faults, losing forbearance in twenty two types of sufferings, going against the direction laid down in twenty three chapters of Sutrakritang or interpreting them in a different manner, insulting twenty four types of gods and not properly observing twenty five types of reflection relating to five major vows of the ascetic. I feel sorry for not properly practicing the order laid down in twenty six lectures (Uddeshankal) pertaining to three sutras namely Dashashrut Brihat Kalp and Vyavaḥar; not practicing properly twenty seven types of code relating to ascetic conduct. I feel sorry for transgressing the code mentioned in twenty eight chapters of Acharang and Nisheeth Sutra. I condemn myself for engaging in twenty

types of prohibited literatures that cause sin and in practicing any of the thirty causes, leading to accumulations of highly deluding karmas. I feel sorry in case I had deviated in believing thirty one qualities of the liberated one, I feel sorry in case I may not have properly practiced thirty two type of Yoga Samgreh and committed any one of thirty three deviations arising out of not showing proper regard to the senior monk.

अरिहंताणं आसायणाए, सिद्धाणं आसायणाए, आयरियाणं आसायणाए, उवज्झायाणं आसायणाए, साहूणं आसायणाए, साहूणीणं आसायणाए, सावयाणं आसायणाए, सावियाणं आसायणाए, देवाणं आसायणाए, देवीणं आसायणाए, इहलोगस्स आसायणाए, परलोगस्स आसायणाए, केवलि-पण्णत्तस्स धम्मस्स आसायणाए, सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स आसायणाए, सव्व पाणभूयजीवसत्ताणं आसायणाए, कालस्स आसायणाए, सुयस्स आसायणाए, सुयदेवयाए आसायणाए, वायणायरियस्स आसायणाए, जं वाइद्धं, वच्चा मेलियं, हीणक्खरं, अच्चक्खरं, पयहीणं, विणयहीणं, जोगहीणं, घोसहीणं, सुट्ठुदिण्णं, दुट्ठुपडिच्छियं, अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ सज्झाओ, असज्झाइए सज्झायं, सज्झाइये न सज्झायं, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : तैंतीस आशातनाएं–(1) अरिहंतों की आशातना से, (2) सिद्धों की आशातना से, (3) आचार्यों की आशातना से, (4) उपाध्यायों की आशातना से, (5) साधुओं की आशातना से, (6) साध्वियों की आशातना से, (7) श्रावकों की आशातना से, (8) श्राविकाओं की आशातना से, (9) देवों की आशातना से, (10) देवियों की आशातना से, (11) इस लोक की आशातना से, (12) परलोक की आशातना से, (13) केवलि-प्रतिपादित धर्म की आशातना से, (14) देव, मनुष्य एवं असुरों सहित लोक की आशातना से, (15) समस्त प्राणी, भूत, जीव एवं सत्त्वों की आशातना से, (16) काल की आशातना से, (17) श्रुत की आशातना से, (18) श्रुतदेव की आशातना से, (19) वाचनाचार्य की आशातना से, (20) सूत्र पाठों को आगे-पीछे बोलने से, (21) एक सूत्र को दूसरे सूत्र के साथ मिलाकर पढ़ने से, (22) अक्षर छोड़ का पढ़ने से, (23) अक्षर बढ़ा कर पढ़ने से, (24) पद छोड़कर पढ़ने से, (25) विनय रहित होकर पढ़ने से, (26) उपयोगहीन होकर पढ़ने से, (27) उदात्तादि स्वरों से रहित पढ़ने से, (28) शिष्य की योग्यता से अधिक सूत्र पाठ पढ़ाने से, (29) बुरे भाव से ज्ञान ग्रहण करने से, (30) अकाल में स्वाध्याय करने से, (31) शास्त्रोक्त काल में स्वाध्याय न करने

से, (32) अस्वाध्याय में स्वाध्याय करने से, तथा (33) स्वाध्याय में स्वाध्याय न करने से जो भी अतिचार लगा है उससे मैं पीछे हटता हूं। मेरा वह दुष्कृत मिथ्या हो।

Exposition: Thirty three condemnable activities (asatanayay) are (1) disrespect to arihantas (2) disrespect to siddhas (3) disrespect to acharyas (4) disrespect to upadhyayas (5) disrespect to sadhus (6) disrespect to sadhvis (nuns) (7) disrespect to lay male devotees (8) disrespect to female devotees (9) disrespect to gods (10) disrespect to goddesses (11) disrespect to the present world (loka) (12) disrespect to existence of other (higher and lower) loka (13) disrespect to the word (dharma) of omniscient (14) disrespect to the world wherein gods, human beings and demons reside (15) disrespect to all living beings (one sensed to five sensed) beings (16) disrespect to the time-cycle (17) disrespect to scriptures (18) disrespect to the angel, patron of scriptures (19) disrespect to acharya who explains scriptures (20) reciting lesson in scripture, not in prescribed order (21) to mingle up one aphorism with any other aphorism (22) to miss any word in aphorism (23) to add any word to the aphorism (24) to miss any clause in lesson of scriptures (25) to recite any scriptures not with proper respect or devotion (26) to recite scripture without properly attending to it (27) to recite any scripture not loudly where it has to be read loudly (28) to deliver lesson of scriptures to the pupil more than his capacity (29) to gain scriptural knowledge with evil intentions (30) to study scriptures in prohibited period (31) Not to study scriptures in the period prescribed for it (32) to study scriptures in the time period totally prohibited for that study (33) not to study scriptures in the time period specifically assigned for its study. I feel sorry for any such fault committed by me. May my fault be pardoned.

विवेचन : प्रस्तुत सूत्र में एक प्रकार के असंयम से शुरू करके तेंतीस प्रकार की आशातना पर्यंत अतिचारों/दोषों का प्रतिक्रमण किया गया है। 'असंयम' प्रथम और प्रधान दोष है। इसीलिए सूत्र के प्रारंभ में असंयम को रखा गया है। बंधन, दण्ड, शल्य आदि आगे के पदों में असंयम का ही विस्तार है। असंयम आदि पदों का संक्षिप्त स्वरूप निम्न रूपेण है–

असंयम प्रतिक्रमण : असंयम का अर्थ है–मन और इन्द्रियों पर अनियंत्रण। स्वच्छन्द इन्द्रियों से ही सभी प्रकार के पाप प्रकट होते हैं। इसीलिए असंयम को संसार-भ्रमण का प्रमुख कारण माना गया है। यों तो असंयम के सतरह भेद कहे गए हैं, परन्तु यहां संग्रह नय की अपेक्षा से संकलित किए गए सूत्र में समस्त संयम विरोधी प्रवृत्तियों को 'असंयम' इस एक शब्द में ग्रहण कर लिया गया है।

बंधन प्रतिक्रमण : जो जीव को संसार में बांध कर रखे उसे बन्धन कहा जाता है। यह दो प्रकार का है–राग बन्धन एवं द्वेष बन्धन। समस्त संसारी आत्माएं इन दो बन्धनों में बंधी हुई हैं। राग और द्वेष, ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जहां एक विद्यमान रहेगा वहां दूसरा भी विद्यमान रहेगा। राग-द्वेष को संसार रूपी वृक्ष का बीज कहा गया है। इन बीजों को नष्ट करने के लिए ही सजग साधक इनसे प्रतिक्रमण करता है।

दण्ड प्रतिक्रमण : जिन साधनों से आत्मा दण्डित हो उन्हें दण्ड कहा जाता है। दण्ड तीन प्रकार का है–(1) मनो-दण्ड, (2) वचन-दण्ड, एवं (3) काय-दण्ड। विषय-विकारों के चिन्तन में संलग्न रहने वाला मन, मनोदण्ड है। असत्य, निन्दा, विकथा में प्रवृत्त रहने वाला वचन, वचनदण्ड है। हिंसा, अनाचार, चोरी आदि में प्रवृत्त शरीर, कायदण्ड है।

गुप्ति प्रतिक्रमण : गुप्ति का अर्थ है–गोपन करना। अशुभ प्रवृत्तियों से हटकर शुभ प्रवृत्तियों में संलग्न होना गुप्ति है। गुप्तियां तीन हैं–(1) मनोगुप्ति, (2) वचन गुप्ति, एवं (3) कायगुप्ति। विषयों-विकारों आदि से मन को बचाकर रखना मनोगुप्ति है। निन्दा, चुगली, विकथा आदि से वचन को रक्षित रखना वचन गुप्ति है। हिंसा, अनाचार आदि से शरीर को गोप कर रखना कायगुप्ति है। तीन प्रकार की गुप्तियों में यदि दोष उत्पन्न हुआ है तो साधक प्रतिक्रमण द्वारा उनकी शुद्धि करता है।

शल्य प्रतिक्रमण : शल्य का अर्थ है शूल अर्थात् कांटा। शरीर के किसी भी अंग में यदि शूल चुभ जाए, शूल की नोक शरीर के भीतर ही रह जाए तो वह निरन्तर चुभन पैदा करती रहती है। जब तक वह शूल शरीर में रहती है तब तक व्यक्ति निरन्तर अशान्त रहता है। शरीर में जो चुभन शूल उत्पन्न करती है, आत्मा में वही चुभन उत्पन्न करने वाले तीन बड़े दोष हैं। उन दोषों का नाम है–(1) माया, (2) निदान, एवं (3) मिथ्यादर्शन। आगमीय भाषा में इन्हें शल्य कहा जाता है। माया का अर्थ है–छल-कपट। निदान का अर्थ है–धर्म-साधना के प्रतिफल के रूप में सांसारिक भोगोपभोगों की कामना रखना। मिथ्यादर्शन का अर्थ है–विपरीत श्रद्धा, सत्य को असत्य एवं असत्य को सत्य मानना। ये तीनों शल्य आत्मा को सालते रहते हैं, आत्मा को कदापि शान्ति का अनुभव नहीं करने देते हैं।

गारव/गौरव प्रतिक्रमण : गौरव का अर्थ है–अहंकार। अहं भाव से जीव भारी हो जाता है। इसीलिए इसे गौरव कहा गया है। गौरव तीन प्रकार का है–(1) ऋद्धि गौरव, (2) रस गौरव, एवं (3) साता गौरव। अपनी ऋद्धि-सिद्धि, विद्या, यश, पद आदि का अहंकार करना ऋद्धि गौरव है। दूध, दही, घृत आदि इष्ट रसों की प्राप्ति पर अहंकार करना रस गौरव है। आरोग्य और शारीरिक सुख, तथा मनोज्ञ वस्त्र-पात्र आदि की प्राप्ति पर गर्व करना साता गौरव है।

बंधन, शल्य एवं ध्यान सूत्र

चित्र संख्या 10

चित्र–परिचय – 10

Illustration No. 10

बंधन, शल्य एवं ध्यान सूत्र

(क) बंधन दो प्रकार का है – 1. राग बंधन, 2. द्वेष बंधन। शिष्य, पुत्र, मित्र, स्वजन या किसी भी इष्ट वस्तु के प्रति ममत्व भाव रखना 'राग बंधन' है। किसी भी अप्रिय व्यक्ति या अनिष्ट वस्तु आदि के प्रति द्वेष रखना 'द्वेष बंधन' है।

(ख) शल्य का अर्थ शूल या कांटा है। जो भाव या संकल्प आत्मा में कांटे की भांति चुभ जाए और उसे अनंत संसार में भटकाए उसे शल्य कहा जाता है। शल्य तीन प्रकार का है – 1. माया शल्य – छल-कपट पूर्वक व्यवहार करना। त्याग-तप आदि आध्यात्मिक अनुष्ठानों में भी माया त्याज्य है। मायापूर्वक अधिक तप करने से महाबल को 'स्त्रीत्व' में जन्म लेना पड़ा था। 2. निदान शल्य–त्याग–तप आदि आध्यात्मिक अनुष्ठानों के फल के रूप में लौकिक विषयों-ऋद्धियों की प्राप्ति का संकल्प करना। 3. मिथ्या दर्शन शल्य–जिनदेव के मार्ग के विरुद्ध श्रद्धा प्ररूपणा करना।

(ग) किसी वस्तु या विषय पर एकाग्रचित्त होना ध्यान है। यह चार प्रकार का है – 1. आर्त्तध्यान – यह निराशा से प्रकट होता है। इसमें इष्ट वस्तु के संयोग और अनिष्ट वस्तु के वियोग की कामना होती है। 2. रौद्र ध्यान – इसमें ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध और अहंकार की प्रधानता होती है। 3. धर्मध्यान – इसमें सरलता, मृदुता आदि धर्मभावों में चित्त की एकाग्रता रहती है। 4. शुक्ल ध्यान – आत्मा के ज्ञान, दर्शन आदि विशुद्ध भावों में रमण करना शुक्ल ध्यान है।

Sutras of Bondage, Sting, Meditation

(A) Bondage has been said of two types :- 1. Attachment bondage, 2. Aversion bondage. To keep proprietory interest in the disciple, son, friend, kith and kin or in any favourable object is called attachement bondage. To have hatred towards any unloving person or undesired object is called aversion bondage.

(B) Shalya means a sting or a thorn. Any such feelings and resolve that pierces like a thorn into the soul and to leads astray into this infinite world is called Shalya. Shalyas are said to be of three types :- 1. Sting of deceit - To behave deceitfully. Even in the observation of austerity and renunciation deception is totally prohibited. In observing, austerity in large amount deceitfully 'Mahabala' had to reincarnated as a womenhood, 2. - Nidan Shalya - Resolving to obtain mundane prosperity and wealth as a fruit of ones performed activities of austerity, renunciation, restraint and propiation of spirituality, 3. - Sting of false perception - To propound faith against the tenants and principle propounded by Jin Deva.

(C) To get concentrated on any object or matter is called meditation. It is of four types :- 1. Arat Dhyan :- It gets menifested through despondency. In the desire of combination of favourable object and separation of undesirable objects occurs, 2. Raudra Dhyan :- In it the feeling of jealousy, aversion, anger and pride remains, 3. Dharam Dhyan :- In it the concentration of mind remains in the disposition of religion, straight forwardness and simplicity, 4. Shukla Dhyan :- The notion of contemplation into the pure dispositions of knowledge, perception etc. of SELF is called Shukla Dhyan.

गौरव से जीव गुरुता/भारीपन को प्राप्त होकर अनन्त संसार सागर में डूब जाता है। संसार-सागर को तैरने का इच्छुक साधक प्रतिक्रमण द्वारा गौरव से उत्पन्न दोषों का निराकरण करता है।

विराधना प्रतिक्रमण : ज्ञानादि रत्नत्रय की सम्यक् रूप से परिपालना करना आराधना कहलाती है। आराधना का विपरीतार्थक शब्द है– विराधना। विराधना का अर्थ है ज्ञानादि रूप तीन रत्नों का सम्यक् विधि से पालन न करना, उनकी आराधना में दोष लगाना अथवा उनके प्रति उपेक्षा भाव धारण करना। विराधना तीन प्रकार की है–(1) ज्ञान विराधना, (2) दर्शन विराधना, (3) चारित्र विराधना। सावधानी रखते हुए भी रत्नत्रय की आराधना में कभी दोष उत्पन्न हो जाते हैं। उन्हीं की शुद्धि के लिए साधक प्रतिक्रमण द्वारा उक्त दोषों से निवृत्त होता है।

कषाय प्रतिक्रमण : कष का अर्थ है संसार और आय का अर्थ है लाभ। अर्थात् जन्म-मरण रूप संसार की जो वृद्धि करता है उसे कषाय कहते हैं। कषाय चार प्रकार का है–(1) क्रोध, (2) मान, (3) माया, एवं (4) लोभ। ये चारों कषाय आत्मा के शत्रु हैं। ये आत्म-गुणों का वैसे ही हरण कर लेते हैं जैसे किसी असावधान श्रेष्ठी का धन चोर चुरा लेते हैं। साधक आत्मगुणों की रक्षा में सतत सावधान रहता है। इसीलिए वह चार कषायों से प्रतिदिन प्रतिक्रमण करता है।

संज्ञा प्रतिक्रमण : विकार युक्त अभिलाषा/इच्छा को संज्ञा कहते हैं। संज्ञाएं चार हैं, यथा–(1) आहार संज्ञा, (2) भय संज्ञा, (3) मैथुन संज्ञा, एवं (4) परिग्रह संज्ञा। आहार जीवन की प्राथमिक आवश्यकता है। प्रत्येक जीव में आहार संज्ञा विद्यमान रहती है। आहार के प्रति तीव्र आसक्ति, अमर्यादित और अनार्य भोजन विकृत आहार की श्रेणी में आते हैं जिनका त्याग साधक के लिए अनिवार्य है। भय भी प्राणिमात्र में रहता है। परन्तु साधु अभय की साधना द्वारा भय पर विजय प्राप्त कर लेता है। ब्रह्मचर्य की अखण्ड साधना द्वारा साधु मैथुन से मुक्त रहता है। पंचम महाव्रत के रूप में वह परिग्रह का त्याग करता है। कदाचित् संज्ञा संबंधी दोष की उत्पत्ति हो जाती है तो श्रमण प्रतिक्रमण द्वारा आत्मशुद्धि कर लेता है।

विकथा प्रतिक्रमण : विकार उत्पन्न करने वाली कथा-कहानी, चर्चा-वार्ता को विकथा कहा जाता है। विकथा चार प्रकार की है, यथा–

(1) **स्त्रीकथा**–स्त्रियों की वेश-भूषा, रहन-सहन, खान-पान, अंगोपांग आदि की चर्चा करना स्त्रीकथा है।

(2) **भत्तकथा**–भोजन-संबंधी कथा।

(3) **देश कथा**–विभिन्न देशों के विविध प्रकार के रहन-सहन, वेश-विन्यास, साज- शृंगार, खान-पान, शिल्पादि की चर्चा करना।

(4) **राजकथा**–राजनीति, राजाओं के ऐश्वर्य, विलास, युद्ध आदि से संबंधित कथा करना।

उपरोक्त चारों प्रकार की कथाएं साधु के लिए वर्जित हैं। उक्त कथाओं के किन्हीं संदर्भों से यदि वैराग्य का पक्ष पुष्ट होता है तो वैराग्यशील साधु इनका संक्षिप्त उल्लेख/कथन कर सकता है। यहां प्रमाद या मोहवश की गई विकथाओं का प्रतिक्रमण किया गया है।

ध्यान प्रतिक्रमण : किसी एक पदार्थ पर अथवा ध्येय पर चित्तवृत्तियों को एकाग्र करना ध्यान है। आर्त्त और रौद्र–ये दो ध्यान अप्रशस्त एवं धर्म और शुक्ल–ये दो ध्यान प्रशस्त हैं।

(1) **आर्त्तध्यान**–इष्ट वस्तु के वियोग एवं अनिष्ट वस्तु के संयोग से मन में उत्पन्न होने वाला दुख, शोक, पीड़ा का भाव।

(2) **रौद्र ध्यान**–क्रूरता पूर्ण मानसिक चिन्तन रौद्र ध्यान कहलाता है।

(3) **धर्म ध्यान**–अरिहन्त-प्ररूपित प्रवचन के चिन्तन में चित्तवृत्तियों का एकाग्र होना धर्मध्यान है।

(4) **शुक्ल ध्यान**–शुभ-श्वेत, निष्कलंक, निष्कर्म आत्मध्यान में तल्लीन रहना शुक्ल ध्यान कहलाता है।

प्रथम दो ध्यानों का यदि प्रमादवश चिन्तन किया हो एवं अंतिम दो ध्यानों का चिन्तन-आराधन न किया हो तो उससे उत्पन्न दोष की निवृत्ति हेतु साधु प्रतिक्रमण करता है।

क्रिया प्रतिक्रमण : प्रमुख रूप से क्रिया के दो भेद हैं–प्रशस्त क्रिया एवं अप्रशस्त क्रिया। आत्मा को आध्यात्मिक उन्नति की दिशा में ले जाने वाली समस्त क्रियाएं प्रशस्त हैं एवं अवनति की दिशा में ले जाने वाली समस्त क्रियाएं अप्रशस्त हैं। यहां क्रिया के अप्रशस्त स्वरूप का प्रतिक्रमण किया गया है। अप्रशस्त क्रिया के संक्षिप्त शैली के अनुसार पांच भेद हैं, यथा–

(1) **कायिकी क्रिया**–शरीर के द्वारा होने वाली क्रियाओं को कायिकी क्रिया कहा जाता है।

(2) **आधिकरणिकी क्रिया**–अस्त्र, शस्त्र आदि को अधिकरण कहते हैं। उनके निर्माण एवं उपयोग से उत्पन्न होने वाली समस्त पापजनक क्रियाएं आधिकरणिकी क्रिया के अंतर्गत आती हैं।

(3) **प्राद्वेषिकी क्रिया**–ईर्ष्या, द्वेष आदि अकुशल परिणामों से उत्पन्न होने वाली पापमयी प्रवृत्तियों को प्राद्वेषिकी क्रिया कहा जाता है।

(4) **पारितापनिकी क्रिया**–स्व या पर को परिताप उत्पन्न करने वाली क्रिया पारितापनिकी क्रिया कहलाती है।

(5) **प्राणातिपातिकी क्रिया**–प्राणियों की हिंसा से निष्पन्न होने वाली क्रिया प्राणातिपातिकी क्रिया कहलाती है।

काम-गुण प्रतिक्रमण : काम अर्थात् वासना को विकसित करने वाले शब्द, रूप, गंध, रस एवं स्पर्श की कामगुण संज्ञा है। इन पांचों विषयों में भटके हुए मन की शुद्धि के लिए साधक प्रतिक्रमण करता है।

महाव्रत प्रतिक्रमण : नव कोटि सहित अंगीकार की गई प्रतिज्ञा को महाव्रत कहते हैं। तीन करण (करना, कराना एवं अनुमोदन करना) को तीन योग (मन, वचन, काय) से गुणन करने पर नव कोटि का स्वरूप निर्मित होता है। पांच महाव्रतों के नाम हैं–(1) **अहिंसा,** (2) **सत्य,** (3) **अस्तेय,** (4) **ब्रह्मचर्य,** एवं (5) **अपरिग्रह।** साधु हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य एवं परिग्रह–इन पांच महादोषों का मन से, वचन से एवं काय से न स्वयं सेवन करता है, न दूसरों को सेवन करने की प्रेरणा देता है, एवं सेवन करने वालों को अच्छा भी नहीं मानता है। महाव्रत-प्रतिक्रमण से तात्पर्य है–यदि उक्त महाव्रतों के पालन में कोई दोष लगा है तो उससे मैं पीछे लौटता हूं।

समिति प्रतिक्रमण : पांच महाव्रत मूलगुण कहलाते हैं। उन मूलगुणों का जो पोषण और संरक्षण करती हैं उन्हें समिति कहा जाता है। पांच समितियां साधु के उत्तरगुण कहलाती हैं। समिति का शाब्दिक अर्थ है–शास्त्रोक्त सम्यक् प्रवृत्ति। पांच समितियों का स्वरूप इस प्रकार है–

(1) **ईर्या समिति**–युग प्रमाण (चार हाथ प्रमाण) भूमि का अवलोकन करते हुए गमन करना, जिससे किसी प्राणी की हिंसा न हो।

(2) **भाषा समिति**–विवेक पूर्वक हित-मित एवं सत्य वचन बोलना।

(3) **एषणा समिति**–गोचरी के 42 एवं मांडले के 5, ऐसे 47 दोषों को टालकर भिक्षा का ग्रहण एवं उपयोग करना।

(4) **आदान-भाण्ड मात्र निक्षेपणा समिति**–उपयोग में आने वाले वस्त्र, पात्र, पुस्तक, तृण आदि को विवेकपूर्वक उठाना एवं रखना।

(5) **परिष्ठापनिका समिति**—शरीर से उत्पन्न होने वाले मल, मूत्र, कफ, नख, केश आदि का विवेकपूर्वक जीवरहित स्थान पर त्याग करना।

इन पांच समितियों की उचित आराधना में यदि कोई दोष लगता है तो साधक "पडिक्कमामि पंचहिं समिईहिं" इस सूत्र द्वारा उस दोष की शुद्धि करता है।

जीव निकाय प्रतिक्रमण : जीव का अर्थ है—प्राणी और निकाय का अर्थ है—राशि अथवा समूह। छह ऐसी राशियां/निकाय हैं जिनके अन्तर्गत समस्त जीवों का समावेश हो जाता है। उन छह निकायों के नाम हैं—पृथ्वी, पानी, तेज (अग्नि), वायु, वनस्पति एवं त्रस। पृथ्वी ही जिन जीवों का शरीर है उन्हें पृथ्वीकाय कहा जाता है। इसी प्रकार क्रमशः जिन जीवों का शरीर अप्, तेजस्, वायु, एवं वनस्पति है, उन्हें अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक एवं वनस्पतिकायिक जीव कहा जाता है। इन पांचों निकायों के जीव स्थावर कहलाते हैं। ये स्थावर इसलिए कहलाते हैं क्योंकि इन जीवों में स्वेच्छा से एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन करने की योग्यता नहीं होती है। छठी जीव निकाय का नाम है—त्रस। त्रस प्राणियों में दो इन्द्रिय वाले, तीन इन्द्रिय वाले, चार इन्द्रिय वाले एवं पांच इन्द्रिय वाले समस्त जीवों का अन्तर्भाव हो जाता है।

साधु द्वारा इन छहों जीवनिकायों में से किसी भी प्राणी की यदि हिंसा हो जाती है, या किसी जीव को कष्ट उत्पन्न हो जाता है तो साधु उस दोष के परिष्कार के लिए 'जीवनिकाय प्रतिक्रमण' करता है।

लेश्या प्रतिक्रमण : विचार की शुभाशुभ तरंगों को लेश्या कहा जाता है। लेश्याएं छह हैं—

(1) **कृष्ण लेश्या**—अत्यन्त कलुषतापूर्ण मनोवृत्ति वाले जीवों के यह लेश्या होती है। ऐसे मनुष्य अत्यन्त क्रूर एवं निर्दय होते हैं। स्वयं के क्षुद्र-से लाभ के लिए दूसरों के बड़े से बड़े अहित कर डालते हैं। इहलोक-परलोक का उन्हें किंचित् भी चिन्तन नहीं होता है।

(2) **नील लेश्या**—इस लेश्या वाले जीव ईर्ष्यालु-मायावी एवं रसलोलुप होते हैं। प्रथम की अपेक्षा इस लेश्या वाले जीवों की क्रूरता किंचित् कम होती है।

(3) **कापोत लेश्या**—इस लेश्या वाले जीव में चिन्तन का सूक्ष्म अंश जन्म लेता है। परन्तु उसकी वैचारिक कठोरता के समक्ष उसका वह चिन्तन दबा रहता है। इसलिए यह लेश्या भी अप्रशस्त है।

(4) **तेजोलेश्या**—यह प्रशस्त लेश्या है। इस लेश्या वाला व्यक्ति स्वयं के साथ-साथ दूसरों के सुख का भी चिन्तन करता है। विनम्रता, करुणा, परोपकार वृत्ति इस लेश्या के लक्षण हैं।

(5) **पद्मलेश्या**–यह श्रेष्ठ लेश्या है। इस लेश्या वाला व्यक्ति अपने आचार, विचार और वाणी के द्वारा सर्वत्र सद्गुणों की सुगन्ध बिखेरता है।

(6) **शुक्ल लेश्या**–शुक्ल का अर्थ है श्वेत। इस लेश्या वाला व्यक्ति शुभ्र-श्वेत (राग-द्वेष रहित) भावों में रमणशील रहता है। स्वयं तो किसी को कष्ट पहुंचाता ही नहीं, स्वयं को कष्ट पहुंचाने वालों पर भी मैत्रीभाव धारण करता है।

उपरोक्त छह लेश्याओं में से प्रथम तीन हेय एवं अंतिम तीन उपादेय हैं।

भय-स्थान प्रतिक्रमण : साधु अभय की साधना करता है। वह स्वयं अभय होता है और सभी को अभय का दान देता है। अभय का दाता होने से वह सदैव भय से मुक्त रहता है। फिर भी कभी मोहनीय कर्म के उदय से भय का भाव उसके हृदय में उत्पन्न हो जाए तो वह प्रतिक्रमण द्वारा उससे उत्पन्न दोष का निराकरण कर देता है। भय के स्थान सात हैं, यथा–

(1) **इहलोक भय**–सजातीय प्राणियों से उत्पन्न होने वाला भय। जैसे मनुष्य को मनुष्य से, पशु को पशु से होने वाला भय।

(2) **परलोक भय**–दूसरी जाति अथवा गति के प्राणियों से होने वाला भय। जैसे मनुष्य को भूत-प्रेतों-देवों से तथा सर्प, बिच्छु आदि प्राणियों से भय होता है।

(3) **आदान भय**–धन आदि की सुरक्षा हेतु चोर-डाकुओं से डरना।

(4) **अकस्मात् भय**–अकारण भयभीत हो जाना।

(5) **आजीविकाभय**–आजीविका संबंधी भय।

(6) **मरण-भय**–मृत्यु संबंधी भय।

(7) **अश्लोक भय**–अपयश की आशंका से उत्पन्न होने वाला भय।

मद-स्थान प्रतिक्रमण : मद का अर्थ है–अहंकार। अहंकार से अनेक दोषों की उत्पत्ति होती है। अहंकारी व्यक्ति दूसरों के अपमान में आनंद मानता है। साधक अहंकार से सर्वथा दूर रहता है। अहं का कोई कण आत्मा को दूषित न करे इस हेतु वह प्रतिक्षण सावधान रहता है। कदाचित् अहं का कोई कण उसकी आत्मा को दूषित करता है तो वह उसके लिए प्रतिक्रमण करता है।

मद आठ प्रकार का है –

(1) **जाति मद**–ऊंची जाति का अहंकार।

(2) **कुल मद**–ऊंचे कुल का अभिमान। (मातृपक्ष की जाति एवं पितृपक्ष की कुल संज्ञा है।)

(3) **बल मद**–शारीरिक शक्ति का अहंकार।

(4) **रूप मद**–रूप-सौन्दर्य का अहंकार।

(5) **तप मद**–'मैं बड़ा तपस्वी हूं' ऐसा अभिमान करना।

(6) **श्रुत मद**–विद्वत्ता का अहं।

(7) **लाभ मद**–इच्छित वस्तु का लाभ होने पर अभिमान करना।

(8) **ऐश्वर्य मद**–प्रभुत्व का घमण्ड।

ब्रह्मचर्य गुप्ति प्रतिक्रमण : ब्रह्म (आत्मा) में चर्या (रमण)–शील होना ब्रह्मचर्य है। साधु मैथुन का सर्वथा त्यागी होता है। ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए वह नव-विध गुप्तियों का पूरी सावधानी से पालन करता है। गुप्ति का अर्थ है–गोपन/रक्षण करना। गुप्ति को बाड़ भी कहते हैं। जिस प्रकार किसान फसल वाले खेत की बाड़ से रक्षा करता है, वैसे ही साधक अपने अमूल्य ब्रह्मचर्य व्रत की नौ प्रकार की बाड़ों से रक्षा करता है। ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियों/बाड़ों का स्वरूप इस प्रकार है–

(1) **विविक्त-वसति-सेवन**–जहां पर स्त्री, पशु एवं नपुंसक का वास हो, वहां नहीं ठहरना।

(2) **स्त्री-कथा-परिहार**–स्त्री-संबंधी कथाओं एवं स्त्रियों से हंसी-मजाक का त्याग करना।

(3) **निषद्यानुपवेशन**–जिस स्थान पर स्त्री बैठी हो, उसके उठ जाने के बाद भी दो घड़ी तक उस स्थान पर न बैठना।

(4) **स्त्री-अंगोपांग-अदर्शन**–स्त्री के अंग-उपांगों को नहीं देखना।

(5) **कुड्यान्तर-शब्द-श्रवणादि-वर्जन**–दीवार या कपाट आदि के पीछे से स्त्रियों के मनोहर शब्द, गीत, हास्य, रोदन आदि को न सुनना।

(6) **पूर्व-भोग-अस्मरण**–दीक्षा से पूर्व सेवित भोगों का स्मरण न करना।

(7) **प्रणीत-भोजन-त्याग**–शरीर में विशिष्ट बल एवं इन्द्रियों में चंचलता उत्पन्न करने वाले गरिष्ठ भोज्य पदार्थों का त्याग करना।

(8) **अतिमात्रा-भोजन-त्याग**–रूखा-सूखा भोजन भी अधिक मात्रा में न खाना।

(9) **विभूषा-परिवर्जन**–शरीर के शृंगार का त्याग करना।

श्रमणधर्म प्रतिक्रमण : आगम में वर्णित जिन धर्मों को आत्मसात् करते हुए साधु आत्मविकास की यात्रा करता है उन्हें श्रमण-धर्म कहा जाता है। श्रमण-धर्म निम्नोक्त दस प्रकार का है–

आठ मद स्थान

चित्र संख्या 11

आठ मद स्थान

जिस प्रकार मद-मस्त हाथी सभी सुरक्षा-साधनों को तोड़कर उधम मचाता है तथा अपने स्वामी का एवं स्वयं अपना अहित करता है वैसे ही जाति, कुल, बल, रूप, तप, श्रुत, लाभ और ऐश्वर्य के मद से आविष्ट हुआ साधक, जिनेन्द्र-प्ररूपित मर्यादाओं को तो भंग करता ही है स्वयं अपनी आत्मा का भी अहित करता है। जाति-कुल आदि के अहंकार से उसे निम्न जाति-कुल में उत्पन्न होना पड़ता है। इसी प्रकार बल और रूप के मद से उसे भवांतर में निर्बल और कुरूप देह की प्राप्ति होती है। तप और श्रुत के मद से उसे भविष्य में तप के अयोग्य देह और मंद मस्तिष्क की प्राप्ति होती है। लाभ और ऐश्वर्य के अहंकार स्वरूप उसका भविष्य अलाभ और दारिद्र्य युक्त हो जाता है।

एक से लेकर आठवें चित्र तक आठ मदों के स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है। इन मदों से साधक को सदैव दूर रहना चाहिए।

Eight Places of Pride

Just as the intoxicated elephant uproars breaking all the safety measures and injures his master and himself so does the practiser intoxicating through the pride of caste, clan, power, beauty, austerity, wisdom, gain and wealth not only transgresses the limits propounded by Jinendra but injure his soul also. He has to reincarnate in the low profile households being proud of caste and clan etc. In the same manner being proud of power and beauty in his next birth obtains an ugly and weak state, intoxicated by the pride of austerity and wisdom (shrut) he gets the physique unworthy of austerity and a weak brain in future. Being proud of gain and wealth his future becomes of worthless and full of poverty.

From illustration one to eighth the mode of eight prides has been presented the practiser must he aware of these eight prides.

(1) **क्षमा**–क्रोध को जीतकर सतत शान्तभावों को धारण करना।

(2) **मुक्ति**–लोभ पर विजय प्राप्त कर संतोषभाव को धारण करना।

(3) **आर्जव**–छल-कपट का त्याग कर सरलतापूर्वक जीना।

(4) **मार्दव**–मान का मर्दन कर मृदुता को अंगीकार करना।

(5) **लाघव**–लघुता अर्थात् हल्कापन। द्रव्य से वस्त्र-पात्र आदि उपधि तथा भाव से राग-द्वेष आदि के भार से मुक्त रहना।

(6) **सत्य**–सदैव सत्य एवं मधुर वचनों का प्रयोग करना।

(7) **संयम**–समस्त पापजनक प्रवृत्तियों का त्याग करना।

(8) **तप**–बारह प्रकार के तपों की यथाशक्ति आराधना करना, अथवा इच्छाओं-आकांक्षाओं के निरोध में सतत प्रयत्नशील रहना।

(9) **त्याग**–ममता-मूर्च्छा रूप आंतरिक एवं वस्त्र-पात्र आदि बाह्य परिग्रह का त्याग करना।

(10) **ब्रह्मचर्य**–नौ बाड़ों सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य की आराधना करना।

उपरोक्त दस प्रकार के श्रमण-धर्म का यदि उल्लंघन हुआ है तो साधु प्रतिक्रमण द्वारा उत्पन्न दोषों की शुद्धि करता है।

उपासक प्रतिमा प्रतिक्रमण : 'उपासक' शब्द का यहां श्रमणोपासक अर्थात् श्रावक के लिए व्यवहार हुआ है। प्रतिमा शब्द का अर्थ प्रतिज्ञा है। श्रमणोपासक की प्रतिज्ञा उपासक प्रतिमा कहलाती है। प्रतिमाओं की संख्या ग्यारह है जिन की आराधना में साढ़े पांच वर्ष का समय लगता है। प्रतिमाओं का स्वरूप इस प्रकार है–

(1) **दर्शन प्रतिमा**–इस प्रतिमा में अतिचार रहित शुद्ध सम्यक्त्व का पालन किया जाता है। इस प्रतिमा की अवधि एक मास की है।

(2) **व्रत प्रतिमा**–इस प्रतिमा में श्रावक पांच अणुव्रतों एवं तीन गुणव्रतों की विशुद्ध आराधना करता है। इस प्रतिमा की अवधि दो मास की है।

(3) **सामायिक प्रतिमा**–इस प्रतिमा में श्रावक सामायिक एवं देशावकाशिक व्रतों की निर्दोष आराधना करता है। यह प्रतिमा तीन मास की है।

(4) **पौषध प्रतिमा**–इस प्रतिमा का आराधक श्रावक अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्या को प्रतिपूर्ण पौषध करता है। यह प्रतिमा चार मास की है।

(5) **नियम प्रतिमा**–प्रारंभिक चारों प्रतिमाओं का पालन करते हुए श्रावक प्रस्तुत प्रतिमा में दिन में ब्रह्मचर्य का पालन करता है, रात्रि में मैथुन सेवन का परिमाण करता है, स्नान एवं

शृंगार का त्याग करता है, धोती में लांग नहीं देता, रात्रि में आहार-पानी का प्रत्याख्यान करता है, एक मास में न्यूनतम एक रात एवं पांच महीने में पांच रातें धर्म-जागरण में व्यतीत करता है। इस प्रतिमा की अवधि जघन्य एक, दो, तीन दिन एवं उत्कृष्ट पांच मास की है।

(6) **ब्रह्मचर्य प्रतिमा**–इस प्रतिमा में ब्रह्मचर्य की निरतिचार आराधना की जाती है। इसकी अवधि जघन्य एक रात्रि की एवं उत्कृष्ट छह मास की है।

(7) **सचित्त-त्याग प्रतिमा**–इस प्रतिमा में सभी सचित्त वस्तुओं के उपभोग का त्याग किया जाता है। इस प्रतिमा का कालमान जघन्य एक दिन एवं उत्कृष्ट सात मास का है।

(8) **आरंभ-त्याग प्रतिमा**–इस प्रतिमा में आरंभ (हिंसाजन्य) के समस्त व्यापारों का त्याग किया जाता है। इस की अवधि जघन्य एक दिन एवं उत्कृष्ट आठ मास की है।

(9) **प्रेष्य-त्याग प्रतिमा**–इस प्रतिमा में श्रावक दूसरों से भी आरंभ नहीं कराता। इसका कालमान जघन्य एक दिन एवं उत्कृष्ट नौ मास का है।

(10) **उद्दिष्टभक्त-त्याग प्रतिमा**–इस प्रतिमा में श्रावक स्वयं के निमित्त तैयार किए गए आहार-पानी का उपयोग नहीं करता। उस्तरे से सिर के केश काटता है। गृह-संबंधी कार्यों में उपेक्षाभाव रखता है। किसी कार्य के पूछे जाने पर जानता है तो कहता है–जानता हूं, नहीं जानता है तो कहता है, नहीं जानता हूं। इस प्रतिमा की समयावधि जघन्य एक दिन एवं उत्कृष्ट दस मास की है।

(11) **श्रमणभूत प्रतिमा**–इस प्रतिमा में श्रावक साधु के समान आचार का पालन करता है। साधु के समान वेश धारण करके, साधु के योग्य भण्डोपकरण ग्रहण करके भिक्षाचरी करता है। सामर्थ्य है तो केशलुञ्चन करता है अन्यथा उस्तरे से शिरोमुण्डन करता है। इस प्रतिमा की अवधि जघन्य एक दिन-रात्रि की एवं उत्कृष्ट ग्यारह मास की है।

ग्यारहवीं प्रतिमा का धारक श्रावक '**श्रमण सूत्र**' के पाठ से प्रतिक्रमण करता है।

उक्त उपासक प्रतिमाओं की यदि विपरीत प्ररूपणा हुई है तो उससे उत्पन्न दोष की साधु "उपासक प्रतिमा प्रतिक्रमण" द्वारा आत्म-शुद्धि करता है।

भिक्षु-प्रतिमा प्रतिक्रमण : भिक्षु, श्रमण, निर्ग्रन्थ, साधु, मुनि–ये सभी जैन मुनि के लिए व्यवहृत होने वाले पर्यायवाची शब्द हैं। भिक्षु का शाब्दिक अर्थ है–वह साधक जिसका जीवन भिक्षावृत्ति पर आधारित है। मुनि अपने शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कोई उद्योग-व्यवसाय नहीं करता है। अहर्निश साधना में संलग्न रहता है। परन्तु जीवन-निर्वाह के लिए उसे भी अन्न-वस्त्र-पात्र आदि की आवश्यकता होती है। उस आवश्यकता को वह निर्दोष

भिक्षाविधि द्वारा पूर्ण करता है। स्मरण रहे भिक्षाजीवी होते हुए भी श्रमण भिखारी नहीं होता। भिखारी की भिक्षावृत्ति में नियमोपनियमों एवं संतोष के लिए कोई स्थान नहीं होता, वह दीनतापूर्वक गृहस्थों से याचना करता है। इच्छित वस्तु का लाभ होने पर वह दाता की प्रशंसा, और लाभ न होने पर दाता की निन्दा करता है। इसके विपरीत श्रमण की भिक्षाविधि 42 नियमों/मर्यादाओं से सुरक्षित होती है। श्रमण भिक्षा का योग मिलने पर प्रसन्न नहीं होता, योग न मिलने पर निराश नहीं होता। भावपूर्वक भिक्षा देने वाले की वह प्रशंसा नहीं करता और दुत्कारने वाले दाता की निन्दा भी नहीं करता। इस प्रकार भिक्षु भिक्षाजीवी होकर भी भिखारी नहीं होता है।

यहां भिक्षु की 12 प्रतिमाओं का प्रतिक्रमण किया गया है। प्रतिक्रमण से तात्पर्य है–यदि उक्त प्रतिमाओं का मैंने यथाशक्ति आचरण न किया हो, यथारूप श्रद्धा-प्ररूपणा न की हो तो मेरा वह प्रमादजन्य दोष निष्फल हो, उस दोष से मैं पीछे लौटता हूं। बारह प्रतिमाओं का स्वरूप इस प्रकार है–

पहली प्रतिमा–इस प्रतिमा की अवधि एक मास की है। इस प्रतिमा का धारक भिक्षु प्रतिदिन एक दत्ति अन्न एवं एक दत्ति जल ग्रहण करता है। दत्ति का अर्थ है–दाता द्वारा साधु के पात्र में बहराए जाते हुए पदार्थ की धारा जब तक अखण्ड रहे उसे एक दत्ति कहा जाता है। निरन्तर एक मास तक भिक्षु एक दत्ति अन्न एवं एक दत्ति जल से जीवन-निर्वाह करता है।

दूसरी से सातवीं प्रतिमा–प्रथम प्रतिमा की भांति दूसरी से सातवीं प्रतिमा तक, सभी का कालमान एक-एक मास का है। इनमें विशेषता इतनी है कि दूसरी प्रतिमा में अन्न-जल की दो-दो दत्तियां ली जाती हैं। तीसरी प्रतिमा में तीन-तीन दत्तियां, इसी क्रम से सातवीं प्रतिमा में अन्न-जल की सात-सात दत्तियां ली जाती हैं।

आठवीं प्रतिमा–इस प्रतिमा का कालमान सात दिन-रात का है। इसकी आराधना एकान्तर उपवास के साथ की जाती है। गांव के बाहर उत्तानासन, पार्श्वासन अथवा निषद्यासन पूर्वक ध्यान किया जाता है तथा उपसर्गों-परीषहों को समभाव से सहन किया जाता है।

नौवीं प्रतिमा–यह प्रतिमा भी सात अहोरात्रि की है। बेले-बेले की तपस्या करते हुए ग्राम के बाहर दण्डासन, लगंडासन अथवा उत्कटुकासन पूर्वक ध्यान किया जाता है।

दसवीं प्रतिमा–इस प्रतिमा की अवधि भी सात अहोरात्रि की है। साधक तेले-तेले का पारणा करते हुए ग्राम के बाहर गोदुहिकासन, वीरासन अथवा आम्रकुब्जासन में स्थित रहकर ध्यान करता है।

ग्यारहवीं प्रतिमा–एक दिन-रात इस प्रतिमा का कालमान है। चौविहार बेले की आराधना इस प्रतिमा की पूर्वभूमिका है। गांव के बाहर ध्यान मुद्रा में स्थिरतापूर्वक इसे सम्पन्न किया जाता है।

बारहवीं प्रतिमा–यह प्रतिमा एक रात्रि की है। चौविहार तेले की तपस्या के साथ इसकी आराधना की जाती है। गांव के बाहर निर्जन स्थान में दोनों पांवों को संकोच कर, हाथों को घुटनों की ओर फैलाकर, मस्तक को किंचित् झुकाकर, एक पुद्गल पर दृष्टि को अपलक स्थिर रखते हुए ध्यान किया जाता है। इस प्रतिमा में प्राय: देव, मनुष्य अथवा तिर्यंच का उपसर्ग उपस्थित होता है। साधक यदि उपस्थित उपसर्ग का समताभाव से सामना करते हुए प्रतिमा को सम्पन्न करता है तो उसे अवधि, मन:पर्यव अथवा कैवल्य–इन तीनों में से किसी एक ज्ञान की अवश्य उपलब्धि होती है। साधक यदि चलायमान हो जाए तो वह पागल हो जाता है तथा केवलि-प्ररूपित धर्म से भी भ्रष्ट हो जाता है।

क्रिया-स्थान प्रतिक्रमण : क्रिया का अर्थ है कार्य। क्रिया दो प्रकार से की जाती है–ज्ञानपूर्वक और अज्ञानपूर्वक। ज्ञानपूर्वक की जाने वाली क्रिया कर्मों से मुक्ति में सहायक होती है जबकि अज्ञानपूर्वक की जाने वाली क्रिया कर्मबन्ध का कारण बनती है। प्रस्तुत प्रकरण में कर्मबन्धन में हेतुभूत तेरह क्रिया स्थानों का ग्रहण किया गया है। तेरह क्रिया स्थानों का स्वरूप निम्नरूपेण है –

(1) **अर्थदण्ड क्रिया**–अर्थ अर्थात् स्वयं के किसी प्रयोजन की सिद्धि के लिए जीवों की हिंसा करना, कराना और उसका अनुमोदन करना।

(2) **अनर्थदण्ड क्रिया**–बिना किसी प्रयोजन के ही जीवों की हिंसा करना।

(3) **हिंसा-दण्ड क्रिया**–इस आशंका से किसी प्राणी की हिंसा करना कि वह मुझे अथवा मेरे प्रियजनों को कष्ट उत्पन्न करेगा।

(4) **अकस्माद् दण्ड क्रिया**–अचानक हो जाने वाली हिंसा।

(5) **दृष्टि विपर्यास क्रिया**–दृष्टि-भ्रम से होने वाली हिंसा। यथा–अनपराधी व्यक्ति को चोर समझकर दण्ड दे देना।

(6) **मृषा क्रिया**–असत्य बोलना।

(7) **अदत्तादान क्रिया**–चोरी करना।

(8) **अध्यात्म क्रिया**–अशुभ मानसिक संकल्पों/दुर्भावों से उत्पन्न होने वाला पापकर्म।

(9) **मान क्रिया**–अभिमान करना।

(10) **मित्र क्रिया**—स्नेही जनों/मित्रों को दण्डित करना।

(11) **माया क्रिया**—छल-कपट करना।

(12) **लोभ क्रिया**—लोभ करना।

(13) **ऐर्यापथिकी क्रिया**—सयोगी केवली को गमनागमन के निमित्त से लगने वाली सूक्ष्म क्रिया।

भूतग्राम प्रतिक्रमण : भूत का अर्थ है—जीव और ग्राम का अर्थ है—समूह। जीवों का जघन्य एक भेद-चेतना लक्षण है। मध्यम चौदह भेद एवं उत्कृष्ट पांच सौ तिरेसठ भेद हैं। यहां समूह दृष्टि से प्रतिपादित जीव के मध्यम चौदह भेदों के संबंध में श्रद्धा, प्ररूपणा में यदि दोष उत्पन्न हुआ है अथवा इन जीवों में से किसी जीव की विराधना हुई है तो भूतग्राम प्रतिक्रमण द्वारा आत्मशुद्धि की गई है।

चौदह भूतग्रामों/जीव-समूहों की गणना इस प्रकार है—

(1) सूक्ष्म एकेन्द्रिय, (2) बादर एकेन्द्रिय, (3) द्वीन्द्रिय, (4) त्रीन्द्रिय (5) चतुरिन्द्रिय, (6) असंज्ञी पंचेन्द्रिय एवं, (7) संज्ञी पंचेन्द्रिय। इन सातों के पर्याप्त एवं अपर्याप्त, ऐसे कुल चौदह भेद होते हैं।

परमाधार्मिक प्रतिक्रमण : परम+अधार्मिक = अत्यन्त पापी। अथवा अधर्म प्रधान कार्यों में विशेष रुचि रखने वाले। असुरकुमार देवों की एक विशेष जाति के देव 'परमाधार्मिक' कहलाते हैं। वे देव स्वभाव से ही अत्यन्त क्रूर और दूसरों को दुख देकर प्रसन्न होने वाले होते हैं। वे प्रथम, द्वितीय और तृतीय नरक के नारकों को विविध उग्र प्रयोगों-साधकों से मारते-काटते रहते हैं। नारकों का क्रन्दन उन्हें विशेष प्रसन्नता देता है। वे देव 15 प्रकार के हैं। उनकी नामावली इस प्रकार है—

(1) अम्ब, (2) अम्बरीष, (3) श्याम, (4) शबल, (5) रौद्र, (6) उपरौद्र, (7) काल, (8) महाकाल, (9) असिपत्र, (10) धनुःपत्र, (11) कुंभ, (12) बालुक, (13) वैतरणी, (14) खरस्वर, एवं (15) महाघोष।

इन 15 प्रकार के परमाधार्मिक देवों के शास्त्रोक्त स्वरूप में शंका करना, अथवा इन जैसा उग्र आचरण या विचार करना पापोत्पादक है। कदाचित् ऐसा होता है तो साधु प्रतिक्रमण द्वारा उस दोष की शुद्धि कर लेता है।

गाथा षोडषक प्रतिक्रमण : सूत्रकृताङ्ग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह अध्ययनों में कथित श्रमणाचार के विपरीत आचरण एवं विपरीत श्रद्धा-प्ररूपणा से उत्पन्न दोषों को 'गाथा

षोडषक प्रतिक्रमण' द्वारा दूर किया जाता है। सूत्रकृताङ्ग के सोलह अध्ययनों की नामावली इस प्रकार है–(1) स्वसमय-परसमय, (2) वैतालीय, (3) उपसर्ग परिज्ञा, (4) वीर्य परिज्ञा, (5) नरक विभक्ति, (6) वीरस्तुति, (7) कुशील परिभाषा, (8) वीर्य, (9) धर्म, (10) समाधि, (11) मोक्षमार्ग, (12) समवसरण, (13) यथातथ्य, (14) ग्रन्थ, (15) आदानीय, एवं (16) गाथा।

सतरह असंयम प्रतिक्रमण : सतरह प्रकार के असंयम की नामावली इस प्रकार है–(1) पृथ्वीकाय असंयम, (2) अप्काय असंयम, (3) तैजस्काय असंयम, (4) वायुकाय असंयम, (5) वनस्पतिकाय असंयम, (6) द्वीन्द्रिय असंयम, (7) त्रीन्द्रिय असंयम, (8) चतुरिन्द्रिय असंयम, (9) पंचेन्द्रिय असंयम, (10) अजीव असंयम, (11) प्रेक्षा असंयम (सजीव स्थान में उठना-बैठना), (12) उत्प्रेक्षा असंयम (गृहस्थों के पापजनक कार्यों का समर्थन करना) (13) प्रमार्जना असंयम (वस्त्र, पात्र आदि की विधि सहित प्रमार्जना न करना, (14) परिष्ठापना असंयम (बिना देखे-पूंजे परठना), (15) मन असंयम, (16) वचन असंयम, एवं (17) काय अंसयम।

उपरोक्त सतरह प्रकार के असंयम का सेवन किया हो, विपरीत श्रद्धा-प्ररूपणा की हो, तो उससे उत्पन्न दोष की निवृत्ति के लिए प्रतिक्रमण किया जाता है।

अब्रह्म प्रतिक्रमण : अब्रह्मचर्य के अठारह भेद इस प्रकार हैं (1-9) वैक्रिय (देव-देवी संबंधी) शरीर संबंधी भोगोपभोगों का मन, वचन एवं काय से स्वयं सेवन करना, दूसरों से सेवन कराना, एवं सेवन करने वालों का समर्थन करना। इसी प्रकार (10-18) औदारिक शरीर (मनुष्य-तिर्यंच) संबंधी भोगों का मन, वचन, काय से स्वयं सेवन करना, दूसरों से सेवन कराना, एवं सेवन करने वालों का समर्थन करना। इस प्रकार अब्रह्मचर्य के वैक्रिय शरीर संबंधी नौ एवं औदारिक शरीर संबंधी नौ, ऐसे कुल अठारह भेदों का समवायांग सूत्र में कथन किया गया है।

उक्त अठारह प्रकार के अब्रह्म का सेवन, चिन्तन, प्ररूपण किया हो तो उससे उत्पन्न दोषों से मैं पीछे लौटता हूं।

ज्ञाताध्ययन प्रतिक्रमण : अंग आगमों में ज्ञातासूत्र का छठा स्थान है। ज्ञात और धर्मकथा, ये दो इस आगम के श्रुतस्कंध हैं। प्रथम श्रुतस्कंध–ज्ञात के 19 अध्ययन हैं जिनकी नामावली इस प्रकार है–(1) उत्क्षिप्त ज्ञात, (2) संघाट, (3) अण्ड, (4) कूर्म, (5) शैलक, (6) तुम्ब, (7) रोहिणी, (8) मल्ली, (9) माकन्दी, (10) चन्द्रमा, (11) दावद्रव, (12) उदक,

(13) मण्डूक, (14) तेतली, (15) नन्दीफल, (16) अमरकंका, (17) आकीर्ण, (18) सुषमा, (19) पुण्डरीक।

इन उन्नीस अध्ययनों में दृष्टान्तों के माध्यम से संयम में प्रवृत्ति एवं असंयम से निवृत्ति का व्याख्यान हुआ है। उक्त व्याख्यान के अनुसार संयम में प्रवृत्ति और असंयम से निवृत्ति न की हो, अथवा आगम-कथित सिद्धान्तों की विपरीत प्ररूपणा की हो तो उससे उत्पन्न दोष से प्रतिक्रमण करता हूं। यही ज्ञाताध्ययन प्रतिक्रमण का आशय है।

असमाधि-स्थान प्रतिक्रमण : समताभाव में चित्त की स्थिरता को समाधि कहा जाता है। जिस आचार, विचार और वाग्-व्यवहार से समाधिभाव खण्डित हो उसे असमाधि-स्थान कहा जाता है। असमाधि उत्पन्न करने वाले ऐसे स्थानों/कारणों की संख्या बीस है। बीस असमाधि-स्थानों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

(1) अविवेक पूर्वक जल्दी-जल्दी चलना, (2) रात्रि में बिना प्रमार्जन किए गमन करना, (3) बिना उपयोग (तन-मन की एकाग्रता) के प्रमार्जन करना, (4) शास्त्रोक्त मर्यादा से अधिक शय्या-आसन रखना, (5) गुरुओं- पूज्यजनों का अनादर करना, (6) स्थविरों को अपमानित करना, (7) जीवों की घात करना अथवा वैसा विचार करना, (8) बार-बार क्रोध करना, (9) सुदीर्घकाल तक क्रोध को शान्त न करना, (10) पीठ पीछे दूसरों की निन्दा-चुगली करना, (11) शंका-स्पद विषयों में पुनः पुनः निश्चयात्मक भाषा बोलना, (12) प्रतिदिन क्लेश करना, (13) जिन भूलों-अपराधों के लिए परस्पर क्षमापना कर ली गई है, पुनः उन भूलों को दोहराकर क्लेश को उत्पन्न करना, (14) अकाल में स्वाध्याय करना, (15) सचित्त रज से लिप्त हाथों से आहार करना अथवा सचित्त रज से लिप्त पांवों सहित आसन-शय्या पर उठना-बैठना, (16) प्रहर रात्रि व्यतीत होने पर ऊंचे स्वर से बोलना, (17) गच्छ में फूट डालना, (18) दुर्वचनों से गण को दुख पहुंचाना, (19) दिन भर खाते-पीते रहना, एवं (20) साधु के लिए अकल्पनीय/अनेषणीय आहार-पानी का उपभोग करना।

उपरोक्त 20 असमाधि-स्थानों का प्रमादवश सेवन किया हो तो उससे उत्पन्न दोषों की निवृत्ति के लिए प्रतिक्रमण करता हूं।

शबलदोष प्रतिक्रमण : साधु के लिए सर्वथा त्याज्य दोषों को शबल दोषों में परिगणित किया गया है। शबल दोषों के सेवन से साधु का चारित्र मलिन होकर नष्ट हो जाता है। शबल दोषों का क्रमिक विवरण इस प्रकार है-

(1) हस्त-कर्म करना, (2) मैथुन सेवन करना, (3) रात्रि-भोजन करना, (4) आधाकर्मी

(साधु के लिए बनाया हुआ आहार) ग्रहण करना, (5) राजपिण्ड (राजाओं के लिए बनाया हुआ बलवर्द्धक आहार) का उपभोग करना, (6) औद्देशिक (साधु के उद्देश्य से बनाया हुआ, खरीदा हुआ, उधार लेकर बनाया हुआ, निर्बल से छीना हुआ, अथवा उपाश्रय में लाकर दिया हुआ) आहार ग्रहण करना, (7) ग्रहण किए हुए प्रत्याख्यान को पुनः पुनः भंग करना, (8) छह मास की अवधि में गण बदल लेना, (9) एक महीने में तीन बार नदी पार करना, (10) एक महीने में तीन बार माया-छल-कपट करना, (11) शय्यातर (जिसके घर में अथवा जिसकी आज्ञा लेकर उपाश्रय आदि में निवास किया है) के घर से भिक्षा लेना, (12) जानकर-समझकर हिंसा करना, (13) जानकर-समझकर झूठ बोलना, (14) जानकर-समझकर चोरी करना, (15) जानकर-समझकर सचित्त पृथ्वी या शिला पर बैठना, (16) सचित्त पीठ-फलक आदि पर बैठना या कायोत्सर्ग करना, (17) जानते-समझते हुए कन्द, मूल, फूल, बीज आदि का आहार करना, (18) एक वर्ष में दस बार नदी पार करना, (19) एक वर्ष में दस बाद छल-कपट करना, (20) जानते हुए-समझते हुए भी सचित्त जल से लिप्त हाथ, कड़छी या कटोरी से आहार लेना, (21) जानबूझ कर सचित्त पृथ्वी, बीज, हरित, कीड़ियों के बिल, मकड़ी के जाले, नीलन-फूलन वाले स्थान पर बैठना या कायोत्सर्ग करना।

उपरोक्त 21 दोषों के सेवन से साधु का संयम चितकबरा अथवा बदरंग हो जाता है। इन दोषों के सेवन की कल्पना से भी साधु को सावधान रहना चाहिए। साधना में संपूर्ण सावधानी हेतु ही साधु शबलदोष प्रतिक्रमण करता है।

परीषह प्रतिक्रमण : साधना-मार्ग में उपस्थित होने वाली बाधाओं को परीषह कहा जाता है। साधु का एकमात्र लक्ष्य मोक्ष-पथ पर आगे बढ़ना होता है। स्वभावतः मानव का मन सुख-प्रिय होता है। परन्तु सुख-प्रियता साधना-मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है। वहां तो कदम-कदम पर कष्टों को समताभाव से गले लगाना होता है। साधना-मार्ग में उपस्थित होने वाली ऐसी बाधाओं को 22 बोलों में संग्रहीत किया गया है। वे बावीस बोल/परीषह इस प्रकार हैं-

(1) भूख, (2) प्यास, (3) सर्दी, (4) गर्मी, (5) दंशमशक (डांस-मच्छरों द्वारा काटा जाना), (6) अचेल (वस्त्रों के न मिलने पर होने वाला कष्ट), (7) अरति (कष्टों से पीड़ित होकर संयम के प्रति होने वाली उदासीनता), (8) स्त्री, (9) चर्या (विहार आदि में गमन संबंधी कष्ट), (10) नैषेधिकी (स्वाध्याय भूमि में उपस्थित होने वाले कष्ट), (11) शय्या (अनुकूल उपाश्रय न मिलने पर होने वाला कष्ट), (12) आक्रोश (किसी द्वारा क्रोध किए जाने पर उत्पन्न होने वाला मानसिक खेद), (13) वध (मिथ्यात्वियों द्वारा साधु को मारना-

पीटना अथवा वध कर देना), (14) याचना, (15) अलाभ, (16) रोग, (17) तृण-स्पर्श, (18) जल्ल-मल (शरीर पर धूल-पसीना आदि जमना), (19) सत्कार-पुरस्कार (पूजा-प्रतिष्ठा भी साधु के लिए परीषह है। उससे अहंकार के उत्पन्न होने की संभावना होती है।), (20) प्रज्ञा, (21) अज्ञान, एवं (22) दर्शन परीषह।

उपरोक्त प्रतिकूल-अनुकूल परीषहों में साधु को समताभाव धारण करना चाहिए।

सूत्रकृतांग-अध्ययन प्रतिक्रमण : सूत्रकृतांग सूत्र के दो श्रुतस्कंध हैं। प्रथम श्रुतस्कंध में सोलह एवं द्वितीय श्रुतस्कंध में सात अध्ययन हैं। प्रथम श्रुत-स्कंध के सोलह अध्ययनों के नाम 'गाथा षोडषक प्रतिक्रमण' में दिए जा चुके हैं। द्वितीय श्रुतस्कंध के सात अध्ययनों के नाम इस प्रकार हैं –

(1) पुण्डरीक, (2) क्रियास्थान, (3) आहार परिज्ञा, (4) प्रत्याख्यान क्रिया, (5) आचारश्रुत, (6) आर्द्रकुमार, (7) नालंदीय। पूर्वोक्त 16 एवं यहां प्रस्तुत 7 अध्ययनों में साध्वाचार का विशद वर्णन है। तदनुसार आचरण न करने से, विपरीत प्ररूपणा करने से जो दोष उत्पन्न होते हैं उनके निवारण के लिए 'सूत्रकृतांग-अध्ययन प्रतिक्रमण' किया जाता है।

देव प्रतिक्रमण : देवों की 24 जातियां हैं, जैसे कि–10 प्रकार के भवनपति देव, 8 प्रकार के वानव्यंतर देव, 5 प्रकार के ज्योतिषिक देव एवं एक प्रकार के वैमानिक देव। देवों के पास भौतिक सुख-समृद्धि के अक्षय भण्डार हैं। साधक द्वारा उन सुखों की आकांक्षा करना अथवा उन से घृणा करना, ये दोनों ही स्थितियों कर्म को उत्पन्न करने वाली हैं। दिव्य सुखों के प्रति साधक निरपेक्ष भाव रखता है। कदाचित् उनके प्रति राग-द्वेष उत्पन्न हो तो वह 'देव-प्रतिक्रमण' के द्वारा आत्मशुद्धि कर लेता है।

कहीं-कहीं 24 प्रकार के देवों के स्थान पर 'देव प्रतिक्रमण' में 24 तीर्थंकरों का भी ग्रहण किया गया है[1]। तदनुसार ऋषभदेव से महावीर पर्यंत चौबीस जिनदेवों की आशातना आदि से उत्पन्न दोषों की निवृत्ति के लिए 'देव प्रतिक्रमण' किया जाता है।

भावना प्रतिक्रमण : साधु के पांच महाव्रत हैं–(1) अहिंसा, (2) सत्य, (3) अस्तेय, (4) ब्रह्मचर्य, एवं (5) अपरिग्रह। इन पांच महाव्रतों की शुद्धि और सुरक्षा के लिए 25 भावनाओं की सम्यक् आराधना की जाती है। 25 भावनाओं का स्वरूप इस प्रकार है–

अहिंसा महाव्रत की 5 भावनाएं

(1) ईर्यासमिति, (2) मनोगुप्ति, (3) वचनगुप्ति, (4) आलोकित पान-भोजन (अच्छी

1. आचार्य शान्तिसूरि ने 24 तीर्थंकरों को ग्रहण किया है।

तरह देख कर तथा प्रकाशयुक्त स्थानों में आहार का उपभोग करना), (5) आदान भण्डमात्र निक्षेपणा समिति।

सत्य महाव्रत की 5 भावनाएं

(1) अनुविचिन्त्य भाषणता (विचार पूर्वक बोलना), (2) क्रोध त्याग, (3) लोभ-त्याग, (4) भय त्याग, एवं (5) हास्य त्याग।

अस्तेय महाव्रत की 5 भावनाएं

(1) स्वामी की आज्ञा लेकर निर्दोष उपाश्रय का सेवन करना, (2) आज्ञा लेकर तृण-काष्ट आदि का अवग्रह ग्रहण करना, (3) पीठ-फलक आदि उपकरणों के लिए वृक्ष आदि को नहीं काटना, (4) साधारण पिण्ड का मर्यादापूर्वक उपयोग करना, (5) साधुओं की सेवा-भाक्ति करना।

ब्रह्मचर्य महाव्रत की 5 भावनाएं

(1) स्त्री, पशु, नपुंसक से रहित स्थान में रहना, (2) स्त्री-कथा न करना, (3) स्त्री के अंगोपांगों को नहीं देखना, (4) दीक्षा-पूर्व भोगे गए भोगों को स्मरण नहीं करना, एवं (5) नित्य सरस भोजन नहीं करना।

अपरिग्रह महाव्रत की 5 भावनाएं

(1) मनोज्ञ शब्द पर राग एवं अमनोज्ञ शब्द पर द्वेष भाव नहीं धारण करना, बल्कि तटस्थ भाव में रहना, (2-5) इसी प्रकार मनोज्ञ-अमनोज्ञ रूप, रस, गंध एवं स्पर्श के प्रति तटस्थ रहना। साधु को इन पच्चीसों भावनाओं का सतत स्मरण-आराधन करना चाहिए। कदाचित् इनकी आराधना में दोष उत्पन्न हो तो 'भावना प्रतिक्रमण द्वारा आत्मशुद्धि कर ले।

दशा-कल्प-व्यवहार उद्देशनकाल प्रतिक्रमण : दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र के दस, बृहत्कल्प सूत्र के छह एवं व्यवहार सूत्र के दस—इन 26 उद्देशकों में वर्णित साध्वाचार के अनुरूप आचरण, व्याख्यान एवं प्ररूपण न करने से, तथा इनके पठन काल में व्यतिक्रम करने से जो दोष उत्पन्न होता है उसकी निवृत्ति के लिए 'दशाकल्प व्यवहार उद्देशन काल प्रतिक्रमण' किया जाता है।

अनगार गुण प्रतिक्रमण : अनगार/साधु के सत्ताईस गुण हैं। इन गुणों के अभाव में साधु साधना-पथ से पतित हो जाता है। इन गुणों की आराधना में साधु को सदैव जागरूक और प्रयत्नशील रहना चाहिए। कदाचित् इन गुणों की आराधना में स्खलना हो जाए तो 'अनगार गुण प्रतिक्रमण' के द्वारा आत्म-शुद्धि कर लेनी चाहिए। 27 गुणों का स्वरूप इस प्रकार है—

(1-5) अहिंसा आदि पांच महाव्रतों की सम्यक् आराधना करना, (6-10) पांच इन्द्रियों का निग्रह करना, (11-14) चार कषायों का त्याग करना, (15) भाव सत्य (वैचारिक शुद्धि), (16) करण सत्य (भण्डोपकरणों की उपयोगपूर्वक प्रतिलेखना करना), (17) योग सत्य (मन-वचन-काय को सत्य में स्थापित करना), (18) क्षमा, (19) विरागता, (20) मन: समाहरणता (मन की अशुभ व्यापार से निवृत्ति), (21) वचन समाहरणता (वचन की अशुभ व्यापार के निवृत्ति), (22) काय समाहरणता (शरीर की अशुभ व्यापार से निवृत्ति), (23) ज्ञान सम्पन्नता, (24) दर्शन संपन्नता, (25) चारित्र संपन्नता, (26) वेदनाध्यासनता (उपसर्गों और परीषहों से उत्पन्न वेदना को समभावपूर्वक सहना), एवं (27) मारणान्तिकाध्यासनता (मारणान्तिक कष्ट आने पर एवं मृत्यु का अवसर उपस्थित होने पर भी समताभाव में लीन रहना।)

आचार प्रकल्प प्रतिक्रमण : आचार के स्वरूप एवं आचार में उत्पन्न दोषों की निवृत्ति तथा आत्मशुद्धि की विधियां जिस आगम में प्रतिपादित हों उसे आचार प्रकल्प कहा जाता है। प्रस्तुत संदर्भ में 'आचार' शब्द से प्रथम अंगागम आचारांग सूत्र का ग्रहण हुआ है। 'प्रकल्प' शब्द से आचारांग सूत्र के चूलिका निशीथ सूत्र का ग्रहण हुआ है। आचारांग सूत्र के 25 अध्ययनों एवं निशीथ सूत्र के तीन अध्ययनों में श्रमणाचार के विधि-निषेधों तथा आत्मशुद्धि के हेतुभूत प्रायश्चित्त के विधि-विधानों का विशद वर्णन हुआ है। इन 28 अध्ययनों में वर्णित आचार के विपरीत यदि श्रद्धा, आचरण एवं प्ररूपणा में कोई अतिचार लगता है तो 'आचार प्रकल्प प्रतिक्रमण' द्वारा आत्मशुद्धि की जाती है। 28 आचार प्रकल्पों की नामावली इस प्रकार है-

(1) शस्त्र परिज्ञा, (2) लोक विजय, (3) शीतोष्णीय, (4) सम्यक्त्व, (5) लोकसार, (6) धूताध्ययन, (7) महापरिज्ञा, (8) विमोक्ष, (9) उपधान श्रुत, (10) पिण्डैषणा, (11) शय्या, (12) ईर्याध्ययन, (13) भाषा, (14) वस्त्रैषणा, (15) पात्रैषणा, (16) अवग्रह प्रतिमा, (17) सप्त स्थानादि सप्तैकिकाध्ययन, (18) नैषेधिकीसप्तैकिकाध्ययन, (19) उच्चार-प्रस्त्रवणसप्तैकिकाध्ययन, (20) शब्दसप्तैकिकाध्ययन, (21) रूप सप्तैकिकाध्ययन, (22) परक्रियासप्तैकिकाध्ययन, (23) अन्योन्यक्रियाक्रियासप्तैकिकाध्ययन, (24) भावना, (25) विमुक्ति, (26) उद्घात, (27) अनुद्घात, (28) आरोपण।

जैन धर्म दिवाकर आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज ने समवायांग सूत्र के आधार पर आचार-प्रकल्प के भेद इस प्रकार किए हैं-

1. एक महीने की आरोपणा।

2. एक महीने और 5 दिन की आरोपणा।
3. एक महीने और 10 दिन की आरोपणा।
4. एक महीने और 15 दिन की आरोपणा।
5. एक महीने और 20 दिन की आरोपणा।
6. एक महीने और 25 दिन की आरोपणा।
7. दो महीने की आरोपणा।
8. दो महीने और 5 दिन की आरोपणा।
9. दो महीने और 10 दिन की आरोपणा।
10. दो महीने और 15 दिन की आरोपणा।
11. दो महीने और 20 दिन की आरोपणा।
12. दो महीने और 25 दिन की आरोपणा।
13. तीन महीने की आरोपणा।
14. तीन महीने और 5 दिन की आरोपणा।
15. तीन महीने और 10 दिन की आरोपणा।
16. तीन महीने और 15 दिन की आरोपणा।
17. तीन महीने और 20 दिन की आरोपणा।
18. तीन महीने और 25 दिन की आरोपणा।
19. चार महीने की आरोपणा।
20. चार महीने और 5 दिन की आरोपणा।
21. चार महीने और 10 दिन की आरोपणा।
22. चार महीने और 15 दिन की आरोपणा।
23. चार महीने और 20 दिन की आरोपणा।
24. चार महीने और 25 दिन की आरोपणा।
25. उपघातिकी आरोपणा।
26. अनुपघातिकी आरोपणा।
27. कृत्स्ना आरोपणा।
28. अकृत्स्ना आरोपणा।

पापश्रुत प्रसंग प्रतिक्रमण : पाप के हेतुभूत विषयों का जिन ग्रन्थों में वर्णन हो, उन्हें पापश्रुत कहा जाता है। पापश्रुत का अध्ययन, अध्यापन एवं अभ्यास 'पापश्रुत प्रसंग' है। श्रमण के लिए पापश्रुत का अध्ययन, श्रवण, प्ररूपण निषिद्ध है। कदाचित् प्रमादवश पापश्रुत के प्रति साधु के मन में अकर्षण उत्पन्न हो जाए तो वह 'पापश्रुत प्रतिक्रमण' द्वारा आत्मशुद्धि कर ले।

पापश्रुत उनतीस प्रकार का है, यथा–(1) भौम, (2) उत्पात, (3) स्वप्नशास्त्र, (4) अन्तरिक्ष, (5) अंग-शास्त्र, (6) स्वर शास्त्र, (7) व्यंजनशास्त्र, (8) लक्षण शास्त्र। सूत्र, वृत्ति एवं वार्तिक के भेद से ये आठ शास्त्र चौबीस प्रकार के होते हैं। (25) विकथानुयोग, (26) मंत्रानुयोग, (27) विद्यानुयोग, (28) योगानुयोग, एवं (29) अन्यतीर्थिकानुयोग।

महामोहनीय स्थान प्रतिक्रमण : आठ कर्मों में मोहनीय कर्म सबसे प्रबल है। जीव जितने भी दुष्कर्म करता है उनके मूल में 'मोह' की प्रधानता रहती है। प्रबल मोह के वशीभूत होकर संचित की गई कर्मराशि / कर्मरज को 'महामोहनीय कर्म' कहा जाता है। महामोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति 70 कोटाकोटि सागरोपम की है। तीस कारणों से जीव महामोहनीय कर्म का बंध करता है। वे तीस कारण इस प्रकार हैं –

(1) त्रस जीवों को पानी में डुबो कर मारना।

(2) सिर पर चमड़ा आदि लपेटकर त्रस जीवों की हत्या करना।

(3) श्वास नलिका या मुंह दबा कर जीवों की हत्या करना।

(4) धुएं के प्रयोग से दम घोंटकर जीवों को मारना।

(5) मस्तक पर प्रहार करके क्रूरता पूर्वक जीवों का वध करना।

(6) विश्वासघात करके हत्या करना।

(7) ग्रहण की हुई प्रतिज्ञा को भंग करना एवं छिपकर अनाचार का सेवन करना।

(8) दूसरों पर झूठे कलंक लगाना।

(9) सत्य जानते हुए भी सभा में मिश्रभाषा बोलना।

(10) अपने स्वामी की स्त्री और धन को हड़प लेना।

(11) बालब्रह्मचारी न होते हुए भी बाल-ब्रह्मचारी कहलाना।

(12) ब्रह्मचारी न होते हुए स्वयं को ब्रह्मचारी घोषित करना।

(13) आश्रय देने वाले के धन को हड़प लेना।

(14) उपकारी के उपकार को भुला कर उसके साथ कृतघ्नता करना।

(15) रक्षक, सेनापति या शास्ता की हत्या कर देना।

(16) राजा, नगरसेठ आदि को मार देना।

(17) लोकप्रिय नेता को मार देना।

(18) संयमी को संयम से भ्रष्ट कर देना।

(19) केवलज्ञानी की निन्दा करना।

(20) मोक्ष-मार्ग से जनता को विमुख करना।

(21) ज्ञान दाता गुरुजनों को अपमानित करना, उनकी निन्दा करना।

(22) आचार्य, उपाध्याय आदि संघ प्रमुख की सेवा-भक्ति न करना।

(23) बहुश्रुत न होते हुए भी स्वयं को बहुश्रुत कहना, कहलवाना।

(24) तपस्वी न होते हुए भी स्वयं को तपस्वी कहना, कहलवाना।

(25) समर्थ होते हुए भी स्वयं के आश्रित रोगी, तपस्वी आदि की सेवा न करना।

(26) ज्ञान-दर्शन-चारित्र से पतित करने वाली विकथाएं पुनः पुनः करना।

(27) जादू-टोना करना, कराना।

(28) प्रत्यक्ष में भोगों की निन्दा करना, परोक्ष में भोगों का सेवन करना।

(29) देवताओं की ऋद्धि, समृद्धि आदि का उपहास उड़ाना।

(30) देव-दर्शन न होने पर भी कहना कि मुझे देव-दर्शन होता है।

उपरोक्त तीस दुराचरणों में यदि किंचित् भी रुचि उत्पन्न हुई हो तो साधक को प्रतिक्रमण द्वारा आत्मशुद्धि कर लेनी चाहिए।

सिद्ध गुण प्रतिक्रमण : वैदिक परम्परा में जिन्हें 'निर्गुण ब्रह्म' कहा जाता है, जैन परम्परा में उन्हें सिद्ध कहा जाता है। सिद्ध यानी जिन्होंने समस्त आत्मगुणों को साध लिया है आठ कर्मों की 31 प्रकृतियों से सर्वथा निर्लिप्त एवं सिद्धि-स्थान में विराजित जीव सिद्ध कहलाते हैं। सिद्धों में अनन्त गुण होते हैं। 31 बोलों में उन अनन्त गुणों को संकलित किया गया है। 31 गुणों का स्वरूप इस प्रकार है –

(1) क्षीण-मतिज्ञानावरण, (2) क्षीण-श्रुतज्ञानावरण, (3) क्षीण-अवधि-ज्ञानावरण, (4) क्षीण-मन:पर्यवज्ञानावरण, (5) क्षीण-केवलज्ञानावरण, (6) क्षीण-चक्षुदर्शनावरण, (7) क्षीण-अचक्षुदर्शनावरण, (8) क्षीण-अवधिदर्शनावरण, (9) क्षीण-केवलदर्शनावरण, (10) क्षीण-निद्रा, (11) क्षीण-निद्रानिद्रा, (12) क्षीण-प्रचला, (13) क्षीण-प्रचलाप्रचला, (14) क्षीण-स्त्यानगृद्धि, (15) क्षीण-सातावेदनीय, (16) क्षीण-असातावेदनीय, (17) क्षीण-दर्शन मोहनीय, (18) क्षीण-चारित्रमोहनीय, (19) क्षीण-नैरयिकायु, (20) क्षीण-तिर्यंचायु,

(21) क्षीण-मनुष्यायु, (22) क्षीण-देवायु, (23) क्षीण-शुभनाम कर्म, (24) क्षीण-अशुभनाम कर्म, (25) क्षीण-उच्च गोत्र, (26) क्षीण-नीच गोत्र, (27) क्षीण-दानान्तराय, (28) क्षीण-लाभान्तराय, (29) क्षीण-भोगान्तराय, (30) क्षीण-उपभोगान्तराय, (31) क्षीण-वीर्यान्तराय।

उपरोक्त सिद्ध-गुणों में श्रद्धा न करने से, विपरीत प्ररूपणा करने से महान दोष की उत्पत्ति होती है। साधु को तदर्थ सजग रहना चाहिए। भूलवश ऐसा हो जाए तो 'सिद्ध गुण प्रतिक्रमण' द्वारा आत्मशुद्धि करनी चाहिए।

योग संग्रह प्रतिक्रमण : बत्तीस प्रकार के योग संग्रह का स्वरूप इस प्रकार है –

(1) **आलोचना**–गुरुजनों के समक्ष अपने दोषों की आलोचना करना।

(2) **निरपलाप**–किसी की आलोचना सुनकर दूसरों के समक्ष प्रकट नहीं करना।

(3) **दृढ़धर्मिता**–उपसर्गों में भी दृढ़ता पूर्वक धर्मपथ पर डटे रहना।

(4) **अनिश्रितोपधान**–दूसरों की सहायता की अपेक्षा नहीं रखते हुए तप करना।

(5) **शिक्षा**–अध्ययन-अध्यापन की कलाओं और शिक्षाओं का अभ्यास करना।

(6) **निष्प्रतिकर्मता**–शारीरिक शृंगार नहीं करना।

(7) **अज्ञातता**–पूजा-प्रतिष्ठा की भावना से ऊपर उठकर गुप्त तप करना।

(8) **अलोभता**–लोभ का परिहार करना।

(9) **तितिक्षा**–समभाव से कष्टों को सहना।

(10) **आर्जव**–सरलभाव धारण करना।

(11) **शुचि**–सत्य एवं संयम की पवित्रता रखना।

(12) **सम्यग्दृष्टिता**–सम्यक्त्व की विशुद्धि।

(13) **समाधि**–मानसिक स्वास्थ्य एवं एकाग्रता।

(14) **आचारोपगत**–पंचविध आचार का निरतिचार पालन करना।

(15) **विनयोपगत**–विनम्रभाव धारण करना।

(16) **धृति-मति**–धैर्य रखना।

(17) **संवेग**–मोक्ष की अभिलाषा रखना।

(18) **प्रणिधि**–माया का त्याग करना।

(19) **सुविधि**–श्रेष्ठ अनुष्ठान में संलग्न रहना।

(20) **संवर**–आस्रव-द्वारों को रोकना।

(21) **आत्मदोषोपसंहार**—अपने दोषों का उपसंहार करना।

(22) **सर्वकाम विरक्तता**—काम-भोगों से विरक्त होना।

(23) **प्रत्याख्यान**—मूल गुणों की शुद्ध आराधना करना।

(24) **प्रत्याख्यान**—उत्तरगुणों की शुद्ध आराधना करना।

(25) **व्युत्सर्ग**—शारीरिक ममता का त्याग करना।

(26) **अप्रमाद**—प्रमाद नहीं करना।

(27) **लवालव**—समाचारी के पालन में सतत सावधान रहना।

(28) **ध्यान संवरयोग**—धर्म-शुक्ल रूप शुभ ध्यानों की आराधना करना।

(29) **उदए मारणन्तिए**—मारणान्तिक कष्ट के समय भी अधीर न होना।

(30) **संग-त्याग**—संग का त्याग करना।

(31) **प्रायश्चित्त करण**—दोषों की निवृत्ति के लिए प्रायश्चित्त लेना।

(32) **आराहणा य मरणंते**—शारीरिक और काषायिक क्षीणता के लिए संलेखना करना।

उपरोक्त 32 योग संग्रहों की समुचित आराधना न की हो, उससे उत्पन्न दोष की निवृत्ति 'योग संग्रह प्रतिक्रमण' के द्वारा की जाती है।

आशातना प्रतिक्रमण : सम्यग्दर्शन आदि मोक्ष के साधनों को जो नष्ट करे उसे आशातना कहते हैं। श्रेष्ठ आत्माओं, सर्वज्ञ प्रणीत सिद्धांतों आदि की आशातना से जीव क्लिष्ट कर्मों का संचय कर लेता है। फलस्वरूप सद्गुणों से पतित होकर वह अनन्त संसार सागर में डूब जाता है। आशातना के तेंतीस भेद इस प्रकार हैं—

(1) **अरिहंतों की आशातना**—कर्म रूपी शत्रुओं का हनन करने वाले अरिहंत कहलाते हैं। आत्मकल्याण का अनुष्ठान संपन्न कर अरिहंत देव विश्वकल्याण के लिए धर्मचक्र का प्रवर्तन करते हैं। संसार-वन में भटक रहे भव्य जीवों को अरिहंत सन्मार्ग/मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं। इसलिए अरिहंत देव अनन्त उपकारी हैं। ऐसे अनन्त उपकारी अरिहंतों की सर्वज्ञता में संदेह करना, उन द्वारा प्ररूपित सिद्धांतों में दोष निकालना, उनके चौंतीस अतिशयों और पैंतीस वचनातिशयों को कपोल-कल्पित बताना, अरिहंतों की आशातना है।

(2) **सिद्धों की आशातना**—अष्ट कर्मों से विमुक्त, लोकाग्र में स्थित अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख सम्पन्न आत्माएं सिद्ध कहलाती हैं। सिद्धों के अस्तित्व को नकारना, 'शरीर के अभाव में सुख कैसा' ऐसा सोचना एवं कहना, सिद्धों की आशातना है।

(3) **आचार्यों की आशातना**—पंचाचार का स्वयं पालन करने वाले एवं चतुर्विध संघ को

तैंतीस आशातना सूत्र – 1

चित्र संख्या. 12

तैंतीस आशातना सूत्र – 2

चित्र संख्या 13

चित्र-परिचय – 13 | Illustration No. 13

तैंतीस आशातना सूत्र

आशातना का अर्थ है—अवज्ञा या अनादर करना। प्रत्येक भव्यात्मा का यह सहज दायित्व है कि वह आत्म-विकास के निम्नतम तल पर जी रहे एकेन्द्रिय जीव से लेकर आत्म-विकास के सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित अरिहंतों और सिद्ध भगवंतों तक—किसी भी जीव की अवज्ञा या अनादर न करे। कदाचित् उससे आशातना हो भी जाए तो वह "तैंतीस आशातना प्रतिक्रमण सूत्र" के स्मरण द्वारा उक्त आशातना से उत्पन्न दोषों का प्रक्षालन कर ले। विगत दो पृष्ठों पर अरिहंत प्रभु की आशातना से लेकर अस्वाध्याय पर्यंत तैंतीस आशातनाओं के स्वरूप को हृदयंगम कर भव्यात्माओं को उनसे स्वयं को सुरक्षित रखना चाहिए।

Thirty Three Ashatana Sutra

Ashatana means disrespect—not to follow the order. It is the duty of every worthy person that he should not show disrespect to any living being—right from spiritually best developed one-sensed being upto highest spiritually developed person the Arihantas and liberated souls. In case inadvertently any disrespect occurs, he should reach the aphorism of repentance for thirty three activities involving disrespect. In the last two pages, the thirty three ashatanas starting from disrespect to Arihantas upto non-study of scriptures has been mentioned. In the illustrations, the ashatanas have been depicted the worthy person should keep them in mind and safeguard themselves from such deviations.

पंचाचार का उपदेश-अनुशासन प्रदान करने वाले को आचार्य कहा जाता है। आचार्य की आज्ञाओं की अवहेलना करना, उनके अनुशासन को अस्वीकार करना आदि आचार्यों की आशातना है।

(4) **उपाध्यायों की आशातना**–संघ में ज्ञान-दान का प्रभार उपाध्याय के स्कन्धों पर होता है। उपाध्याय द्वारा प्रदत्त वाचनाओं में दोष निकालना, उनका समुचित सत्कार न करना, उन्हें अल्पश्रुत कहना, आदि उपाध्यायों की आशातना है।

(5) **साधुओं की आशातना**–संयमी साधुओं को ढोंगी कहना, उनके आचार का उपहास करना आदि, साधुओं की आशातना है।

(6) **साध्वियों की आशातना**–साध्वियों का सम्मान न करना, स्त्री होने के कारण उन्हें कलह-क्लेश का मूल मानना, स्त्रियां सर्वविरति नहीं हो सकती, उन्हें मोक्ष नहीं हो सकता, इत्यादि अनर्गल बातें कहना साध्वियों का अपमान है।

(7-8) **श्रावकों-श्राविकाओं की आशातना**–साधु-साध्वियों की भांति श्रावक-श्राविकाएं भी तीर्थ हैं। साधु-साध्वियों के लिए उन्हें 'अम्मा-पियरो' कहा गया है। साधना-पथ पर चलते हुए श्रावक-श्राविकाएं भी सिद्धि का वरण करते हैं। श्रावकों-श्राविकाओं के प्रति ऐसा कहना कि–कोई गृहस्थ व्रतों का पालन नहीं कर सकता, गृहस्थ के लिए मोक्ष असंभव है आदि, तथा श्रावक-धर्म को पाखण्ड बताना, श्रावकों को अपमानित करना, आदि श्रावकों-श्राविकाओं की आशातना है।

(9) **देवताओं की आशातना**–देवों और देवलोकों के अस्तित्व को कपोल-कल्पना कहना, देवों की ऋद्धि को नकारना आदि देवों की आशातना है।

(10) **देवियों की आशातना**–देवों की तरह ही देवियों के बार में भी चिंतन-कथन करना, देवियों की आशातना है।

(11) **इहलोक आशातना**–इहलोक के संबंध में शास्त्रोक्त सिद्धांतों को नकारना, ब्रह्म अथवा अण्डे से उसकी उत्पत्ति मानना, इहलोक आशातना है।

(12) **परलोक आशातना**–मनुष्य की अपेक्षा से मनुष्यगति इहलोक है, देव गति, नरक गति एवं तिर्यंच गति– परलोक हैं। इहलोक को ही सत्य मानना, देव आदि गतियों के अस्तित्व को नहीं मानना, पूर्वजन्म-पुनर्जन्म को कपोल-कल्पनाएं कहना, 'परलोक आशातना' है।

(13) **केवलि-प्ररूपित धर्म की आशातना**–केवली भगवान् द्वारा प्ररूपित सिद्धांतों को न मानना, उनका उपहास करना 'केवलि-प्ररूपित धर्म की आशातना है।

(14) **सदेव-मनुष्य-असुरलोक की आशातना**—देवलोक, मनुष्यलोक एवं असुरलोक के संबंध में आगम-विरुद्ध श्रद्धा-प्ररूपणा करना, 'सदेव-मनुष्य-असुरलोक आशातना' है।

(15) **सर्व प्राण-भूत-जीव-सत्त्वों की आशातना**—प्राण, भूत, जीव एवं सत्त्व—ये चारों शब्द पर्यायवाची हैं। कुछ आचार्यों[1] ने इन चारों शब्दों के अन्तर्गत विभिन्न जीवों को इस प्रकार चिन्हित किया है—

दो इन्द्रिय वाले, तीन इन्द्रिय वाले एवं चार इन्द्रिय वाले सभी त्रस जीव प्राण कहलाते हैं। पृथ्वीकाय आदि के जीव भूत कहलाते हैं। 'जीव' शब्द संसार के समस्त प्राणियों के लिए व्यवहृत होता है। संसारी और मुक्त—समस्त जीवों की 'सत्त्व' संज्ञा है।

उक्त प्राण-भूत-जीव एवं सत्त्वों के संबंध में मिथ्या धारण रखना, इन्हें कष्ट पहुंचाना इनकी आशातना है।

(16) **काल की आशातना**—उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी स्वरूप कालचक्र की सत्ता को अस्वीकार करना, अथवा काल को ही सर्वेश्वर आदि स्वरूपों में मानना काल की आशातना है।

(17) **श्रुत की आशातना**—आगमज्ञान श्रुत कहलाता है। श्रुत के प्रति श्रद्धा न होना, उसे सर्वज्ञोक्त न मानना आदि श्रुत की आशातना है।

(18) **श्रुतदेवता की आशातना**—श्रुत के मूल उद्‌गम तीर्थंकर हैं। तीर्थंकर के श्रीमुख से सुने हुए उपदेश को गणधर सूत्रबद्ध करते हैं, अत: तीर्थंकर एवं गणधर मूलरूप से श्रुत-देवता हैं। श्रुतकेवली, शासन अधिष्ठात्री देवी, सरस्वती देवी एवं सोलह विद्यादेवियां श्रुतदेवताओं में परिगणित होते हैं।

(19) **वाचनाचार्य की आशातना**—संघ के साधु-साध्वियों को वचना देने वाले को वाचनाचार्य कहते हैं। वाचनाचार्य की वाचना शैली में दोष निकालना, उन्हें अबहुश्रुत कहना, उनका उचित सम्मान न करना, वाचनाचार्य की आशातना है।

(20-33) **'जंवाइद्धं'** से लेकर **'सज्झाइए न सज्झाइय'**, इन पदों का स्वरूप 'ज्ञान के अतिचारों' के पाठ में बताया जा चुका है।

आत्म-कल्याण के अभिप्सु साधक को उपरोक्त तेंतीस आशातनाओं से बचना चाहिए। प्रमादवश, भूलवश अथवा अज्ञानवश कदाचित् आशातना हो जाए तो 'आशातना प्रतिक्रमण' के द्वारा उत्पन्न दोष का निराकरण कर लेना चाहिए।

---

1. आचार्य जिनदास महत्तर एवं आचार्य हरिभद्र सूरि।

Explanation : In this aphorism, the repentance has been expressed starting from non-restraint and culminating in fourth relating to thirty three types of disobedience. Non-restraint is the first and primary fault. So, it has been mentioned in the beginning. In the aphorism thereafter namely bondage, faults and thorns etc., non-restraint is described in detail. The brief nature of non-restraint and the like is under:—

Pratikarman of non-restraint: Non-restraint means lack of control of kind and sense organs. All the sins arise from uncontrolled senses. So non-restrained is considered the primary cause of wanderings in the mundane world. Non-restraint is of 17 types. Here, however, all activities opposite to restraint are collectively covered in non-restraint.

Repentance of bondage: What keeps the soul in worldly fetters is called bondage. It is of two types—bondage of attachment and bondage of hatred. All the mundane souls are in these two bondages. Attachment and hatred are the two sides of the same coin. Where one of them exists, the second one also exists. Attachment and hatred are called seeds of the tree of worldly whirlpool. In order to destroys these seeds. The awakened practiser performs pratikraman (repentance or atonement).

Repentance of bad state: The acts that cause harm to the self are called punishment (dand). It is of three types (1) mental harm, (2) oral harm and (3) physical harm. When the mind is engaged in amorous activities, it is called mental harm. To engage in loose talk, in condemnation of others or in false version is oral harm. To engage in violence, bad behaviour, theft and the like is physical harm.

Repentance of preservations (gupti): Gupti means to control. To divert from bad activity and to engage in good activity is called gupti. Guptis are three—(1) preservation of mind, (2) preservation of speech, (3) preservation of intention to act physically. To restrain the mind from engaging in sensual activities is preservation of mind. To restrain the self from engaging in condemnation of others, loose talk, backbiting and the like is preservation of speech. To restrain the body from engaging in violence bad conduct and the like is restraint of the body. In case, the practitioner has committed any fault in practice of the said three types of preservations, he through repentance cleans his self.

Repentance of Shalya: Shalya means thorn. When a thorn pricks any part of the body or any part of the thorn remains in the body, it causes pain continuously. The person remains impatient till the thorn remains in his body. Just as the thorn

causes pain in the body, there are three major faults that disturb the mind. They are (1) deceit (2) desire of particular award (3) wrong vision. In scriptural language, they are called shalya. Maya means deceit, Nidan means to have a desire of worldly award in lieu of any religious practice. Wrong vision mean wrong perception or wrong faith. To believe what is in fact true as false or to believe what is false as true. All the said three thorns disturb the soul. They do not allow it to remain in peace.

Repentance for pride: Gaurav means pride. A human being feels elated with pride. So it is called gaurav. Pride is of three types (1) Pride for wealth (2) Pride for beauty (3) Pride for comforts. Pride for wealth is to become proud of one's riches success, fame, post and the like. To feel elated when one gets juicy things such as milk, curd, ghee is called pride for taste or comfort. Such persons never remain in peace. To feel happy when one enjoys good health, comforts and dresses of his liking is called pride worldly enjoyments.

As a result of such pride the person remains drowned in worldly ocean. One who wants to cross the worldly ocean, removes through repentance the faults created by such pride.

Repentance for disobedience: To practice properly right knowledge and the like is proper practice. Disobedience is the antonymn of proper practice. It means not to practice properly the three jewels namely right faith, right knowledge and right conduct. To be indifferent towards, them is called disobedience (viradhana). It is of three types—(1) Indifference towards right knowledge, (2) Indifference towards right perception, (3) Indifference towards right conduct. Sometime even practicing directly one commits some fault. In order to purify the self, he performs repentance.

Repentance of Passions: 'Kash' means world. 'Aya' means income. So passion (Kashaya) is that act which increases worldly wanderings. Passion is of four forms—(1) anger, (2) ego, (3) deceit and (4) greed. The said four are enemies of the soul. They wipe out the virtues of the self in the same manner as thief steals the wealth of a non-vigilant rich person. The practitioner remains vigilant towards safety of good qualities in the soul. So he daily repents for any deviation concerning passions.

Repentance for desires (SANJYA): A sensual desire is called sanjya. Such desires are four—(1) Desire for food, (2) Feeling of fear, (3) Desire for sex, (4) Desire for attachment to collections. The primary need in life is that of food. It is present in every living being. Deep attachment for food, consumption without any restraint and to consume prohibited food fall in the category of disturbed food. It is

essential for the practitioner to discard such food. Fear also exists in every living being. But a monk through practice of fearlessness, overcomes sense of fear. Through continuous practice of celibacy, he overcomes feeling of cohabitation. He discards attachment by undertaking the fifth major vow. In cure any fault is committed in such practice, he purifies his self through shraman pratikraman (prescribed version of repentance for monks)

Repentance for loose talk (Vikatha): To recite a story that generates feeling of sex or to discuss such story is called loose talk. It is of four types:

(1) *Talk about women :* To talk about dresses, food, body structure of women is loose talk about women.

(2) *Loose talk about food :* **To talk about different items of food and their taste.**

(3) *Look talk about countries :* To talk about way of living of the people of different countries, their dresses, their industries and the like.

(4) *Loose talk about administration:* To talk about the political administration the lusty life of rulers, the wars and the like.

A monk should avoid above-said four talks. In case such talk has a reference towards non-attachment, the learned monk can in brief make a mention of it. The repentance is done about any act done in a state of slackness or a state of delusion.

Repentance for meditation : To concentrate the self on any substance or goal is called meditation. It can be good or bad.

(1) *Painful concentration :* The state of trouble, dejection or pain arising out of loss or separation of a denied substance or presence of a substance which one does not like.

(2) *Wicked concentration :* Dreadful concentration of the mind.

(3) *Righteous concentration :* Concentration of the mind on the word of the omniscient.

(4) *Pure concentration :* To concentrate deeply on pure, spotless soul devoid of karma.

In case due to any slackness. I may have engaged in the first two concentrations and ignored the last, I repent for the faults arising out of such a state.

Self-analysis and repentance about activities : Pertinent activity is of two types namely good activity and a bad activity. The entire activity that leads the soul

to spiritually developed direction is called good activity while the activity leading one to malign state is called bad activity. Here repentance is done about engagement in bad activity. In brief the bad activity is of five types:

(1) Wicked man's readiness to hurt others: the activity done by the body is called this activity (kayiki kriya)

(2) Having weapons of causing hurt (adhikarniki kirya): the weapons are called adhukaran. All the sinful activities arising out of preparation and use of such weapons are in the category of Adhikarniki kirya.

(3) Pradveshiki kirya: any thing which may accuse others. Such a tendency arises out of jealousy, hatred and the like.

(4) Paritapaniki kirya: any thing which may cause mental pain to oneself or others.

(5) Pranatipatiki kirya: depriving another of vitalities. It is generated by violence.

Repentance of contemplation engaged in sensual objects : The words, sight, smell, taste or touch that generate sensual desire is called contemplation engaged in sensual objects. In order to purify the mind disturbed by the said five senses, the practitioner resorts to self-analysis and repentance.

Self-analysis and repentance relating to major vows : The vow undertaken with nine forms of restraints is called major vow. When three doings (doing, getting done and supporting what is done) is multiplied with three organs (yogas namely mind, word and action) it results in nine forms. Five major vows are (1) non-violence, (2) truth, (3) non-stealing, (4) celibacy and (5) non-attachment. A monk does not commit five faults of violence, falsehood, stealing, non-celibacy and attachment himself mentally, orally and physically. Further he does not get such faults committed and does not even support commitment of such faults. The gist of repentance relating to major vows is that in case while practicing major vows any fault is committed, I withdraw from the same.

Repentance for lack of care: Five major vows are called fundamental qualities. The carefulness that nurtures and safe-guards them is called samiti. Samiti means conduct accoding to scriptures (agams). The nature of five carefulnesses is as under:

(1) *Proper care in walking (Iriya samiti) :* One should move looking at the ground upto 4 cells so that no violence is caused to any living being.

(2) *Proper care in speaking :* To utter with proper discrimination. The language should be polite, brief and true one.

(3) *Proper care in collecting and consuming food :* Forty two faults of collecting food and five faults relating to the manner of consumption should be avoided.

(4) *Carefulness in lifting and laying :* The clothes, pots, books and the like which are in use should be lifted and placed with proper care.

(5) *Carefulness in disposal of excreta :* The dirt, urine, discharge of nostrils, nails, hair, stool should be disposed of with proper case at a place free from living being.

In case any fault is committed in practice of the said five categories of carefulness, the practitioner repents for the same by reciting 'padikkamami panchahan samihihin' and in this manner discards his faults.

Repentance relating to class of living being: Jiva means living being, Nikaya means collection. In six collections all the living beings are summed up. The said six collections are earth bodied, water-bodied, fire-bodied, air-bodied vegetation-bodied living being and mobile living beings. The living beings whose body is only the earth are called earth bodied beings. Similarly the body of the respective living being is water, fire, air and vegetation and they are called water bodied, fire-bodied, air-bodied and plant-bodied living beings. The livings beings of these five classes are called immobile (Sthavar) beings. They are called sthavar because they cannot move about of their own from one place to another. The sixth class is of mobile living being. This category includes all the two-sensed, three-sensed, four-sensed and five sensed living beings.

In case a monk causes violence to a living being of any of the said six categories or causes trouble to any one, he in order to remove the effect of that fault repents for it.

Repentance for Leshya (paints and thought colour) : Good and bad thought waves are called leshya. They are six in number:

1. *Black thought colour (leshya):* This leshya is found in the living beings who have extremely condemnable nature. Such persons are extremely cruel and devoid of compassion. They cause very great harm to others even for negligible selfish gain. They think little about present life and the next life.

2. *Blue thought colour :* The living being of this thought colour (leshya) are jealous, deceitful and prone to mundane enjoyments. The cruelty in these living being is a little less then the one in these mentioned at number one.

3. *Pigeon like thought colour :* In the living beings of this leshya, a subtle stage of contemplation appears. But due to the rigidity in thoughts, his contemplation remains subdued. So this leshya is also not good.

4. *Yellow thought colour :* This leshya is good. The person,of this thought colour thinks of the welfare of others also while thinking of his own happiness. Humility, compassion, welfare of others are the symptoms of this leshya.

5. *Padma thought colour :* This is a very good leshya. The person of this nature spreads the fragrance of his good conduct, good contemplation and noble talk all around.

6. *White thought colour :* Shukla means white. The person of this leshya is devoid of attachment and hatred. His contemplation is crystal clear. He does not cause any harm to others. He has a feeling of compassion even for those who cause harm to him.

Among the above six thought colours (leshya), the first three are worthy to be discarded and the last three should be practiced.

Repentance about the state of fear : A monk practices fearlessness. He is himself free from fear and grants freedom from fear to others. Since he grants freedom from fear to others, he always remains liberated from fear. Even then sometimes as a result of operation of deluding karma, a sense of fear may arise in his heart. He, then, clears his heart through repentance for fear that may arise in seven forms:

1. *Fear from his own class (Ih-lok bhaya) :* this is the fear arising from persons of his own class. For instance a human being may have fear from another human being. An animal may have fear from another animal.

2. *Fear from living beings of a different category (Per-lok bhaya) :* This is the fear form living beings of different class or from beings of another state of existence for instance a human being may have fear of ghosts, demons, snakes or scorpions and the like.

3. *Fear of loss of wealth (aadan bhaya) :* For the safety of his wealth, a person may feel afraid of thieves and robbers.

4. *Sudden fear :* A person may feel afraid of a calamity without any reason.

5. *Fear of livelihood :* Some fear may be concerning ones means of livelihood.

6. *Fear of death.*

7. *Fear of loss of reputation :* A person may have lurking fear in his mind that he may not be disgraced.

Repentance for status of ego : Ego or pride generates many ills. A naughty person feels pleased when another person is cursed. The practitioner of spirituality keeps himself clearly detached from sense of pride. He always keeps himself vigilant, so, that even an iota of pride may not affect him. In case any moment, sense of pride operates in him, he repents for the same. Pride is of eight types.

1. *Pride of class :* To feel proud that one is of a higher class.

2. *Pride of birth or family :* Pride of status of family (The sub-caste of mother is called Jati and of father is called Kul)

3. *Pride of strength :* One may be proud of his physical strength.

4. *Pride of complexion :* One may he proud of ones beautiful look.

5. *Pride of austerities :* To feel proud that one is practicing hard austerities.

6. Pride of scriptual knowledge.

7. *Pride of accumulations :* A person may feel proud of getting the desired articles.

8. Pride of Status.

Repentance relating to preservation of celibacy (brahmcharya) : Brahma means soul and charya means to conduct oneself. So brahmcharya means to safeguard ones conduct. A monk has discarded sex for ever. He practices nine taboos (prohibitions) vigilantly in order to safeguard his life of celibacy. Gupti means to preserve. It is also called the fence. Just as a farmer puts up fence for security or safety of his crop, the practitioner observes nine preservations for the safeguard of his state of celibacy. The nature of nine guptis (presentations) is as under:

1. To avoid stay at a place where women, animals or impotents are staying.

2. To avoid talk about women. To avoid cutting jokes at women.

3. Not to sit for 48 minutes at the place where a women had sit earlier.
4. Not to stare at the limbs of a women.
5. Not to listen the amorous talk of women behind the wall or door. Not to listen their enchanting words, songs or sobbing.
6. Not to recollect the amorous life of the period earlier to the state of monkhood.
7. Not to take greasy food that provides special strength to the body and the sensual organs.
8. Not to take even the coarse food in large quantity.
9. Not to decorate ones body.

Repentance about shortcoming incurred in practice of ascetic life : The conduct laid down in scriptures to be practiced by Jain monks is called shraman dharma. It is of ten types as under:

1. *Forgiveness :* To overcome anger and to remain always in a state of equanimity.
2. *Contentment :* To overcome sense of greed and to remain contented.
3. *Straight forwardness :* To avoid deceit and to remain honest.
4. *Humility :* To overcome pride and to remain humble.
5. *To remain light :* To remain light in respect of cloth and pots. To remain free from feelings of attachment and hatred.
6. *Truth :* To always speak the truth. To use pleasant sweet words.
7. *Self-restraint :* To avoid all sinful activities.
8. *Austerities :* To practice twelve types of austerities according to ones capability. To remain always engaged in overcoming worldly desires.
9. *Renunciation :* To avoid inner attachment namely feelings toward to worldly relations and to avoid attachment to external things such as clothes and pots.
10. *Chastity :* To practice complete chastity remaining vigilant about nine prohibitions.

Self-analysis and repentance relating to practice of Shrawak: Here upasak means shraman or shrawak. Pratima means resolve. The resolvesof householder devotee are called upasak pratima. They are eleven and their practice

is completed in five and a half years. The nature of these resolves (Pratima) is as under:

1. *Darsan Pratima (Resolve relating to belief) :* In this resolve the faith is practiced free from all deviations. Its period is one month.
2. *Vrat Pratima (Reslove about vows) :* In this resolve five partial vows, three qualitative vows are practiced meticulously. The period of this practice is two months.
3. *The resolve about samayik :* In this resolve, the householder devotee practices samayik and deshavakashik vow free from all deviations. Its period is of three months.
4. *Resolve for paushadh :* The practitioner of this resolve observes paushadh (complete fast for 24 hours while staying in Jain temple) on every eighth and fourteenth and fifteenth day of bright fortnight and fifteenth day of dark fortnight of each month. This resolve is for five months.
5. *Resolve regarding restraints :* While practicing the earlier four resolves in the day and in the night he practices certain restrictions. He discards bath and beautification of his body. He keeps his under dress loose and does not take any liquid or food at night. He spends at least one night in a month and five nights in five month in meditation or recitation of scriptures. The minimum period of his resolve is one, two or three days and maximum is five months.
6. *Resolve relating to chastity :* In this resolve celibacy is observed without any exceptions. Its minimum period is one night and maximum is six months.
7. *Resolve about avoiding raw products :* In this resolve one avoids all the foodstuff which contains micro life. Its minimum period is one day and maximum is seven months.
8. *Resolve discarding preparation of thing involving even subtle violence:* The minimum period of the resolve is one day and maximum is eight months.
9. *Resolve against getting caused violence :* In this resolve, the shravak does not even get caused violence to any subtle living being. The minimum period of the resolve is one day and maximum period is nine month.
10. *Resolve avoiding food specially prepared for the practitioner :* The practitioner of this resolve does not accept food or water specially prepared

for him by causing even subtle violence. He shaves his head with razor. He does not attend to household activities. In case any one asks him about anything, he replies in affirmative, if he knows about it and in negative if he does not know. The minimum period of the vow is one day and the maximum period is ten months.

11. *Resolve about practice almost like a monk :* In this resolve, the practitioner conducts himself almost like a Jain monk. He dresses himself like a monk and seeks alms like a monk. In case he is capable for it, he plucks the hair of his head like a monk otherwise he gets his head shaved with a razor. The minimum period of this resolve is one day and the maximum period is eleven months.

In case in the practice of above-send eleven resolves the practitioner has committed any fault, he looks into them through self-analysis and repents for the same in pratikraman to chasten his soul through upasak pratima pratikraman.

Self Analysis and Repentance Concerning a Monk: The word bhikshu, shraman, nirgranth, sadhu and muni are all synonymous of a Jain monk and other practice used for him. The word bhikshu literally means a practitioner of code! For collecting alms a muni does not engage himself in any trade or business to meet his daily needs. He keeps himself engaged in spiritual practice throughout day and night. But he also needs food, clothing and pots to survive. He fulfils the requirement through collection of faultless food. It should be kept in mind that even while seeking alms, a Jain monk is not a beggar. In the life of a beggar, there is no scope for any restrictions or limitations. He begs in a humble way. He praises the donor when he gets anything and curses the one who does not offer him anything. On the other hand, in the search of collection of alms, 42 restraints have to be observed by a bhikshu (Jain mendicant). A shraman does not feel elated if he gets alms and does not feel depressed if he does not get anything. He does not appreciate those who offer him with gratitude and does not curse those who turn him away. So even while living on alms, he is not a beggar.

Here the pratikraman of twelve resolves (pratimas) of a bhikshu is mentioned. The gist of it is that in case he has not conducted himself properly in practice of twelve resolves, the fault incurred due to slackness of twelve resolves is as under:

First resolve : The period of this resolve is one month. The bhikshu practices the resolve by accepting only one offering of food and one offering of water during

the day. Here the offering (datt) means offered without break in the pot of the mendicant. The monk practices it continuously for one month.

Second to Seventh Resolve : The period of each of these resolves is one month. The only differences is that in second resolve two offering of food and two of water are accepted. In the third, three each and in this order in the seventh resolve, seven offering of food and seven of water are accepted.

Eighth Resolve : The period of the resolve is seven days and seven nights. It is practiced by observing fast am alternate days. In the outskirts of the village/town, the meditation is practiced in a special posture. Trouble if any caused by human beings, animals or gods is endured patiently.

Ninth Resolve : This resolve is also for seven days. In it two day fasts are practiced and the meditation is observed in special postures of standing like a rod, or on one leg or in posture with knees joined together.

Tenth Resolve : The period of this resolve is also seven day. In it three day fast is observed throughout and meditation is done outside the village in the posture of milking the cow, or standing in posture of sitting in a chair or in a bent-up posture, keeping the posture totally stable in the entire period.

Eleventh Resolve : This resolve is for twenty four hours. In it the practitioner observes to-day complete fast. He keeps himself in stable posture of meditation during the entire period.

Twelth Resolve : This resolve is for one night. It is practiced with three day complete fast. The practitioner stands in a state of meditation at a lonely place outside the village keeping his feet close to each other and hands spread towards the knees, forehead a little bent forward keeping his eye stabilized at a defined spot. During this period of resolve normally one faces disturbance from gods, human beings or animals. In case he completes this resolve in a state of equanimity, he is blessed with visual knowledge, mental knowledge or perfect knowledge.

In case he fails in it, he turns mad or loses faith in the order of omniscient.

Pratikraman of Activities (Kriya Sthan) : Kriya means activity. It is done in two ways—(1) with proper knowledge and (2) in a state of ignorance. The activity done with proper scriptural knowledge helps in shedding karmas while activity done in a state of ignorance causes, karmic bondage. The thirteen types of activities that cause karmic bondage have been narrated as under:

1. *Sinning for one's personal interest :* To cause violence, getting caused or supporting violence to living being for selfish motive.
2. *Sinning without a personal interest :* To cause violence to beings without any purpose.
3. *Sinning by slaying :* To cause violence in a state of suspicion that he may cause hurt to the beloved ones.
4. *Sinning through accident :* Inadvertent violence.
5. *Sinning by error of sight :* Considering wrongly an innocent person as the guilty one.
6. Sinning by lying.
7. Sinning by taking what is not freely given.
8. Sinning by a mere contemplation: Violence caused due to ill thoughts arising in the mind.
9. Sinning through pride.
10. Sinning through bad treatment of one's friends.
11. Sinning through deceit.
12. Sinning through greed.
13. Actions pertaining to a religious life: Subtle karmas caused due to movement of the omniscient.

Pratikraman of violence to living beings (Bhoot gram pratikraman): Bhoot means living being. Gram means collection. The minimum recognizance of a living being is consciousness. The medium types of living beings are fourteen and maximize divisions are 563. Here fourteen types are considered. In case any fault is committed relating to said fourteen types in describing them or in recognizing them or in ignoring life in them, this fault is rectified through repentance (pratikraman).

The fourteen division of living beings is as under: 1. Subtle one-sensed beings, 2. gross one-sensed beings, 3. two sensed, 4. three-sensed, 5. four-sensed, 6. five sensed beings devoid of mental faculty, 7. five sensed beings having mental faculty. All the seven division are in two stages—namely incomplete and complete (developed) ones.

Repentance for behaving like extremely cruel gods : Perm-adhunik means cruel minded celestial beings or beings having special interest in dreadful activities.

A special class of *asur kumar* gods is called parmadharmik. They are extremely brutal by nature. They feel happiness in causing trouble to others. They cut into pieces and beat the hellish beings in the first three hells in different ways. They enjoy the dreadful state of those beings. Such gods are of fifteen types. Their names are as under: 1. Umb, 2. Umbrish, 3. Shyam, 4. Shabal, 5. Raudra, 6. Upraudra, 7. Kaal, 8. Mahakaal, 9. Asipatra, 10. Dhanu:patra, 11. Kumbh, 12. Baluk, 13. Vatarni, 14. Kharswar, or 15. Mahaghosh.

In case one has any doubt about the nature of 15 said fifteen cruel celestial beings in adopting a conducts similar to them, he generates sin. In case such a feelings arises, the monk should remove it through repentance.

Pratikraman of 16 chapters : In the first book of Sutra Kritang, there are 16 chapters wherein conduct of a Jain monk has been narrated. In case any monk acts in a different way or interprets those chapters in a different way or has a faith not in line with them, it causes sin. That sin is removed through Gatha Shodashak Prati Kraman. The title of sixteen chapters of Sutrakritang are as under:

1. The doctrine (samay), 2. The destruction of karma (Vaitaliya), 3. The knowledge of troubles, 4. Kowledge of spiritual strength, 5. Description of hells, 6. Praise of Mahaveer 7. Description of the wicked, 8. On exertion, 9. The law, 10. Carefulness, 11. The path of salvation, 12. The creed, 13. The real truth, 14. the nigranth, 15, the yamaka, 16. the song (gatha).

Self-analysis and repentance in respect faults in practice of seventeen types of conduct of a monk: They are as follows: Lack of compassion for 1. earth-bodied, 2. water-bodied, 3. fire-bodied, 4. air-bodied and 5. vegetable-bodied souls. Lack of comparison for 6. two-sensed, 7. three-sensed, 8. four sensed and 9. five sensed living beings, 10. non-restraint towards lifeless objects, 11. Carelessness in finding seat (to sit at a place that contains living beings, 12. Carelessness in supporting an act of householder that in sinful, 13. Not to clean the cloth pot and the like according to the prescribed code, 14. To discard a thing without properly examining and cleaning the relevant place. Lack of restraint in respect of activities of, 15. mind, 16. Speech and 17. the body.

In case any of the above—said non-restraints has occurred in daily life, or the restraints have been interpreted wrongly or they have been believed in a different manner, the repentance is done for them in order to remove that fault.

Pratikraman of non-chastity: There are 18 types of non-chastity (1-9) to mentally, orally or physically cohabit with celestial being that have fluid body, to get caused cohabitation or to appraise such an act. Further (10-18) to mentally, orally or physically have sex with human beings and animals that contain physical body. To inspire others to have sex with them or to support those who commit such an act.

The monk respents for any faults out of 18 mentioned above concerning practice of celibacy.

PRATIKRAMAN relating to faults indicated in Jnata Sutra is the sixth Ange among Jain Agams (scriptures). It consists of two books—Jnat and Dharm Katha. The nineteen chapters of Jnat are as follows:

1. Utakshipt Jnat, 2. Sanghat, 3. Egg, 4. Tortoise, 5. Shailak, 6. Tumb, 7. Rohini, 8. Malli, 9. Makandi, 10. Moon, 11. Deva drava, 12. Udak (water), 13. Frog, 14. Tetali, 15. Nandiphal, 16. Amarkanka, 17. Akeeran, 18. Pundareek.

In the above-said nineteen chapters, through illustrations the advantages of life of restraint and of discarding conduct of non-restraint has been narrated in detail. In case a monk has not conducted himself accordingly, he clears the faults arising out of that conduct through pratikraman.

Repentance about state of non-equanimity: To establish the mind in a state of equanimity is called Samadhi. The conduct dialogue or discussion that disturbs state of equanimity is called asamadhi sthan. The causes of such a behaviour are twenty. A brief description of them is as under:

1. To move quickly without sense of discrimination, 2. to move at night without cleaning the ground, 3. to clean carelessly, 4. to sleep for a period more than the one prescribed in the code, 5. not to show respect for the teachers, 6. to insult sthavirs (the respected ones), 7. to cause hurt or to think of causing hurt to living beings, 8. to become angry repeatedly, 9. to remain angry for a long period, 10. to backbite, 11. to talk in an affirmative manner about doubtful matters, 12. to create trouble daily, 13. to recite the faults agam and again which have been mentally forgiven, 14. to study scriptures during the prohibited period, 15. to take meals with hands besmeared with live dust or to sit on a piece of cloth with feet containing live dust, 16. to talk loudly after the first quarter of the night, 17. to create division in the order, 18. to cause dejection to the order with unpalatable words, 19. to eat throughout the day, 20. to use water or food that is not acceptable for a monk.

Pratikraman for major (Shabal) faults : The faults that are to be totally avoided by a monk are called shabal faults. Such faults malign the character of the monk. Their description is as under:

1. To molest, 2. to have sex, 3. to take meals at night, 4. to accept food prepared for that monk, 5. to accept heavy diet prepared for rulers, 6. to accept food prepared for other monk, purchased for the monk, prepared from material taken on credit, snatched from a weak person or the food brought to the place of stay and then offered, 7. To break the accepted restraint again and again, 8. to change the order within six months, 9. to cross the river thrice in a month, 10. to commit deceitful act three time in a month, 11. to accept food from the house of the person where the monk is staying, 12. to commit violence knowingly, 13. to tell lie knowingly, 14. to commit theft knowingly, 15. to sit on live earth intentionally, 16. to sit on a plant knowing well that it contains living being or to meditate at such a place, 17. to consume flowers, seeds and underground vegetables intentionally, 18. to cross a river ten times in a year, 19. to commit deceitful acts ten times in a year, 20. to accept food knowing well that it is being offered with hands, spoon or bowl containing line water, 21. To intentionally sit or meditate at a place where there is live earth, live water, green vegetables, moles of ants, moss or web of the spider.

With the above-said twenty one mistakes, the self-restraint of a monk is damaged. A monk should not even think in his mind about incurring such errors. In order to remain vigilant about such serious faults, he makes self-analysis and repentance for them.

Repentance about troubles: The troubles arising during spiritual practice are called *Parisheh.* The only aim of a Jain monk is to go ahead on the path leading to salvation. By nature, the mind of a man wants happiness. Attraction for worldly happiness is the greatest hurdle in the path of salvation. On this path one has to bear all the troubles calmly. The troubles arising in the spiritual path have been grouped into 22 classes. The said twenty two troubles are as under:

1. hunger, 2. thirst, 3. cold, 4. heat, 5. mosquito-bite, 6. clothless, 7. sadness in life of self-restraint due to troubles, 8. women, 9. movement, 10. troubles arising in place of study, 11. lack of proper place of strain, 12. mental dejection due to angry conduct of them, 13. thrashing given to the monk by person of wrong perception, sometimes even killing by them, 14. seeking alms, 15. not getting desired article, 16. illness, 17. dryness of bed of shared, 18. sticking of dust perspiration on

the body, 19. respectful beahaviour or worship through thelaymen, 20. wisdom, 21. ignorance of spiritual knowledge, 22. disturbance in faith.

Repentance concerning seven chapters of second book of *Sutra Kritang:* There are two books of Sutra kritang. Sixteen chapters are in the first book and seven in the second book. The titles of 16 chapters of the first book have been mentioned in 'Gatha Shodshak Pratikraman'. The titles of seven chapters of the second book ar as under:

1. Lotus, 2. on activity, 3. knowledge of food, 4. renunciation of activity, 5. freedom from error, 6. Aardrak, 7. Nalandiya.

In the 16 chapters of the first book and seven of the second book, the conduct of the monk has been narrated. In case monk does not conduct himself accordingly or interprets the scriptures in different way, he commits fault. In order to remove these faults he resorts to pratikraman.

Pratikraman regarding celestial beings: There are 24 classes of celestial beings namely ten types of residential (Bhavanpati) celestial beings, 8 types of peripatetic gods, five classes of stellar gods and heavenly beings. The celestial beings possess unlimited worldly wealth. In case the spiritual practitioner has a lurking desire of such wordly wealth or feels jealous of them—in both the states, be accumulate karma. He should be in-different towards heavenly pleasures. In case any feeling of attachment or hatred arises in him, he should purify his soul through self-analysis and repentance (Pratikraman).

At some places instead of 24 gods, 24 tirthankars have been considered. In that case the repentance is done in respect of any disrespect shown towards 24 tirthankars namely Rishabh to Lord Mahaveer.

Meditation (Bhavana) Pratikraman: A monk practices five major vows. They are: 1. non-violence, 2. truth, 3. non-stealing, 4. chastity, 5. non-attachments to possessions. For the purity and security of the said five vows, there are 25 meditations and they are to be practiced meticulously. The nature of 25 meditations is as under.

Five meditation of major vow of non-violence: 1. preservation in movement, 2. control over mind, 3. control over speech, 4. to take food after properly examining it at a place where there is sunlight, 5. carefulness in placing or picking up a thing.

Five meditations of the major vow of truth : 1. to speak with proper relfection, 2. to avoid anger, 3. to avoid greed, 4. to avoid fear and 5. to avoid laughter.

Five meditations of the major vow of non-stealing : 1. to stay at faultness place after taking the consent of its owner, 2. to take straw, wooden plank and the like after obtaining consent of the owner, 3. not to cut trees etc for wooden board, seat and the like, 4. to use even ordinary things in a limited way, 5. to serve monks with devotion.

Five major vows of celibacy.

1. To stay at the place free from women, animals and eunuchs.
2. To avoid talking about women.
3. Not to stare at limbs of the women.
4. Not to recollect sexual enjoyments of the period earlier to renunciation
5. Not to take tasty food regularly

Five meditations of the major vow of non-attachment:

1. Not to have attachment to the words of one's liking and not to feel hatred for those not of one's liking. In fact to remain undisturbed in both the situations.

2-5. Similarly to remain indifferent about looks, tastes, smell and touch pleasant or non-pleasant.

A monk should regularly and continuously keep in mind the said twenty five meditations. In case any fault has occurred in their practice, he should purify his soul through repentance.

Self-criticism (Pratikarman) relating to directions mentioned in Dasha-kalp-vyavahar Sutra: In ten uddeshaks (lessons) of Dashashrut, 6 of Brihatkalp sutra and ten of Vyavhar Sutra—the practices of good monk have been mentioned. In case they have not been followed or have been wrongly interpreted, the repentance is undertaken.

Self-analysis and repentance about the basic traits of a monk: There are twenty seven traits of a monk. In the absence of them, the monk maligns ascetic discipline. A monk should always be vigilant in properly practicing those traits. In case any fault creeps in while practicing them, he should purify his soul through self analysis and pratikraman of monk. The nature of said twenty seven qualities is as under:

(1-5) To practice properly five major vows namely vow of non-violence etc, (6-10) To have control over five sense-organs, (11-14) To discard four passions, (15) To have purity in thoughts (16) To examine properly the articles of use, (17) to stabilize the mind, word and action in truth, (18) forgiveness, (19) detachment, (20) To avoid bad contemplation in the mind, (21) To avoid loose talk, (22) To discard wrong activity, (23) To become well trained in spiritual knowledge, (24) To become expert in proper vision, (25) To have spotless conduct, (26) To endure patiently the effect of trouble and turbulations. (27) to remain in a slate'of equanimity even when facing deadly trouble or when one is near his death.

Pratikraman of code of conduct: The scripture wherein the nature of ascetic conduct, the method of avoiding faults arising in its practice and the methods of self-purifications are laid down is called *Achar Prakalp*. In this context the word achar stands for Acharang Sutra. The word prakalp denotes the appendix (chulika) of Acharang Sutra and Nisheeth Sutra. In 25 chapters of Acharang Sutra and three chapters of Nisheeth Sutra, the code of conduct of Jain monk, the practitioner and the essential repentance (or punishment) for self-purification have been narrated in detail. In case any interpretation is done which is not in line with the said 28 chapters or monk has a belief or conduct which is not in line with the ascetic conduct mentioned in the said chapters, he purifies his soul through achar prakalp pratikraman. The titles of 28 Achar Pakalps are as under:

1. Knowledge about weapons, 2. Control over the word, 3. Hot and cold, 4. Right perception, 5. Essence of wile, 6. Chapter about chastity (dhoot), 7. Great knowledge (Maha-prijha), 8. Vimoksha, 9. Austerity code (Upadhan shrut), 10. Seeking of food, 11. Bed, 12. Code about movement (Irya), 13. Language, 14. Seeking clothes, 15. Seeking pots, 16. Resolve about limits, 17. Study of seven locations, 18. Account of seven prohibitions, 19. Account about precaution relating to discharge of excreta and urine, 20. Shabd-saptaikikadhyan, 21. Roop-saptai-kikadhyan 22. Precautions relating to activity towards others, 23. Miscellaneous precaution, 24. Meditation, 25. Liberation, 26. Udghat, 27. Samudghat, 28. Aropan.

Acharya Atmaram Ji Maharaj has divided Achar Prakalp on the basis of Samvayang Sutra as under:

1. Segregation for one month
2. Segregation for one month and five day

3. Segregation for one month and ten days

4. Segregation for one month and fifteen days

5. Segregation for one month and twenty days

6. Segregation for one month and 25 days

7. Segregation for two months.

(8-12) Segregation for 2 months 5 days, 2 months 10 days, 2 months 15 days, 2 months 20 days, 2 months, 25 days.

(13) Segregation for 3 months.

(14-18) Segregation for 3 months 5 days, 3 months 10 days, 3 months 15 days, 3 months 20 days, 3 months 25 days.

(19) Segregation for 4 months

(20-24) Segregation for 4 months 5 days, 4 months, 10 days, 4 months 15 days, 4 months 20 days, 4 months 25 days.

(25) Upaghatiki Aropana

(26) Anupaghatiki aropana

(27) Kutisana Aropana (complete detachment from monkhood)

(28) Akritsana aropana

Repentance (Pratikraman) of unworthy scriptural study : The books wherein such subjects that lead to commitment of sinful acts are narrated is called unworthy literature. The study, teaching and recitation of such scriptures is called unworthy study (Papashrut prasang). A Jain monk is prohibited from such study, listening such talks and explaining such subjects. In case due to any slackness, he becomes interested in such a study, he should purify his soul though papashrut pratikarman.

The sinful literature is of twenty nine types. They are literature about: 1. study of earth, 2. study of stars (astronomy), 3. study of dreams, 4. study of universe 5. study of parts of the body, 6. study of sounds, 7. study of signs, 8. study of symbols, 9-24. On the basis of description, commentaries and divisions, the said eight volumes turn into twenty four, .25. Study of such stones leads to general sensual feelings, 26. study about mantras and central spirits, 27. study of worldly sutras, 28. deep study of yoga, 29. study of scriptures of other faiths.

Repentance of places of great delusion : Out of all the eight Kamas, the deluding karma is most powerful. At the head of all the bad karmas is the delusion. Under the great influence of delusion, the karmic molecules that are collected by the soul is called extremely deluding kamas. Its maximum period is 70 crore × crore sagaropam. Such a karmic bondage is due to the following thirty causes.

1. To kill mobile living beings by drowning them in water.
2. To kill mobile beings by wrapping their head with wet leather.
3. To kill by blocking the breath or the mouth of living beings.
4. To kill by causing suffocation through smoke.
5. To kill by striking the head with a weapon violently.
6. To kill discarding the assurance given earlier.
7. To break the vow or to treacherously do a wrong act
8. To level false accusations on others
9. Running the line facts, to speak differently in the security
10. To abduct the wife of employer or to steal his money
11. To call oneself as a celebate since birth while actually he is not
12. To declare oneself as a celebrate while actually he is not so
13. To grab the money of the person who had helped him
14. To behave in an ingratitude manner with the person who had helped him
15. To kill the security guard, the general or the ruler
16. To kill the king, the elite and the like
17. To kill the popular political leader
18. To malign the person leading his life of self-restraint
19. To talk ill about the omniscient
20. To betray the people from the path of salvation
21. To disgrace the teachers and to accuse them
22. Not to serve Acharya, Upadhyaya and Social leaders.
23. T o pose as expert in scriptures while actually he is not so
24. To call oneself as practitioner of austerities while actually it is not so

25. Not to serve the dependents, the monk and practitioner of austerities even if one is capable of doing it
26. To narrate such Stavas again and again that leads one astray for right knowledge, preception and conduct
27. To engage in magic and such like activities
28. To condemn sensual enjoyment while secretly enjoying worldly pleasures
29. To mock at the grandeur and wealth of gods
30. To declare that he has seen the gods while actually it is not so

In case a practitioner has incurred even the slightest interest in any of the above said thirty activities, he should repent for the same in order purify his soul.

Pratikraman Relating to Virtues of Liberated Souls (Siddhas): In vedic tradition the one who is termed as Nirguna brahma, is called Siddha in Jainism. Sidha is that soul who has all the virtues of the soul. Such a soul is totally free from the bondage of all the eight karmas and their 31 sub-categories. Such souls are located in the place meant for liberated souls. They possess numberless qualities. Such inherent qualities are covered in 31 categories. The nature of 31 traits is as under:

1. Totally free from the cover obscuring sensitive knowledge
2. Totally free from the cover obscuring scriptural knowledge
3. Totally free from the cover obscuring visual knowledge
4. Totally free from the cover obscuring mental knowledge
5. Totally free from the cover obscuring perfect knowledge
6. Totally free from obstruction to visual perception
7. Totally free from obstruction to functions of sense organs other than the eye
8. Totally free from the obstruction to visual perception
9. Totally free from obstruction to perfect conduct
10. Free from sleep
11. Free from deep sleep
12. Free from sleeping while standing
13. Free from sleeping while moving

14. Free from terrible activity in sleep
15. Free from kama causing relief to the body
16. Free from pain causing karma
17. Free from kama causing delusion in faith
18. Free from karma causing delusion in conduct
19. Free from hellish life
20. Free from animal life
21. Free from human life
22. Free from angelic life
23. Free from kamas generating good name
24. Free from kamas causing bad name
25. Free from high status
26. Free from low status

27-30. Free from kama causing decline in chastity, in gain, in enjoyous, in repeated worldly pleasure and in complete development of the soul.

A great sin is caused in case one does not have faith in the above-said traits of siddhas or interprets them in a different manner. So a monk should always remain vigilant about it. In case in advertently he commits any fault, he should cleanse his soul through siddha-guna pratikraman.

Pratikraman of Yoge Sangreha: The nature of thirty two types of Yog Sangreh is as under:

1. Confession: To confess voluntarily before the head of the order
2. Not to tell others about the confession made to him
3. to remain firm on the religious track even when one is facing dreadful troubles
4. Not to expect support from others during practice of austerities
5. To practice methods of studies and methods of teaching
6. Not to beautify the physical body
7. to engage in austerities silently and not to lure for worship or fame
8. to avoid greed

9. to endure troubles in a state of equanimity
10. To imbibe simplicity
11. To remain chaste and truthful
12. To remain in extremely right faith
13. To remain mentally healthy and steadfast
14. To follow five types of conduct deligently
15. Humility
16. To remain patient
17. To have desire of liberation
18. To avoid deceit
19. To remain engaged in sublime activities
20. To stop inflow of kamic matter
21. To condemn ones faults
22. To detach oneself from all worldly enjoyments
23. To practice basic characteristics diligently
24. To practice secondary qualities diligently
25. To discard physical attachment
26. To avoid slackness
27. To remain completely vigilant about practice of the code of conduct
28. To engage in good meditations such as pure (Shukla) or righteous (Dhama) concentration
29. Not to become restless even in fatal illness
30. To detach oneself from others
31. To repent and accept punishment for faults
32. To do self-analysis for reducing intensity of passions and mortification of flesh.

In case the above said 32 dictates have not been properly followed the Yoga Sangreh penance (Pratikraman) is resorted to for the purification of soul.

Pratikraman of disrespect (Ashatana): The activity which causes harm to eight perceptions and the like—the means that lead to salvation is called disrespect.

By exhibiting disrespect towards sublime souls or principles laid down by the omniscient the living being collects bad karmas. As a result thereof he loses good traits and wanders in the mundane world for an infinite period. Such ashatanas are thirty three:

1. *Disrespect towards omniscents :* The souls, that have destroyed four kamas that malign the soul are called arihantas. After gaining omniscience, arihants establish the order of dharma for the welfare of the world. They teach the path leading to salvation for the worthy people wandering in the wilderness. So Arihantas are worthy of respect. In case any person has a doubt in the omniscience of Arihantas or finds fault in the principles laid down by them or considers 34 special characteristics, and 35 special qualities of these voice as flight of imagination is disrespect towards Arihantas.
2. *Disrespect to liberated souls (siddhas) :* Siddhas are these souls who are completely free from bondage of eight karmas, who are stationed at the uppermost edge of the universe (Loka) and who possess perfect knowledge and perfect conation. To deny the existence of Siddhas and to contemplate that there cannot be happiness when the soul is without any body is termed as disrespect to Siddhas.
3. *Disrespect to Acharyas :* Acharya is the person who meticulously follows the five types of ascetic conduct and propagates it among the order. They are responsible for maintaining discipline in the order. To ignore the dictates of Acharya and not to accept their commands is disrespect to the Acharya.
4. Disrespect to Upadhyayas: Upadhyays are responsible for propagating scriptural knowledge. To find fault in their lectures or not to accept their version or to call them as these having shallow knowledge is called disrespect to upadhyayas.
5. Disrespect towards monks: To call monks leading the life of self-restraint as wagebonds or to cut jokes at them is disrespect to sadhus.
6. Disrespect to Jain monks: Not to show respect toward Jain nuns and to say that women are at the root of all quarrels. They cannot follow ascetic description totally and they cannot attain salvation is disrespect towards Sadhus.

7-8. Disrespect towards lay devotees—Shravak and shravikas. Like monks and nuns, male and female devotees are also tirath (important sections of the order). In fact they are called father and mother of monks and nuns moving ahead on the salvation path. They also attain liberation. To say that a householder cannot properly practice the vows and that salvation is not possible for householders or thus the conduct of householders is a maligned one or to condemn them is disrespect to householder devotees.

9. Disrespect to gods: To call celestial beings and their abode as a flight of imagination and to negate their grandeur is disrespect to gods.

10. Disrespect to goddesses: To think about goddesses in the same manner as about gods mentioned earlier is disrespect to goddesses.

11. Disrespect towards origin of the universe: To deny the fundamentals regarding this world as mentioned in Jain scriptures to believe that the world has originated from Brahm or egg. It is disrespect towards the origin of the world.

12. Disrespect towards the other world: In the context of human beings is the present world. The state of existence as celestial beings, animal beings and hellish beings are the other states of existence. To believe only the present state of existence as the true one and not to believe the existence of other states of existence namely celestial states etc., and to term transmigration of soul as a false notion is disrespect to the other world (parloka)

13. Disrespect towards religion propagated by the omniscient. Not to have faith in principles propagated by the omniscient and to laugh at them is disrespect towards dharma propagated by the omniscient.

14. Disrespect towards abode of celestial beings, human beings and demons (asuras). To have a belief about the abode of celestial beings, human beings and demons not in line with the one narrated in scriptures is disrespect towards abode of heavenly being, human beings and demons.

15. Disrespect towards all categories of living beings—one sensed to five-sensed beings: The words pran, bhoot, jeev and satva are synonymous. Some acharyas have classified the four categories as under (a) all the two-sensed, three sensed and four-sensed mobile living being fall in the category

of pran. (b) The earth-bodied upto plantbodied beings are satva. (c) Plant-bodied beings are bhoot. All the five sensed living beings are jeeva. To say that All the worldly beings and liberated souls or satva. To have a wrong notion about the said four classes of beings and to cause harm to them is disrespect to all pran, bhoot and the like.

16. Disrespect to time (Kal): Not to accept the descending and ascending time-cycle or to believe that Kal is everything.

17. Disrespect towards shrut: Scriptural knowledge is called shrut. Not to have faith in scriptures, not to believe scriptures or the word of the omniscient is disrespect towards shrut.

18. Disrespect towards authors of shrut: The very source of scriptures is the Tirthankar. Gandhars express the word of omniscient in sutras. So Tirthankars and Gandhars are basically originators of scriptures Shrut kevali, the goddess looking after the domain of Tirthankar, Sixteen Vidya goddesses are also considered as Shrut-devatas.

19. Disrespect towards masters in scriptures (Shrut-Acharya). The master who teaches monks and nuns is called Vachanacharya. To find fault in his style of teaching, to call him as deficient in scriptural knowledge, not to pay due respect to him is called disrespect towards shrutacharya.

(20 to 33) There are fourteen faults that may occur in study of scriptures and they have already been mentioned from Jamva-idham to Sajhaiya na Sajhaya in the lesson relating is scriptural study.

The practitioner desirous of self-enlightment should avoid above-said 33 types of disrespect. In case as a result of any slackness, forgetfulness or ignorance any disrespect has been incurred, he should remove it through pratikraman of such types of disrespect.

○○

निर्ग्रन्थ प्रवचन सूत्र

णमो चउवीसाए तित्थयराणं।

उसभाइ महावीर पज्जवसाणाणं।

इणमेव णिग्गंथं पावयणं–सच्चं, अणुत्तरं, केवलियं, पडिपुण्णं, णेयाउयं, संसुद्धं, सल्लगत्तणं, सिद्धिमग्गं, मुत्तिमग्गं, णिज्जाणमग्गं, णिव्वाणमग्गं, अवितहमविसंधि, सव्वदुक्खप्पहीणमग्गं।

भावार्थ : भगवान् ऋषभदेव से लेकर भगवान् महावीर पर्यंत चौबीसों तीर्थंकर भगवंतों को नमस्कार करता हूं।

यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सत्य है, अनुत्तर (सर्वोत्तम) है, केवलिक (केवलज्ञानियों द्वारा प्ररूपित) है, परिपूर्ण है, न्याय सम्मत है, सर्वथा शुद्ध है, माया आदि शल्यों को नष्ट करने वाला है, सिद्धि का मार्ग है, कर्म-मुक्ति का मार्ग है, संसार से छुड़ाने वाला है, निर्वाण का मार्ग है, अवितथ (मिथ्यात्व रहित) एवं अविसंधि (विच्छेद रहित सदा शाश्वत) है, तथा समस्त दुखों को नष्ट करने वाला मार्ग है।

Exposition : My obeisance to twenty four tirthankars. I respectfully honour them—from Rishabh to Mahavir.

The word of the omniscent is true, unique. It is the speech of one having perfect knowledge. It is complete, it is logical, it is completey pure. It is free from all faults such as deceit and the like. It is the path leading to salvation. It is the path leading to liberation from karma. It frees one from mundane worldly existence. It is the path leading to nirvana. It is free from wrong belief and is permanent. It destroys all troubles.

इत्थं ठिया जीवा-सिज्झंति, बुज्झंति मुच्चंति, परिणिव्वायंति, जाव सव्व-दुक्खाणमंतं करेंति।

भावार्थ : इस निर्ग्रन्थ प्रवचन में स्थित रहने वाले अर्थात् इस के अनुसार आचरण करने वाले साधक सिद्ध हो जाते हैं, बुद्ध (सर्वज्ञ) हो जाते हैं, मुक्त हो जाते हैं, परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाते हैं एवं समस्त प्रकार के दुखों का अन्त कर देते हैं।

Exposition: The living beings conducting themselves according to the dictate mentioned in the word of omniscient ultimately attains salvation. They become omniscient. They are liberated. They attain nirvana. They are free from all troubles of the mundane world.

तं धम्मं सद्दहामि, पत्तियामि, रोएमि, फासेमि, पालेमि, अणुपालेमि।

तं धम्मं सद्दहंतो, पत्तियंतो, रोयंतो, फासंतो, पालंतो, अणुपालंतो। तस्स धम्मस्स केवलि पण्णत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए।

भावार्थ : जिन भगवान् द्वारा कहे गए उस धर्म पर मैं श्रद्धा करता हूं, प्रतीति करता हूं, रुचि करता हूं, उसकी स्पर्शना करता हूं, पालना करता हूं, एवं विशेष रूप से परिपालना करता हूं।

उस धर्म की श्रद्धा करता हुआ, प्रतीति करता हुआ, रुचि करता हुआ, स्पर्श करता हुआ, पालन और अनुपालन करता हुआ–केवलियों द्वारा कहे गए उस धर्म की आराधना के लिए पूर्णत: उद्यत होता हूं, और विराधना से पूर्णत: विरत (निवृत्त) होता हूं।

Exposition : I have full faith in the dharma enunciated by the omniscient. I love it, I like it. I deal it in my life. I accept it in my life. I follow it meticulously.

While doing it, I am fully devoted to the practices as ordained by the omnicients. I totally avoid any disrespect towards them.

असंजमं परियाणामि, संजमं उवसंपज्जामि। अबंभं परियाणामि, बंभं उवसंपज्जामि। अकप्पं परियाणामि, कप्पं उवसंपज्जामि। अण्णाणं परियाणामि, णाणं उवसंपज्जामि। अकिरियं परियाणामि, किरियं उवसंपज्जामि। मिच्छत्तं परियाणामि, सम्मत्तं उवसंपज्जामि। अबोहिं परियाणामि बोहिं उवसंपज्जामि। अम्मग्गं परियाणामि, मग्गं उवसंपज्जामि।

जं संभरामि, जं च ण संभरामि, जं पडिक्कमामि, जं च ण पडिक्कमामि, तस्स सव्वस्स देवसियस्स अइयारस्स पडिक्कमामि।

भावार्थ : मैं असंयम को ज्ञ परिज्ञा (हेय–त्याग करने योग्य, ज्ञेय–जानने योग्य, उपादेय–आचरण करने योग्य पदार्थों को स्वरूपत: जानना) से जानता हूं और प्रत्याख्यान परिज्ञा से उसका त्याग करता हूं, तथा संयम को स्वीकार करता हूं। अब्रह्मचर्य को जानकर त्यागता हूं और ब्रह्मचर्य को स्वीकार करता हूं। अकल्प्य (साधु के लिए निषिध आचरण) को जानकर त्यागता हूं और कल्प्य को स्वीकार करता हूं। अज्ञान को जानकर त्यागता हूं और ज्ञान को स्वीकार करता हूं। अक्रिया (नास्तिकता) को जानकर त्यागता हूं और क्रिया (आस्तिकता) को स्वीकार करता हूं। मिथ्यात्व को जानकर त्यागता हूं और सम्यक्त्व को स्वीकार करता हूं।

अबोधि को जानकर त्यागता हूं और बोधि को स्वीकार करता हूं। उन्मार्ग को जानकर त्यागता हूं और सन्मार्ग को स्वीकार करता हूं।

भावार्थ : जो दोष मुझे स्मरण हैं और जिन दोषों को मैं स्मरण नहीं कर पाया हूं, जिन दोषों का मैंने प्रतिक्रमण कर लिया है और जिनका प्रतिक्रमण मैं नहीं कर पाया हूं, उन दिवस संबंधी समस्त अतिचारों का मैं प्रतिक्रमण करता हूं।

Exposition : I understand non-restraint with my faculty of knowledge (heya means that which is to be discarded gnyaya is that which is to be understood, upadaya is that which is to be included in daily life). I ignore that which is to be ignored or discarded by making a resolve for the same. I accept the life of ascetic self-restraint. I fully understanding the drawbacks of non-celibate life discard it and accept celibacy. I understand well what is prohibited for a Jain monk, discard it and accept that what is to be followed by a monk. I discard worldly activities knowledge knowing well its facets and accept right knowledge. I understanding wrong belief discard it and accept right faith in word of omniscient. I discard wrong belief (mithyalua) and accept right approach (perception). I discard ignorance and accept true knowledge. I discard the wrong path and accept the right path.

I retreat and feel sorry for all faults which I could recollect and even those which I committed but could not recollect. I have sought pardon for some faults and some faults may be such for whom. I have not sought pardon. I repent and condemn myself all such faults that I may have committed during the day.

समणोऽहं-संजय विरय-पडिहय-पच्चक्खाय पावकम्मो, अणियाणो, दिट्ठि-संपण्णो, मायामोसं विवज्जिओ।

भावार्थ : मैं श्रमण हूं, विरत (सावद्य व्यापारों से रहित) हूं, पाप कर्मों को नष्ट करने वाला एवं त्यागने वाला हूं। निदान आदि शल्यों से मुक्त हूं, सम्यक्दर्शन से युक्त हूं तथा छल और झूठ से रहित हूं।

Exposition : I am a Jain monk. I am free from all activities involving violence to beings. I avoid all sinful karmas. I shed all such karmas. I keep myself away from all thorns such as nidan (seeking worldly gain in lieu of Spiritual activity). I possess right faith (perception). I am free from all types of deceit and falsehood.

अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु, पण्णरससु कम्मभूमिसु, जावंति केवि साहू-रयहरण गुच्छ-पडिग्गहधारा। पंच महव्वय-धारा, अट्ठारस सहस्स सीलंगधारा। अक्खयायार चरित्ता ते सव्वे सिरसा, मणसा, मत्थएण वंदामि।

भावार्थ : अढ़ाई द्वीप-समुद्र पर्यंत पन्द्रह कर्मभूमियों में जो कोई भी रजोहरण, गुच्छक और पात्र धारण करने वाले, पांच महाव्रतों एवं अठारह हजार शीलांगों (सदाचार के अंगों) को अंगीकार करने वाले तथा अक्षय आचार रूपी चारित्र का पालन करने वाले मुनिराज हैं, उन सभी को सिर से, मन से एवं मस्तक से वन्दन करता हूं।

Exposition: There are monks in fifteen karambhumis situated in two and a half islands (Dveeps) upto the last ocean. Out of them there are such monks who keep holy broom, pots and meticulously observe five major vows and eighteen thousand precautions relating to good ascetic conduct. Their ascetic conduct is of high order and never declines. I bow to them with my head, mind and forehead.

विवेचन : प्रस्तुत **निर्ग्रन्थ प्रवचन** के पाठ में श्रमण की श्रद्धा, संकल्प और वन्दनमय भावों की प्रस्तुति है। इस पाठ का प्रारंभ चौबीस तीर्थंकरों को प्रणाम करने से शुरू होता है। तत्पश्चात् साधक निर्ग्रन्थ-प्रवचन की सर्वश्रेष्ठता को स्वीकार करते हुए उसके पालन का आत्मसंकल्प करता है। साथ ही असंयम आदि अनाचार के त्याग एवं संयम आदि सदाचार के स्वीकार की साधक प्रतिज्ञा करता है। उसके बाद वह अपने श्रमण स्वरूप का चिन्तन करता है। अंत में अढ़ाई द्वीप में विराजित समस्त साधुओं को नमन कर साधुता के प्रति अपनी भक्ति को व्यक्त करता है।

'निर्ग्रन्थ' जैन परम्परा का पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ है-ग्रन्थ अर्थात् गांठ से रहित। धन, जन आदि का आकर्षण बाह्य ग्रन्थियां हैं, काम, क्रोध आदि आंतरिक ग्रन्थियां हैं। बाह्य और आंतरिक-इन दोनों ग्रन्थियों से जो रहित है उसे ही निर्ग्रन्थ कहा जाता है।

अरिहंतों की वाणी **प्रवचन** कहलाती है।

Explanation: This aphorism narrates the faith, determination and benediction of a monk. This lesson starts with obeisance to twenty four Tirthankars. Thereafter the pupil accepting the excellence of the word of scriptures makes a resolve to follow it in daily life Simultaneously he discards bad conduct such as non-restraint and the like. He takes a vow to follow good conduct meticulously. Thereafter he contemplates about his ascetic nature. In the end he bows to all the monks in the human world consisting of two and a half islands for their ascetic conduct of high order with great devotion.

The word **'Nigranth'** is a unique word in Jain tradition. It means one free from worldly knots. Attraction for worldly wealth relation and the like constitute external hurdles (knots) the internal hurdles are lust, anger and the like. Nigranth is one who is free from both internal and external knots.

The word of omniscient is called ***Pravachan***.

अठारह हजार शीलांग—शील का अर्थ है—सदाचार। भेद-प्रभेद की दृष्टि से शील के अठारह हजार अंग अर्थात् प्रकार हैं। भेदानुभेद की गणना इस प्रकार की जाती है—

(क) श्रमण-धर्म के दस भेद बताए गए हैं।

(ख) इस दस की संख्या को पृथ्वीकाय आदि दश की विराधना न करने की दस भावनाओं से गुणा करने पर १०० गुण हो जाते हैं।

(ग) पृथ्वीकाय आदि की विराधना पांच इन्द्रियों से होती है अत: ५ से गुणा करने पर शील के ५०० भेद हो जाते हैं।

(घ) इस ५०० की संख्या को आहार-संज्ञा, भय-संज्ञा, मैथुन-संज्ञा और परिग्रह-संज्ञा, इन चारों से क्रमश: गुणा करने पर २००० भेद हो जाते हैं।

(ङ) इस २००० की संख्या को मन-वचन-काय, इन तीन से गुणा करने पर ६००० भेद हो जातें हैं।

(च) इस ६००० की संख्या को, करना, कराना, अनुमोदना इन तीन भेदों से गुणा करने पर १८००० शीलगुणों से युक्त समस्त मुनिवरों को वन्दना करते हैं।

(**साभार** : आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज द्वारा व्याख्यायित आवश्यक सूत्र से।)

Eighteen Thousand Sheelang: Sheel means good conduct. Its divisions and sub-divisions are 18000. Their detail is as under:

(*a*) Ascetic conduct is of ten types.

(*b*) Earth bodied, water bodied and the like are of ten types one resolves not to cause hurt to them.

(*c*) The violence to living being such as earth bodied and the like is caused by five sense organs. So, by multiplying 100 mentioned in (a) (b), it comes to 500.

(*d*) There are four instincts—instinct for food, fear, sex and possession. Multiply 500 with these four lt becomes 2000.

(*e*) Activity is with mind, word or deed. So, multiply 2000 in (c) with these three, it becomes 6000.

(*f*) Further the activity is in 3 ways—doing, getting done and appreciating that what is being done. So, the good traits of noble conduct comes to three time of 6000, which is 18000.

(Courtsy of Avashyak Sutra by Acharya Shri Atmaram Ji Maharaj)

पांच पदों की वन्दना

अरिहंत वन्दना

नमूं श्री अरिहन्त, कर्मों का किया अन्त।
हुआ सो केवलवन्त, करुणा भण्डारी है।
अतिशय चौंतीस धार, पैंतीस वाणी उच्चार।
समझावे नर-नार पर उपकारी है।
शरीर सुन्दराकार, सूरज सो झलकार,
गुण हैं अनन्तसार, दोष परिहारी है।
कहत है तिलोकरिख, मन-वच-काया करी।
झुक-झुक बारम्बार, वन्दना हमारी है॥1॥

नमो अरिहंताणं–पहले पद श्री अरिहन्त महाराज चौंतीस अतिशय, 35 वाणी के गुणों सहित विराजमान, महाविदेह क्षेत्र में जयवन्त विचरे श्री सीमन्धर स्वामी, श्री युगमन्धर स्वामी, श्री बाहु स्वामी, श्री सुबाहु स्वामी, श्री सुजात स्वामी, श्री स्वयंप्रभ स्वामी, श्री ऋषभानन स्वामी, श्री अनन्तवीर्य स्वामी, श्री सूरप्रभ स्वामी, श्री वज्रधर स्वामी, श्री विशालधर स्वामी, श्री चन्द्रानन स्वामी, श्री चन्द्रबाहु स्वामी, श्री भुजंग स्वामी, श्री ईश्वर स्वामी, श्री नेमप्रभु स्वामी, श्री वीरसेन स्वामी, श्री महाभद्र स्वामी, श्री देवयश स्वामी, श्री अजितवीर्य स्वामी, जघन्य 20, उत्कृष्ट 160 तथा 170 तीर्थंकर अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त बल, देव-दुन्दुभी, भामण्डल, स्फटिक सिंहासन, अशोक-वृक्ष, पुष्प-वृष्टि, दिव्य ध्वनि, छत्र धरे, चामर वींजे, इन 12 गुणों से विराजमान, चौंसठ इन्द्रों के पूजनीय जघन्य दो करोड़, उत्कृष्ट नौ करोड़ केवली, केवल-ज्ञान, केवल दर्शन सहित, 18 दोषों से रहित, सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के जानकार, इत्यादि अनेक गुणों सहित विराजमान जिन महाराजों को मेरी भाव-वन्दना नमस्कार हो।

ऐसे अरिहन्त भगवन्त महाराज! आपकी दिवस-सम्बन्धी अविनय- आशातना हुई हो तो 1008 बार तिक्खुत्तो के पाठ से नमस्कार करता हूं। आप मांगलिक हो, उत्तम हो, आपका इस भव में पर-भव में शरणा हो॥1॥

Obeisance to five categories of soul Obeisance to ARIHANTAS

I bow to Arihantas. They have shed destructive karmas and hence attained perfect knowledge. They are full of compassion. They possess thirty four unique virtues and thirty five special traits of speech. They provide true knowledge to the

public. Their body is extemly beautiful, shining like the sun. These qualities are infinite and they are free from all faults. Trilok Rishi says that I respectedly bow to them in reverence mentally, verbally and physically.

Namo Arihantanum : In the first couplet, obeisance is to Arihantas. They possess 34 special traits and 35 unique qualities of speech. They are at present in Mahavideh area. They are Shri Simandhar Swami, Yugmandhar Swami, Bahu Swami, Subahu Swami, Sujat Swami, Svayam Prabh Swami, Rishabhanan Swami, Anantvirya Swami, Soorprabh Swami, Vajradhar Swami, Vishal Dhar Swami, Chandranan Swami, Chandrabahu Swami, Bhujang Swami, Ishwar Swami, Nemprabhu Swami, Veersen Swami, Mahabhadra Swami, Devyash Swami, Ajitvirya Swami. Their minimum number is 20 and the maximum can be 170 or 160. These Tirthankars possess perfect knowledge, perfect conduct, perfect perception and perfect strength. They are blessed with special honours namely pronouncement by angels, great aura, special seat, ashok tree, shower of flowers, special echo, unique umbrella. They possess twelve characteristics, 64 indras worship them. The omniscients are at least 20 million and their maximum number is 90 million. They possess total knowledge and total perception. They are free from 18 faults. They know everything, at every place, and of all the periods and in every state of contemplation. Their qualities are numerous. I bow to them with full devotion.

O Arihantas, In case I have ever committed any act of disrespect towards you. I bow to you 1008 times by reciting the lesson of Tikhutto. You are ominous, excellent and I pray that I may have your patronages in this life and in the next life also.

सिद्ध-वन्दना

सकल कर्म टाल, वश कर लियो काल,
मुक्ति में रह्या माल, आत्मा को तारी है।
देखत सकल भाव, हुआ है जगत राव,
सदा ही क्षायिक भाव, भये अविकारी है॥
अचल अटल रूप, आवे नहीं भव-कूप,
अनुप-सरूप-ऊप, ऐसे सिद्धिधारी है।
कहत है तिलोकरिख, बताओ ए वास प्रभु,
सदा ही उगंत सूर, वन्दना हमारी है॥2॥

नमो सिद्धाणं–दूसरे पद श्री सिद्ध भगवन्त महाराज 15 भेदे सिद्ध (सकल कर्म-रहित) हुए हैं, आठ गुणों सहित विराजमान, 1. अनन्त ज्ञान, 2. अनन्त दर्शन, 3. अनन्त सुख, 4. क्षायिक समकित, 5. अटल अवगाहना, 6. अमूर्तपना, 7. अगुरुलघु, 8. अनन्त बल, इकत्तीस अतिशय से विराजमान, पांच भेदे ज्ञानावरणीय कर्म क्षय किये, नौ भेदे दर्शनावरणीय कर्म-क्षय किये, दो भेदे वेदनीय कर्म क्षय किये, दो भेदे मोहनीय कर्म क्षय किए, चार भेदे आयु कर्म क्षय किये, दो भेदे नामकर्म क्षय किये, दो भेदे गोत्रकर्म क्षय किये और पांच भेदे अन्तरायकर्म क्षय किये, जहां जन्म नहीं, जरा नहीं, मरण नहीं, भय नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं, दुःख नहीं, दारिद्र्य नहीं, कर्म नहीं, काया नहीं, मोह नहीं, लघु नहीं, गुरु नहीं, यावत् निरञ्जन निराकार ज्योति-स्वरूप ज्योति में विराजमान अनन्त सुख में लवलीन, उन सिद्ध भगवंतों को मेरी भाव-वन्दना नमस्कार हो।

ऐसे श्री सिद्ध भगवन्त महाराज आपकी अविनय-आशातना हुई हो तो हाथ जोड़ 1008 बार तिक्खुत्तो के पाठ से वन्दना-नमस्कार करता हूं। हे सिद्ध भगवन्त! महाराज! आप मांगलिक हो, उत्तम हो, आपका इस भव में पर-भव में शरणा हो।।1।।

Obeisance to Sidhas

The sidhas have destroyed all karmas. They have overcome death. They are in liberated state. Their soul is free from all bondage. They are omniscent. They are always in intrinsic chaste contemplation and never have any ill thought. They always remain stationary. They are free from worldly cycle of birth and death. Their nature is unique. Such are Sidhas. Tilok Rishi says, that O Lord, I always bow to you.

Obeisance to Sidhas: In the second verse obeisance is to Sidhas. They are of 15 classes. They are free from all karmas. They possess eight special qualities namely infinite knowledge, infinite perception, infinite happiness, indestructible faith, complete stationary position, shapeless free from both low and high status, and infinite strength. They possess 31 special traits. They have destroyed five knowledge-obscuring, nine perception obscuring karmas, two pain causing karmas, two types of deluding karmas, four type of age determining karmas two types of name-determining karmas, two types of gotra determining karmas and five types of obstructive karmas. They do not undergo drudgery of old age, death and re-birth, fear, disease, sadness, pain, poverty, physical form delusion, lightness, heaviness. They have no shape. They exist totally absorbed in infinite ecstatic happiness. I pay my obeisance to such reverend sidhas.

O Sidhas, In case I may have shown disrespect or lack of proper care towards you, I bow to you 1008 times uttering the lesson of 'Tikhuto'. You are ominous, excellent. May I have your blessing in this life-span and in succeeding life-span also.

आचार्य-वन्दना

गुण हैं छत्तीसपूर, धारत धरम उर,
मारत कर्म क्रूर, सुमति विचारी है।
शुद्ध सो आचारवन्त, सुन्दर है रूप कन्त,
भणया सभी सिद्धान्त, वांचणी सुप्यारी है।
अधिक मधुर वेण, कोई नहीं लोपे केण,
सकल जीवों का सेण, कीरत अपारी है।
कहत है तिलोकरिख, हितकारी देत सीख,
ऐसे आचारज ताकूं, वन्दना हमारी है।।3।।

नमो आयरियाणं–तीजे पद श्री आचार्य महाराज, 36 गुणों सहित विराजमान, पांच आचार पालें, पांच महाव्रत पालें, पांच इन्द्रियां जीतें, चार कषाय टालें, नौ बाड़ शुद्ध शील पालें, पांच समिति, तीन गुप्ति से गुप्त, आठ संपदा-सहित, निश्चल समकिती, निकट भव्य, शुक्ल पक्षी, मोक्ष-मार्ग के सारथि इत्यादि अनेक गुणों से विराजमान उन आचार्य भगवंतों को मेरी भाव-वन्दना नमस्कार हो।

ऐसे श्री आचार्य महाराज! आपकी अविनय-आशातना हुई हो तो हाथ जोड़ 1008 बार तिक्खुत्तो के पाठ से वन्दना-नमस्कार करता हूं। हे आचार्य महाराज! आप मांगलिक हो, उत्तम हो, आपका इस भव में परभव में बारम्बार शरणा हो।।3।।

Reverend Acharyas:

You have 36 virtues. Your heart is saturated with dharma. You are overcoming destructive karmas. You have noble bent of mind. Your conduct is chaste. You are beautiful and lovely. You know all the essence of scriptures and fundamental principles. Your discourse is enchanting. Your voice is sweet. You do not canceal anything. You provide protection to all the living beings. Your respect (fame) is immense. Tilok Rishi says 'that you also give worthy guidance'. I bow to such Acharya with great devotion.

Obeiscence to Acharayas: In the third verse there is obeisance to Acharays. They have 36 great qualities, five types of conduct. They have accepted five major vows. They have overcome the influence of five senses and four passions. They meticulously practice nine restrictions relating to celibacy, five samitis and three guptis. They possess eight great virtues (Sampada). They have staunch faith. They have to pass through limited number of transmigration. They are on bright path (Shukla Paksh). They are the charioteer (leader) of path leading to salvation. They have numerous virtues. I bow to such Acharayas with deep devotion.

Reverend Acharayas! In case I may have ever shown any disrespect towards you, I humbly bow to you 1008 times uttering the aphorism of 'Tikhutto! You are ominous and excellent. May I be blessed with your patronage in this life span and in the next life-span also.

उपाध्याय-वन्दना

पढ़त इग्यारह अंग, कर्मों से करे जंग,
पाखंडी को मान भंग, करण हुसियारी है।
चउदे पूरव-धार, जानत आगम-सार,
भवियन के सुखकार, भ्रमता निवारी है।
पढ़ावे भविक जन, स्थिर करि देते मन,
तप करी तावे तन, ममता निवारी है।
कहत है तिलोकरिख ज्ञान-भानु परतिख,
ऐसे उपाध्याय जी को वन्दना हमारी है॥4॥

नमो उवज्झायाणं–चौथे पद श्री उपाध्याय जी महाराज आप पढ़ें औरों को पढ़ावें, पच्चीस गुणों सहित विराजमान, ग्यारह अंग, बारह उपांग के पाठक, (ग्यारह अंगों के नाम– 1. आचाराङ्ग, 2. सूयगडांग, 3. ठाणांग, 4. समवायांग, 5. भगवती, 6. ज्ञाता, 7. उपासक-दशाङ्ग, 8. अन्तगड-दशाङ्ग, 9. अनुत्तरोववाई, 10. प्रश्नव्याकरण, 11. विपाक सूत्र। बारह उपांग–उववाई, रायपसेणी, जीवाभिगम, पन्नवणा, जम्बूदीप-पन्नत्ति, चन्दपन्नत्ति, सूरपन्नत्ति, निरयावलि, कप्पिया, कप्पवडंसिया, पुप्फिया, पुप्फ-चूलिया, वह्निदसा, चार मूल तथा चार छेद के जानकार) करण-सत्तरी, चरण-सत्तरी के धारणहार, समकित रूप प्रकाश के करणहार, मिथ्यात्वरूप अंधकार के मेटनहार, धर्म को दिपाने वाले, डिगते प्राणी को धर्म में स्थिर

करने वाले, इत्यादि अनेक गुणों सहित ऐसे श्री उपाध्याय जी महाराज को मेरी भाव-वन्दना-नमस्कार हो।

हे उपाध्याय जी महाराज! आपकी दिवस-सम्बन्धी अविनय-आशातना हुई हो तो बारम्बार 1008 बार तिक्खुत्तो के पाठ से वन्दना करता हूं। हे उपाध्याय जी महाराज! आपका इस भव में पर-भव में शरणा हो।।4।।

Obescence to Upadhyayas: The upadhyayas study eleven anga sutras. They have twenty five qualities. They know those who have wrong perception. They are expert in interpreting scriptures. They have studied fourteen purvas. They know the essence of scriptures (Agams). They remove the doubts of the worthy and provide them satisfaction. They teach the scriptures and chastise their mind. They practice ascetic austerities, meticulously. They have discarded feeling of worldly attachment. Tilok Rishi says that they are the direct sun of knowledge and that I bow to such upadhyayas.

Obescence to upadhyayas The fourth verse is about upadhyaya. They study scriptures and teach it to their pupils. They have twenty five traits since they have studied eleven angas, twelve upange and follow seventy dictates relating to churnas and seventy relating to karmas. Eleven Angas are Acharang, Sutrakritang, Thanang, Samvayang, Bhagvati, Gyata, Upasakdashang, Antgarhdashang, Anuttrovavai, Prashan Vyakaran and Vipak Sutra. Twelve *Upangs* are *Uvavai*—Raipasemi, Jeevabhigam, Pannavana, Jambudeep-panalti, Chand-pannti, Sur-pannti, Niryavali, Kappia, Kappvadansia, Puffiya, Puff-chulia, Vahnadasa. They also know four *Mool* sutra and four *Chhed* sutra. They provide the brightness of right faith and eliminate the darkness of wrong perception. They enhance the spectrum of dharma. They help others in stabilizing in dharma. They have such like numerous qualities. I bow to them with deep devotion.

साधु-वन्दना

आदरी संयमभार, करणी करे अपार,
समिति गुपतिधार, विकथा निवारी है।
जयणा करे छ काय, सावज्ज न बोले वाय,
बुझाय कषाय लाय, किरिया-भण्डारी है।
ज्ञान भणे आठों याम, लेवे भगवन्त नाम,
धरम को करे काम, ममता कूं मारी है।

कहत है तिलोकरिख, कर्मों का टाले विख,
ऐसे मुनिराज ताको वन्दना हमारी है॥5॥

नमो लोए सव्व-साहूणं–पांचवें पद, अढ़ाई द्वीप, पन्द्रह क्षेत्र रूप लोक के विषय साधु जी महाराज! जघन्य दो हजार करोड़, उत्कृष्टा नव हजार करोड़ जयवंता विचरे, पांच महाव्रत पालें, पांच इन्द्रिय जीतें, चार कषाय टालें, भाव-सच्चे, करण-सच्चे, जोग-सच्चे, क्षमावन्त, वैराग्यवन्त, मन-समाधारणया, वय-समाधारणया, काय-समाधारणया, नाण-सम्पन्ना, दंसण-सम्पन्ना, चरित्त-सम्पन्ना, वेदनीय-समाअहियासणया, मरणान्तिक कष्ट सहें, ऐसे सत्तावीस गुणों सहित विराजमान, बावन अनाचार टालें, बियालीस दोष टाल के आहार लेवें, पांच मांडलिक दोष टाल के आहार करें, बाईस परीषह जीतें, सत्रह प्रकार संयम पालें, बारह भेद तप के करणहार, छह काया के रक्षक, छह काया के ग्वाल, छह काया के प्रतिपाल, बुलाये आवे नहीं, नेतिये जीमे नहीं, भ्रमर-भिक्षा के लेनहार, वस्त्र, पात्र, आहार, स्थानक निर्दोष भोगवें, भगवान् की आज्ञा में विचरें, इत्यादि अनेक गुणों से विराजमान उन महापुरुषों को मेरी भाव-वन्दना नमस्कार हो।

Obeiscence to Sadhus: The monks are meticulously and respectfully leading the ascetic life. They are doing hard ascetic activities. They practice *samities* and *guptis*. They avoid loose talk and such talk that generates polluted thoughts. They discriminately deal with six types of living beings. They are treasure of virtues. They remain absorbed in scriptural study throughout during the day and recite the name of the Lord from the core of their heart. They engage themselves in activities that develop dharma. They avoid attachment to worldly people. *Tilok Rishi* says that they avoid path that produces *karma* and I bow to such monks.

Obeiscence to All Sadhus: There are at least 20,000 million Jain monks and at the most 90,000 million monks in the human invested world consisting of two and half islands and fifteen regions in them. They practice five major vows of the monk. They have complete control over their senses. They avoid four passions. They are true in thought and deeds. They are true mentally, verbally and physically. They grant pardon. They remain detached. They keep their mind, tongue and body in a state of equanimity. They possess right knowledge right vision and right conduct. They bear the troubles patiently and remain calm even in fatal state. Thus, they possess the said twenty seven traits. They avoid fifty two taboos. They accept alms avoiding forty two prohibitions laid down in the code. While consuming food, they avoid five faults. They have full control over twenty two disturbances (parisheh). They practice

seventeen types of ascetic discipline. They practice twelve types of austerities. They provide protection to six types of living beings. They look into safety of six types of beings. They do not accept invitation from householders. They do not dine at the house of householder. They seek alms like a bumble bee. They accept cloth, pot, food and place of stay (Sthanak) only that one which is free from fault. They obey the word of the lord as mentioned in scriptures. They possess numerous qualities. I bow to such great men.

गुरु-वन्दना

जैसे कपड़ा को थान, दरजी वेतत आण,
खण्ड-खण्ड करे जाण, देत सो सुधारी है।
काठ के ज्यूं सूत्रधार, हेम को कसे सुनार,
माटी के ज्यूं कुंभकार, पात्र करे त्यारी है।
धरती को किसान, लोहे को लुहार जाण,
शिलावट शिला आण, घाट घड़े भारी है।
कहत है तिलोक रिख, सुधारे ज्यूं गुरु शिष्य,
गुरु उपकारी नित, लीजे बलिहारी है।।

* * * *

गुरु मित्र गुरु मात, गुरु सगा गुरु तात,
गुरु भूप गुरु भ्रात, गुरु हितकारी है।
गुरु रवि गुरु चन्द्र, गुरु पति गुरु इन्द्र,
गुरु देत आनन्द, गुरु पद भारी है।
गुरु देत ज्ञान-ध्यान, गुरु देत दान-मान,
गुरु देत मोक्ष स्थान, सदा उपकारी है।
कहत है तिलोक रिख, भली-भली देवें सीख,
पल-पल गुरु जी को, वन्दना हमारी है।

गुरु वंदन : जैसे एक दर्जी कपड़े के थान से काट-छांटकर योग्य वस्त्र तैयार कर लेता है, बढ़ई लकड़ी को सुधार लेता है, स्वर्णकार सोने की परीक्षा कर शुद्ध कर लेता है, कुंभकार

मिट्टी को सुधार कर इच्छित पात्र तैयार कर लेता है, किसान पृथ्वी को, लोहार लोहे को तथा शिल्पी पत्थर को तराशकर मूर्त्ति का निर्माण करता है वैसे ही एक गुरु शिष्य का निर्माण करता है। ऐसे उपकारी गुरु के प्रति मेरा समर्पण एवं नमस्कार है।

त्रिलोक में गुरु ही सर्वोच्च सत्ता है। गुरु ही वास्तव में मित्र है, गुरु ही माता है, गुरु ही संबंधी है और गुरु ही पिता है। गुरु ही भ्राता है और गुरु ही भूप है। सूरज, चांद, इन्द्र और पति भी गुरु है। गुरु ही ज्ञान, ध्यान, दान, मान, आनंद और मोक्ष को देने वाला है। ऐसे हितकारी और उपकारी गुरु का पद समस्त पदों में ऊंचा है। सदैव सम्यक् शिक्षाएं देने वाले गुरुदेव को पुनःपुनः वन्दन!

ऐसे गुरु महाराज! आपकी दिवस-सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो बारम्बार 1008 बार तिक्खुत्तो के पाठ से वन्दना करता हूं। हे स्वामी नाथ! आपका इस भव, पर-भव में सदाकाल शरणा हो॥5॥

Obeiscence to the Guru: The tailor cuts the cloth from the pack and by properly trimming and stitching it makes it worthy of daily use. The carpenter sets right the piece of wood. The goldsmith purifies the gold, the potter prepares pots from the earth by setting it right. The sculptor prepares the idol from the stone by chiseling it. Similarly the spiritual master trains his disciple. I have deep devotion and gratitude for such a teacher and bow to him.

In all the three worlds, the spiritual teacher commands the exalted stature. In fact he is the real friend, the true mother, the real relative and the true father. The guru is the real brother and the real ruler. He is Sun, the Moon, the Indra and the master. He provides knowledge, real meditation, proper respect, ecstatic pleasures and liberation from mundane world. His seat is the best among all and I have deep devotion and respect for him. I bow to such guru again and gain as he has always provided me worthy teachings.

Reverend Guniji! I may have committed any disrespect towards you. I seek pardon for the same by bowing to you 1008 times reciting Tikhutto aphorism. May I he blessed with your patronage in this life span and in succeeding ones.

विधि—फिर तिक्खुत्तो के पाठ से गुरु महाराज को वंदना करके निम्नलिखित पाठ खड़े होकर पढ़ें।

Procedure: Thereafter one should bow to the guru reciting Tikhutto lesson and then utter the following while standing.

सामूहिक वन्दना

अनंत चौबीसी ते नमो, सिद्ध अनंता कोड़।
केवल-ज्ञानी स्थविर सभी, वन्दौं बे कर जोड़॥1॥
दो कोड़ी केवल-धरा, विहरमान जिन बीस,
सहस्त्र युगल कोड़ी नमो, साधु वंदौं निसदीस॥2॥

श्री साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकायें, चार गति, चौबीस दंडक, चौरासी लाख जीव-योनि के साथ मैं खमाउं बार-बार तथा म्हारे जीवे कोई जीव नी विराधना करी हो, कराई हो, करतां प्रति अनुमोद्या हो तो एक-एक जीव के साथ अठारह लाख, चौबीस हजार, एक सौ बीस मिच्छा मि दुक्कडं।

अथवा

सात लाख पृथिवीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख तेउकाय, सात लाख वायुकाय, दस लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण वनस्पतिकाय, दो लाख बेन्द्रिय, दो लाख तेन्द्रिय, दो लाख चतुरिन्द्रिय, चार लाख देव, चार लाख नारकी, चार लाख तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय, चौदह लाख मनुष्य, एवं चौरासी लाख जीव-योनि में से यदि मैंने कोई जीव हनन किया हो, अन्य को मारने का उपदेश दिया हो, व हनन कर्त्ताओं की अनुमोदना की हो, वे सब मन, वचन, काय करके 18 लाख, 24 हजार, 1 सौ, बीस प्रकारे तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

I bow to infinite galaxy of twenty four Tirthankar. I bow to infinite Sadhus. I bow to all omniscents and all learned monks (Sthavirs) I bow to 20 million omniscents and 20 Viharman Tirthankar. I bow to them thousand times with folded hands. I bow to monks day and night.

I beg pardon repeatedly from monks, nuns, shravaks, (lay male devotees), lay female devotees (Shravikas), all the living beings in four states of existence, in twenty four divisions (dandaks), generating from 84 lac places of generation. In case I have caused hurt, got caused or appreciated one who caused hurt to any living beings, I feel sorry for it 1824120 times.

Or

There are seven lac types of earth-bodied living beings, seven lac of water-bodied, seven lac of fire bodied. Seven lac of air-bodied, ten lac of vegetable-bodied being having countable seeds in them and fourteen lac of vegetable-bodied beings with numberless beings in them, two lacs types of two sensed living beings, two lac

of three-sensed, two lac types of four-sensed, four lac types of gods, four lac types of hellish beings, four lac types of five-sensed animal beings and fourteen lac types of human being. Thus there are 84 lac types of places of genetic origin. In case I may have caused violence, got caused violence or appreciated, those who caused violence to any living being, I feel sorry for it mentally, verbally and physically and seek pardon for the same 1824120 times.

आयरिय सूत्र

आयरिय-उवज्झाय सीसे साहम्मिए कुले-गणे य।
जे मे केई कसाया, सव्वे तिविहेण खामेमि॥1॥

सव्वस्स समण संघस्स, भगवओ अंजलिं करिय सीसे।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि॥2॥

सव्वस्स जीवरासिस्स, भावओ धम्मनिहिय निय चित्तो।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयंपि॥3॥

भावार्थ–आचार्य, उपाध्याय, शिष्य, साधार्मिक, कुल और गण–इनके प्रति यदि मैंने कषाय भाव धारण किए हों, तो इन सभी से मैं त्रिविध–मन, वचन, काय से क्षमा मांगता हूं।

दोनो हाथ जोड़कर, मस्तक पर अंजलि स्थापित करके समस्त श्रमण-संघ से मैं अपनी भूलों के लिए क्षमा मांगता हूं एवं मैं स्वयं भी उन्हें क्षमा प्रदान करता हूं।

अपने चित्त को धर्म में स्थिर करके मैं भावपूर्वक समस्त जीवराशि (लोक में स्थित सभी जीवों) से क्षमायाचना करता हूं एवं मैं स्वयं भी सभी जीवों को क्षमा करता हूं।

Exposition: There are Acharyas, upadhyayas, pupils, co-religions persons, group of monks, of sub-group, collectively monks of several such-groups under one head. In case I may have done any thing in a fit of passion against any such person. I seek pardon mentally, verbally and physically with folded hands touching my forehead, I seek pardon for my faults from the entire order of monks, and nuns for my faults or lackings, I also grant forgiveness to them for anyy fault committed by them against me.

Keeping my mind absorbed in dharma I seek pardon from the core of my heart from all the living beings in the universe for my faults. I also grant pardon to them for any fault committed by them.

क्षमापना सूत्र

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ति मे सव्व भूएसु, वेरं मज्झं न केणइ॥
एवमहं आलोइय निंदिय गरहिय दुगंच्छियं सम्मं।
तिविहेण पडिक्कंतो, वंदामि जिणे चउवीसं॥

भावार्थ : मैं सभी जीवों को क्षमा करता हूं, सभी जीव मुझे भी क्षमा करें। सभी जीवों के प्रति मेरी मैत्री है। किसी भी जीव के प्रति मेरा वैरभाव नहीं है।

इस प्रकार मैं सभी पापों की आलोचना, निंदना गर्हा और जुगुप्सा (निन्दा अथवा घृणा) करके तीन योग–मन, वचन, काया से प्रतिक्रमण कर दोषों से निवृत्त होकर चौबीस जिनदेवों को वन्दन करता हूं।

Exposition: I pardon all the living beings All the living beings may grant pardon to me. I have love for all and have no enmity towards any one.

Thus, I criticize, condemn and curse all the sins committed by me mentally, verbally and physically and withdraw myself from all such faults. Thus, cleansing myself from effect of those faults and short comings. I bow to twenty four Tirthankars.

॥ चतुर्थ अध्ययन (प्रतिक्रमण आवश्यक) संपूर्ण ॥

|| Fourth Chapter (Pratikraman essential) Concluded ||

○○

पंचम अध्ययन : कायोत्सर्ग

आमुख :

'कायोत्सर्ग' आवश्यक का पंचम अंग है। काया और उत्सर्ग–इन दो शब्दों के संयोग से 'कायोत्सर्ग' शब्द बना है जिसका अर्थ है–शरीर का त्याग। कायोत्सर्ग शब्द का यह स्थूल अर्थ है। जीवित रहते हुए शरीर का त्याग संभव नहीं है। प्रस्तुत संदर्भ में कायोत्सर्ग का भाववाची अर्थ है–शारीरिक आसक्ति और चंचलता का त्याग करना। 'शरीर' ममत्व का प्रधान केन्द्र है। 'जीव जितने भी पाप करता है, जितनी भी क्रियाएं करता है, उनमें शारीरिक मोह की प्रमुखता होती है। कायोत्सर्ग द्वारा साधक शरीर के मोह और चंचलता पर विजय प्राप्त कर लेता है।

चतुर्थ आवश्यक 'प्रतिक्रमण' द्वारा साधक अतिचारों की आलोचना करता है। उसके बाद भी आत्मा रूपी वस्त्र पर कुछ मैल शेष रह जाता है। उसी मैल को आत्मा रूपी वस्त्र से दूर करने के लिए, विशिष्ट शुद्धि के लिए कायोत्सर्ग किया जाता है। कायोत्सर्ग से आत्मा शुद्ध, सुनिर्मल और भार-रहित हो जाती है।

गौतम स्वामी ने भगवान् से पूछा–

काउसग्गेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

भगवन्! कायोत्सर्ग से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

भगवान् ने फरमाया –

काउस्सग्गेणं तीयपडुप्पन्नं पायच्छित्तं विसोहेइ। विसुद्धपायच्छित्ते य जीवे निव्वुय हियए ओहरियभरुव्व भारवहे पसत्थज्झाणोवगए सुहंसुहेणं विहरइ। –उत्त. २९/१२

गौतम! कायोत्सर्ग से जीव अतीत और वर्तमान काल के अतिचारों का शोधन करता है। प्रायश्चित्त से विशुद्ध होकर जीव भार से मुक्त हुए भारवाहक के समान आनन्द का अनुभव करता है।

कायोत्सर्ग एवं प्रत्याख्यान आवश्यक

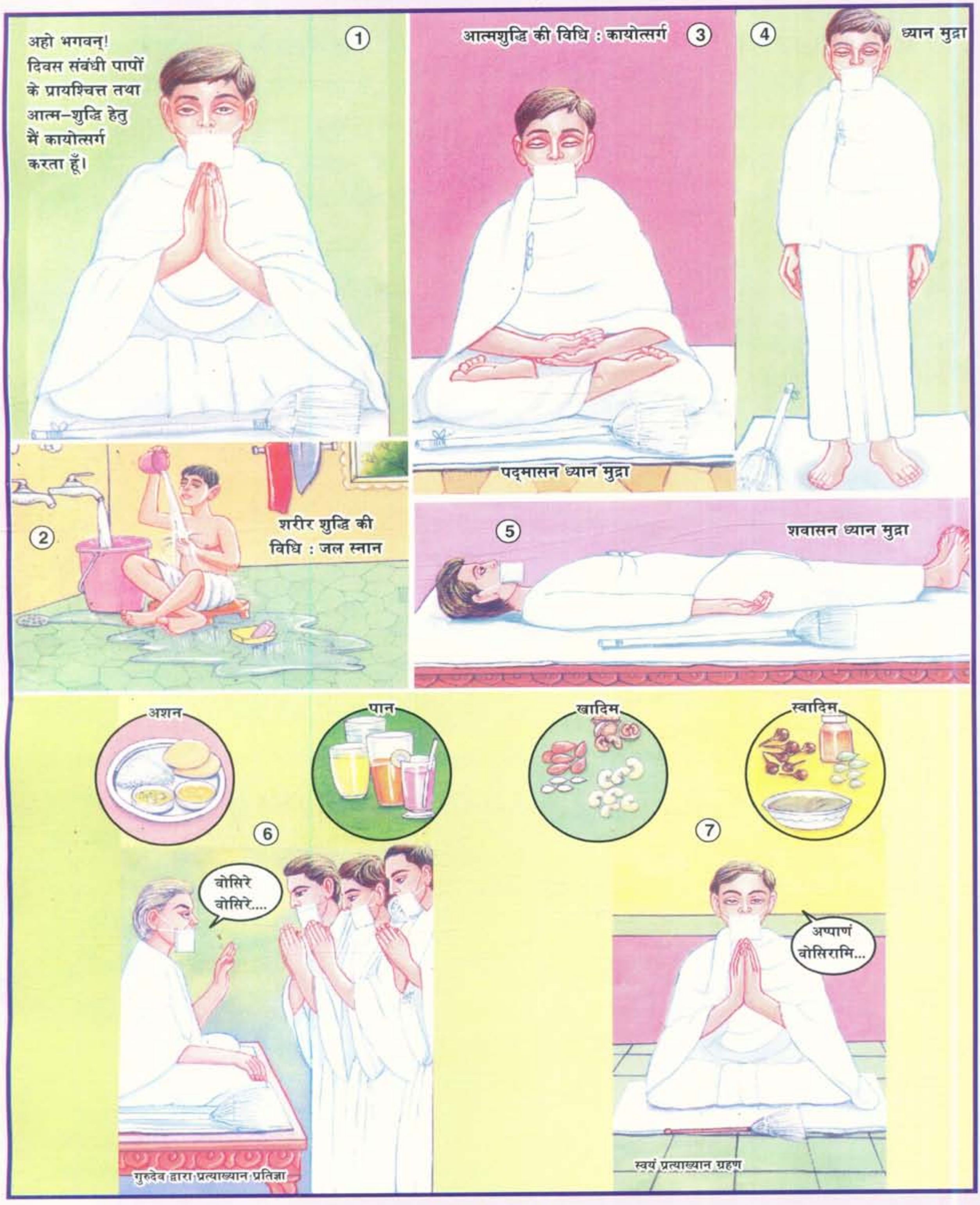

चित्र संख्या 14

चित्र-परिचय – 14

Illustration No. 14

कायोत्सर्ग एवं प्रत्याख्यान आवश्यक

कायोत्सर्ग प्रतिज्ञा सूत्र

कायोत्सर्ग का अर्थ है—स्व शरीर से ममता-मूर्च्छा भाव को त्याग कर ध्यान-मुद्रा में स्थित रहते हुए आत्मचिंतन करना अथवा अरिहंतों-भगवंतों की स्तुति करना।

– प्रथम चित्र में साधक गुरुदेव से कायोत्सर्ग में प्रवेश की अनुमति प्राप्त कर रहा है।

– तीसरे, चौथे और पांचवें चित्र में कायोत्सर्ग की तीन विधियां अथवा आसनों को दर्शाया गया है।

– दूसरा चित्र प्रतीकात्मक है जिसमें बताया गया है कि जैसे शरीर-शुद्धि के लिए जल अनिवार्य है, वैसे ही आत्म-शुद्धि के लिए कायोत्सर्ग अनिवार्य है।

प्रत्याख्यान-प्रतिज्ञा सूत्र

प्रत्याख्यान का अर्थ है—त्याग करना। प्रत्याख्यान आत्म-शुद्धि का सबल और सशक्त साधन है। नवकारसी, पोरसी से लेकर आयंबिल, उपवास एवं सुदीर्घ तपस्याओं के प्रत्याख्यान द्वारा साधक अपनी आत्मा से पाप-मलों को विलग करता है।

इनसैट चित्रों में चतुर्विध आहार (चार प्रकार की भोज्य सामग्री) को दर्शाया गया है।

छठे चित्र में शिष्य गुरु से प्रत्याख्यान की प्रतिज्ञा अंगीकार कर रहे हैं।

सातवें चित्र में साधक गुरु की अनुपस्थिति में स्वयं प्रत्याख्यान की प्रतिज्ञा अंगीकार कर रहा है।

Kayotsarg & Pratyakhayan Sutra

Sutra Regarding Resolve for Kayotsarg

Kayotsarg means to detach oneself from attachment for ones body and then to meditate on the self or meditate on praise for Arihantas.

In the first illustration, the practiser seeks permission from the spiritual master to enter in Kayotsarg.

In the third, fourth and fifth illustrations, the three procedure or postures of Kayotsarg have been depicted.

The second illustration seems as a model. It is mentioned therein that just as water for purification of the body, it is essential of discard excretion. Similarly Kayotsarg is essential for purification of soul.

Sutra regarding Resolve for Pratyakhayan

Pratyakhyan means to avoid, to discard. It is the important method of self-purification.

The practiser removes the dirt of sin from his soul by provinces such as Navkarsi upto ayambil, fast for a day and long-duration fasts.

In insets illustration, four types of articles of consumption have been depicted.

In the sixth illustration, the disciple is accepting the resolve of avoiding certain acharyas.

In the seventh illustration, in the absence of the guru, his disciple is himself undertaking the resolve of avoiding certain articles of consumption.

'कायोत्सर्ग' भेद-विज्ञान को परिपक्व बनाने वाला विशिष्ट साधन है। शरीर अलग है, आत्मा अलग है। शरीर मरणधर्मा है, आत्मा अजर, अमर, अविनाशी तत्व है। शरीर से उत्पन्न होने वाले समस्त सुख और दुख क्षणिक हैं, अज्ञान से पैदा होते हैं। जैसे ही आत्मबोध पुष्ट होता है, वैसे ही शारीरिक सुख-दुख विदा हो जाते हैं। साधक साधना में सुमेरु के समान अचल-अकंप हो जाता है। देवों, मानवों और तिर्यंचों द्वारा दिये गए उपसर्गों एवं बाईस प्रकार के परीषहों में साधक का मन न तो चलित होता है और न ही भयभीत होता है।

श्री अनुयोगद्वार सूत्र में कायोत्सर्ग को व्रण-चिकित्सा कहा गया है। उत्तम औषधि से जैसे शरीर के घाव शीघ्र ही भर जाते हैं, वैसे ही कायोत्सर्ग से आत्मा पर लगे हुए अतिचार रूपी घाव भर जाते हैं।

कायोत्सर्ग बैठकर, खड़े होकर अथवा लेट कर, इन तीनों ही अवस्थाओं में किया जा सकता है। जो साधक बैठकर कायोत्सर्ग करना चाहे उसे सुखासन या पद्मासन में बैठकर ध्यान करना चाहिए। उच्च सत्त्व साधक वीरासन, गोदुहिकासन, वज्रासन में स्थिर होकर भी कायोत्सर्ग करते हैं। खड़े होकर कायोत्सर्ग करने वाले साधक के लिए नियम है कि वह शान्त मुद्रा में खड़ा होकर दोनों बाहुओं को घुटनों की ओर फैला दे। बन्द अथवा आधी बन्द आंखें रखकर धर्म और शुक्ल ध्यान में रमण करे। लेटकर कायोत्सर्ग करने वाले साधक के लिए उचित है कि वह सीधा पृथ्वी पर लेटकर शरीर के समस्त अंगोपांगों को शिथिल कर दे। हाथों-पैरों को परस्पर अथवा शरीर से अस्पर्शित रखे।

कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ), संसार (पांच इन्द्रियों के विषय), एवं कर्म (ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्म)-इन तीनों का उत्सर्ग अर्थात् त्याग ही कायोत्सर्ग का प्रधान लक्षण है। कायोत्सर्ग की सम्यक् आराधना से साधक कषाय, संसार एवं कर्म के कान्तार से शीघ्र ही पार हो जाता है।

○○

Fifth Chapter : KAYOTSARG

Introduction

Kayotsarg is the fifth part (Chapter) of Avashyak Sutra. The word Kayotasarg is formed by joining two words—Kaya and Utsarg. It means detachment from the body. It is the broad meaning of the word Kayotsarg. While one is living it is not possible to discard the body. In this context, the meaning of Kayotsarg is to keep oneself away from attachment and tickering of the body. The physical body is the primary centre of attachment. The attachment for the body is the primary factor in all the sinful deeds and in all activities. With the practice of Kayotsarg the practitioner overcomes physical attachment and tickering.

Through fourth avashayak, the practitioner conducts self-criticism of digressions (atichar). Thereafter slight dirt still remains attached to his soul just as there is a little dirt on the cloth. In order to remove that dirt from the soul and to gain purity of high order, Kayotsarg is done. Through Kayotsarg the soul becomes pure, free from dirt and free from the load of sinful deeds.

Gautam Swami enquired from Bhagwan Mahavir about the benefit arising from Kayosarg.

The Lord replied, 'Gautam—through Kayotsarg a living being does cleansing of digressions of the past and of present period. By repentance, he becomes chaste and light just as a labourer feels happy after unloading the load. He feels unique pleasure.

Kayotsarg is the special practice that makes a person expert in the science of discrimination in between the body and the soul. Soul is separate from the body. The body is going to perish. But soul is permanent, overloading and it never becomes old. All the pleasures and pains arising in the body are transient. They arise from

ignorance. When a person becomes well-versed in the knowledge about the soul, the physical pleasures and pains start vanishing. The practiser then becomes steadfast in his spiritual practices like mountain Meru. He, then does not get affected by the troubles and turbulations caused by gods, human beings and animals. The twenty two types of troubles cause no influence on his mind. He does not get disturbed or frightened from them.

In Anuyogdwar Sutra, Kayotsarg clauses the faults arising in the soul.

Kayotsarg can be done in all the three states namely which sitti..g, standing or laying. In case a person wants to do it, while sitting he should do it in ordinary posture of sitting or in cross-legged state. The practiser of higher order do it state like that of sitting in chair (without chair), or that of milking a cow. In case a person wants do it while standing. He should bend his armes towards his knees. With half-closed or closed eyes, he should engage itself in positive meditation. In case a person wants to do it while laying, he should lay down himself straight on the ground and through suggestions make all limbs of the body inactive. He should keep this hands and feet apart the primary symptom of Kayotsarg.

In fact detachment from possesses (anger, ego, deceit and greed), detachment from activities of five senses and eight karmas (the knowledge observing karmas and the like). With the practice of Kayotsarg, a person very soon is able to overcome passion. The wandrings in the mundane would and the effect of eight types of Karmas.

○○

कायोत्सर्ग आवश्यक

आवस्सही इच्छाकारेण संदिसह भगवं। देवसी प्रायश्चित्त विशोधनार्थं करेमि काउसग्गं।

भावार्थ : हे भगवन्! आप आज्ञा प्रदान करें, मैं आवश्यक रूप से करणीय धर्मकृत्य करना चाहता हूं। दिवस संबंधी प्रायश्चित्त की विशुद्धि के लिए कायोत्सर्ग करता हूं।

विधि : तत्पश्चात् एक 'नमोकार मंत्र' पढ़े। उसके बाद क्रमशः 'करेमि भंते' 'इच्छामि ठामि' एवं 'तस्स उत्तरी' का पाठ पढ़कर 'लोगस्स' के पाठ के चिन्तन सहित कायोत्सर्ग–ध्यान करे। दैवसिक और रात्रि प्रतिक्रमण में चार, पक्खी को आठ, चातुर्मासी को बारह एवं सम्वत्सरी को बीस लोगस्स का ध्यान करना चाहिए।

'नमो अरिहंताणं' कहकर ध्यान पूर्ण करे। उसके बाद वन्दन अध्ययन में कही गई विधि के अनुसार दो बार 'इच्छामि खमासमणो' का पाठ पढ़कर पंचम आवश्यक को संपन्न करे।

॥ पंचम अध्ययन (कायोत्सर्ग आवश्यक) समाप्त ॥

Kayotsarg Avashyak (Essential)

Exposition : Hey Bhagwan ! Please allow me, I want to do the religious activities essential for the purification of day related expiation. I perform Kayotsarga.

Procedure : After it, recite "Namokar Mantra" once. Subsequently reciting the text of "Karemi Bhante", 'Ichchamithami" and "Tass Uttari" gradually along with the contemplation the text of "Loguss" meditate "Kayotsarga". The meditation on the text of "Loguss" should be done four times at day and night repentance, eight times at fortnight, twelve at rainy season and twenty times at Samvatsari repentence. Complete the meditation practice after reciting "Namokar Mantra". After it according to the method narrated in the Salutation Chapter (Vandana Adhyan) reciting the "Ichchami Khamasamano" text twice finish the fifth essential.

|| Fifth Chapter (Kayotsarg essential) Concluded ||

षष्ठ अध्ययन : प्रत्याख्यान

आमुख :

'प्रत्याख्यान' छठा और अंतिम आवश्यक है। 'सामायिक' आवश्यक की नींव है तो 'प्रत्याख्यान' उसका शिखर-कलश है। प्रत्याख्यान के अभाव में पूर्व के पांच आवश्यक अपूर्ण रह जाते हैं। प्रत्याख्यान की संपन्नता पर ही शेष पांचों आवश्यक संपन्न होते हैं। ऐसा क्यों है? ऐसा इसलिए है कि प्रत्याख्यान से ही आत्मा से कर्मरज का अंतिम अलगाव होता है। उसी अंतिम अलगाव अथवा संपूर्ण निर्जरा के पश्चात् ही आत्मा में केवलज्ञान-केवलदर्शन का आलोक प्रकट होता है।

प्रत्याख्यान का अर्थ है—त्याग। संसार में अनन्त पदार्थ हैं और मनुष्य की इच्छाएं भी अनन्त हैं। दो अनन्तों का सम्मिलन सघन असंतोष और अशांति को उत्पन्न करता है। इसीलिए देवलोक का इन्द्र और भूलोक का चक्रवर्ती भी पदार्थों के उपभोग से कभी सन्तुष्ट नहीं हो पाता। तृप्ति ही सुख है। परन्तु जीव उसे पदार्थ के उपभोग में खोजना चाहता है। यही जीव का अज्ञान है।

बुद्ध पुरुषों ने अध्यात्म की यात्रा कर इस सत्य का अनुसंधान किया कि तृप्ति पदार्थ के उपभोग से नहीं, बल्कि उसके त्याग से फलित होती है। अनुसंधान के अमृतफल के रूप में उन्होंने 'प्रत्याख्यान' का विधान किया और बताया—आत्मन्! तू अलग है, पदार्थ अलग है। पदार्थ से आत्यंतिक अलगाव ही तेरे सुख की कुंजी है।

गौतम स्वामी ने भगवान् से प्रश्न किया—

पच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

भगवन्! प्रत्याख्यान से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

भगवान् ने फरमाया—

पच्चक्खाणेणं आसवदाराइं निरुंभइ। पच्चक्खाणेणं इच्छानिरोहं जणयइ। इच्छानिरोहं गए य णं जीवे सव्वदव्वेसु विणीयतण्हे सीइभूए विहरइ। –उत्त. २९/१३

गौतम! प्रत्याख्यान के द्वारा जीव आस्रव-द्वारों को रोकता है तथा इच्छाओं का निरोध करता है। इच्छानिरोध को उपलब्ध हुआ जीव समस्त द्रव्यों में तृष्णारहित होकर परम शीतिभूत होकर विचरता है।

प्रत्याख्यान का फल है–आस्रव-द्वारों पर प्रतिबन्ध और इच्छाओं का निरोध। तत्पश्चात् इच्छा-निरोध का फल है–परमशांति। परमशांति ही प्राणिमात्र की आकांक्षा है। परन्तु यह परमशांति पदार्थ की आसक्ति से नहीं, पदार्थ की विरक्ति से प्रकट होती है।

आत्मा में अनन्त शान्ति के निधान दबे पड़े हैं। परन्तु अज्ञान के कारण आत्मा अपनी शक्ति को पहचान नहीं पाती है। छोटी-छोटी बाधाओं से वह त्रस्त हो उठती है। 'प्रत्याख्यान' के अभ्यास से आत्म-शक्ति पुनः वर्धमान बनने लगती है। प्रत्याख्यान भले ही एक नवकारसी अथवा पौरुषी का हो, उससे भी आत्मबल बढ़ने लगता है। आत्मबल की यही क्रमिक वृद्धि एक दिन साधक के भीतर संलेखना जैसी परम पात्रता को निर्मित कर देती है।

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत नवकारसी से प्रारंभ करके संलेखना सूत्र पर्यंत पाठों को ग्रहण किया गया है। अपने आत्मबल के अनुसार तथा अपने आत्मबल की निरन्तर वृद्धि हेतु साधक को समय को पहचानते हुए प्रत्याख्यानों का आचरण करना चाहिए।

○○

Sixth Chapter : PRATYAKHYAN

Introduction: Pratyakhyan is the sixth and the last avashyak. It is the canopy, the top. In the absence of pratyakhyan, earlier five avashyak are considered incomplete. Only with pratyakhyan, five earlier avashyak can be considered as properly concluded Why it so? It is because only through pratyakhyan, the karmic dirt withers away from the soul. Only after the final detachment and complete shedding, the soul is blessed with omniscience and perfect perception.

Pratyakhyan means discarding. There are infinite objects in the world. The desires of human beings are also endless. The conduct of two infinites creates madness and absence of satisfaction and peace. So, even the Indira in heaven and king emperor (Chakravarti) in the world does not feel satisfied with the worldly possessions and enjoyments. Happiness lies in satisfaction. But the living being seeks it in things of worldly enjoyment.

The enlightened persons after treading the path of spiritual uplift, found the gospel truth that real satisfaction does not lie in articles of worldly enjoyment. In fact it can be got by discarding them—by detachment from them. As a result of this research, they propounded the rule of pratyakhyan and stated, O living being! You are soul; you are separate from physical substance. The key of your real happiness lies in total detachment from worldly substances.

Gautam Swami enquired from Bhagwan Mahavir, 'O Lord! What does a living beings derive from pratyakhyan.

The lord replied, 'Gautam! Through pratyakhyan a living being stops the inflow of karmas. He subdues his desire. He then becomes free from all desires and moves about in a state of total equanimity.

The fruit of pratyakhyan shuts the gates of inflow of Karmas and overpowers the desires. Thereafter, as a result of controlling the desires, one gains everlasting peace. The ultimate goal of all living beings is to get that everlasting peace. But it can be achieved not through attachment for worldly substance. It can be procured through detachment from worldly things.

There is the colossal treasure of unending peace lying dormant in the soul. But due to ignorance the soul is not realizing its inner strength. It gets frightened due to very minor and trivial obstacles. With the practice of pratyakhyan, the inner strength of the soul starts increasing. The pratyakhyan may be of one *navakarsi* (a period of 48 minutes) or one *paurrasi* (one-fourth of the day), still it improves the spiritual power. This regular progress in the strength of the soul generates the unique ability in the practitioner in the form of Samlekhana.

In this chapter, the lesson relating to pratyakhayan beginning from *navakarsi* and culminating in *Samtekhana* have been narrated. Considering the time at his disposal, the practitioner according to the inner strength of his soul in order to develop that strength should undertake pratyakhyan.

○○

प्रत्याख्यान आवश्यक
Pratyakhyan Essential

विधि : तिक्खुत्तो के पाठ से गुरु महाराज को वन्दन करके छठे आवश्यक की आज्ञा प्राप्त करे एवं गुरुमुख से यथाशक्ति प्रत्याख्यान ग्रहण करे। प्रत्याख्यान ग्रहण करने के पश्चात् निम्नलिखित सूत्र पढ़े–

Procedure: After greeting the spiritual master with aphorism of 'Tikhutto', the practitioner should seek permission for sixth avashyak. Thereafter, he should accept pratyakhyan according to his physical strength from the 'guru'. Then, he should recite the following lesson.

सामायिक एक, चउवीसत्थव दो, वंदना तीन, पडिक्कमण चार, काउसग्ग पांच, छट्ठा पच्चक्खाण हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ थवत्थुइ मंगलं।

भावार्थ : पहला सामायिक, दूसरा चतुर्विंशतिस्तव, तीसरा वंदन, चौथा प्रतिक्रमण, पांचवां कायोत्सर्ग एवं छठा प्रत्याख्यान–ये छह आवश्यक मेरी आत्मा के लिए हितकारी, सुखकारी एवं मंगल व कल्याण के हेतु हैं (होंगे)।

तत्पश्चात् विधिपूर्वक दो बार '**नमोत्थुणं**' का पाठ पढ़े।

Exposition: For the benefit of my soul, I have practiced six things namely Samayik Chauvisatha (hymn in praise of Tirthankars), Vandana, Pratikarman, Kausagg (state of detachment from the body) and pratyakhyan. Thereafter, he recites the lesson of Namothanum twice.

प्रत्याख्यान के पाठ
Lesson of Pratyakhyan

(1) नमस्कार पूर्वक मुहूर्त्त प्रत्याख्यान सूत्र

उग्गयसूरे नमुक्कार सहियं पच्चक्खामि चउव्विहंपि आहारं–असणं पाणं खाइमं साइमं, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहस्सागारेणं वोसिरामि।

भावार्थ : सूर्य उदय होने के बाद दो घड़ी (48 मिनिट) तक के लिए नमस्कार सहित अर्थात् जब तक नमोकर मंत्र पढ़ कर प्रत्याख्यान पार न लूं तब तक के लिए अशन, पान, खादिम और स्वादिम रूप चारों प्रकार के आहार का त्याग करता हूं। अत्यन्त विस्मृति के कारण तथा सहसा कोई अन्न–जल का कण मुख में आ गिरे–इन दो आगारों के सिवाय चारों आहारों का त्याग करता हूं।

Navakarsi—After sunrise, I undertake pratyakhyan that I shall not take any food, liquid, sweets or fragrant thing. Thus, I discard these things for 48 minutes till I shall recite *Namokar mantra*. The only exceptions are that due to extreme loss of memory I may not forget this resolve or suddenly any particle or drop of water may drop in my mouth. With said exceptions, I make a resolve for not taking any of the four types of articles of consumption for the above mentioned period.

विवेचन : इस प्रत्याख्यान में 'नमोक्कार-सहित' जो पद जुड़ा है उसी के कारण इसे 'नवकारसी' कहा जाता है। साधक प्रतिज्ञा करता है कि जब तक नमोकार मंत्र न पढ़ लूं तब तक मेरा प्रत्याख्यान पूर्ण नहीं होगा। इसमें समय संबंधी कोई संकेत नहीं दिया गया है। परन्तु परम्परागत मान्यतानुसार इस प्रत्याख्यान के लिए दो घड़ी का समय सर्वत्र मान्य है।

अशनादि पदों का अर्थ है–

(1) **अशन**–रोटी, चावल, हलवा, पूड़ी आदि अन्न से उत्पन्न होने वाले पदार्थ।

(2) **पान**–दूध, लस्सी, जूस, जल आदि समस्त पेय पदार्थ। तिविहार, चौविहार आदि प्रत्याख्यानों तथा तपों में 'पान' शब्द से केवल जल का ही ग्रहण करना चाहिए।

(3) **खादिम**–बादाम, अखरोट आदि सूखे मेवे।

(4) **स्वादिम**–मुख को स्वादिष्ट करने वाले लौंग, इलायची, चूरन, चटनी आदि।

आगार–आगार का अर्थ है–छूट। नवकारसी में दो आगार रखे गए हैं–

(क) अनाभोग–प्रत्याख्यान की विस्मृति हो जाने पर कुछ खा लेना अनाभोग नामक आगार है। स्मरण होते ही तत्क्षण भोजन बन्द कर देना चाहिए और मुख में रहे हुए अन्न कणों को यतनापूर्वक थूक देना चाहिए। स्मरण होने पद भी भोजन बन्द नहीं किया जाए तो प्रत्याख्यान भंग हो जाता है।

(ख) सहसाकार–अचानक अन्न या जल का कण मुंह में आ गिरे, इससे भी प्रत्याख्यान भंग नहीं होता।

Exposition—This resolve is called Navakarsi because in it there is mention of Namokar. The practitioner makes a resolve that the period of his resolve shall not be considered as concluded till he recites namokar mantra. In it there is no indication about the period but it is traditionally accepted at all places that this resolve is for 48 minutes.

The literal meaning of '*ashan*' and the like is as under:

1. **Ashan**—It means loaf, rice, flour preparations such as *halwa*, *cake*, *bread* etc.
2. **Paan—**It means liquids such as milk, whey, juice, water and the like. In fast wherein three type of articles of consumption are avoided, paan stands for water only and therein only water can be taken.
3. **Khaadim**—It means dry fruit such as almonds, walnut and the like.
4. **Svadim—**It means those things which make the mouth fragrant such as sance, cardamom, ilaichi, clones and the like.

Aagar

It means that which is allowed in navakarsi. There are only two aagars.

A. **Anabhog**—It means if any thing is consumed forgetting that one has made a resolve for this austerity. When one recollects his austerity, he should immediately stop consuming that article and spit out that one which is in his mouth. In case even after recollection of the particular fast, it is still consumed, the fast is considered to be broken.

B. **Sahsakar—**It means if suddenly a particle of food or a drop of water enters the mouth the fast is not considered as broken in that situation.

पौरुषी प्रत्याख्यान सूत्र

उग्गयसूरे पोरिसिं पच्चक्खामि, चउव्विहंपि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहस्सागारेणं पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं साहु-वयणेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

भावार्थ : सूर्य उदय के पश्चात् पौरुषी (एक प्रहर दिन चढ़े) पर्यंत अशन, पान, खादिम और स्वादिम, इन चारों प्रकार के आहार का प्रत्याख्यान करता हूं। अनाभोग, सहसाकार प्रच्छन्नकाल, दिशामोह, साधुवचन एवं सर्व समाधि प्रत्ययाकार–इन छह आगारों के सिवाय चारों आहारों का त्याग करता हूं।

Exposition : I make a resolve that I shell not take any article of consumption out of the four types namely food, liquids, dry fruits and articles providing sweat, fragrance in the mouth from sunrise upto a quarter of the day. My resolve mat not be considered adversely affected in six conditions namely when I take anything totally forgetting the resolve, suddenly any particle of food or liquid drops in my mouth, the sun is not properly visible (Pachhann Kalenum), ignorance about east, west direction (disha mohenum) and an article is consumed in the state when a monk says that quarter of the day is over while it is not, and in a state of sudden unbearable condition any article is consumed (Sarv Samadhi pratyakhyan).

विवेचन : पौरुषी का अर्थ है – पुरुष प्रमाण छाया। प्रहर दिन चढ़ने पर पुरुष की छाया कम होते-होते उसके शरीर प्रमाण लंबी रह जाती है। शरीर प्रमाण छाया के गणित से अभिव्यंजित होने से एक प्रहर के प्रत्याख्यान को पौरुषी कहा जाता है। इस प्रत्याख्यान के छह आगार हैं–

(1) **अनाभोग**, (2) **सहसाकार**–इनके अर्थ पूर्व लिख दिए गए हैं। (3) **प्रच्छन्नकाल**–बदलों आदि के कारण सूर्य के ढक जाने से ठीक-ठीक समय का बोध न होने से प्रत्याख्यान को पूर्ण समझ कर कुछ खा लेना। (4) **दिशामोह**–दिशाभ्रम होने से–पश्चिम दिशा को पूर्व दिशा मानकर पौरुषी का काल पूर्ण होने से पूर्व ही अशनादि खा लेना। (5) **साधु-वचन**–साधु द्वारा 'पौरुषी आ गई है' ऐसा कहने पर पौरुषी न आने पर भी आहार ग्रहण कर लेना। (6) **सर्व-समाधि प्रत्ययाकार**–अचानक तीव्र शूल आदि का शरीर में प्रकोप होने पर औषधि आदि को ग्रहण करना।

Exposition: Paurushi literally means shadow upto the height of a person. When from sunrise a quarter of the day is over, the shadow of a person is upto the length

of his body. So pratyakhyan upto this period is called paurushi. Five digressions are allowed in this resolve.

1. **Anabhog, 2. Sahsakar.** They have been explained earlier.
3. ***Pachchann kaal***—When the sun is covered by clouds and the like and one consumes any thing before his pratyakhyan is concluded without properly understanding about the time at that juncture.
4. ***Dishamehenum***—Misunderstanding about the direction—In case west is taken as east something is consumed before the completion of period of resolve.
5. ***Sadhu Vachan***—In case a monk says that paurushi is over and something is consumed although later it is found that paurushi was not complete as yet.
6. ***Sarva Samadhi Pratyakar***—In case of suddenly fever or pain in body, take medicine etc.

सार्ध पौरुषी प्रत्याख्यान सूत्र

उग्गयसूरे साड्ढपोरिसिं पच्चक्खामि, चउव्विहंपि आहारं–असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसा-मोहेणं, साहु- वयणेणं, सव्व-समाहिवत्तियागारेणं, वोसिरामि।

(**संकेत**–सार्धपौरुषी का अर्थ है–डेढ पौरुषी। अर्थात् डेढ प्रहर दिन चढ़े तक चारों आहारों का इसमें त्याग किया जाता है। पौरुषी के समान ही इसमें भी छह आगार हैं।)

Introduction: Saardh Paurushi means one and a half paurushi. In other words resolve about not consuming any of the earlier mentioned four types of articles of consumption upto a period of one and a half quarter of the day. In it also six digressions are allowed just as in the paurushi pratyakhyan.

पूर्वार्द्ध-प्रत्याख्यान सूत्र

उग्गयसूरे पुरिमड्ढं पच्चक्खामि चउव्विहंपि आहारं असणं, पाणं, खाइमं, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, महत्तरा-गारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, वोसिरामि।

संकेत–पूर्वार्द्ध का अर्थ है–दो प्रहर दिन चढ़े तक। दिवस के प्रथम दो प्रहरों के लिए इसमें चारों आहारों का त्याग किया जाता है। इस प्रत्याख्यान के सात आगार हैं। छह पूर्वोक्त आगार हैं। सप्तम आगार है–**महत्तरागारेणं**। महत्तर का अर्थ है–आचार्य, उपाध्याय आदि संघ के प्रमुख की आज्ञा से किसी रोगी, ग्लान, वृद्ध आदि की सेवा के लिए समय से पूर्व ही प्रत्याख्यान पूर्ण कर लेना।

Introduction: Poorvardh means two quarters of the day. In this pratyakhyan, consumption of articles is avoided during the first two quarters of the day. Seven digressions are allowed in it. Six are the same as earlier mentioned and the seventh is *mahattaragarnum*. Mahattar means Acharya, Upadhyaya or the head of the local religions organization. In case with their permission, the pratyakhyan is broken before its period is over in order to serve any patient, handicapped or extremely old person, it is not considered as a break in pratyakhyan.

निर्विकृतिक प्रत्याख्यान सूत्र

विगइओ पच्चक्खामि, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसा-गारेणं, लेवालेवेणं, गिहत्थ-संसट्ठेणं, उक्खित्त-विवेगेणं, पडुच्चमक्खिएणं, पारिठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, वोसिरामि।

भावार्थ : मैं विगयों–विकृतियों का प्रत्याख्यान करता हूं। अनाभोग, सहसाकार, लेपालेप, गृहस्थसंसृष्ट, उत्क्षिप्तविवेक, प्रतीत्यम्रक्षित, पारिष्ठापनिक, महत्तराकार, एवं सर्वसमाधि प्रत्ययाकार–इन नौ आगारों के सिवाय विकृतियों का त्याग करता हूं।

Exposition: I discard articles that cause *vikriti* (disturbances or ill thoughts) in the body. In this pratyakhyan nine exceptions (digressions) are allowed. They are *Anabhog, Sahsakar, Lepalep, Grihasth Sansrisht, Utshipt vivek, Pratityaprakshit, Parishthapanik, Mahettarakar and Sarva Samadhi Pratyakar.*

विवेचन : मन में विकार भावों को बढ़ाने वाले दूध, दही, घृत, गुड़, तेल आदि पदार्थों को विगय अथवा विकृति कहा जाता है।

साधक आत्मिक स्वास्थ्य के लिए आहार करता है, स्वाद या दैहिक बलवृद्धि के लिए नहीं। दूध, घी आदि पदार्थों के नियमित सेवन से शारीरिक बल में वृद्धि होती है। शारीरिक सबलता बहुत बार ब्रह्मचर्य आदि नियमों के पालन में बाधा बन जाती है इसलिए साधक के लिए आवश्यक है कि वह समय-समय पर विकृतियों के त्याग से अपने मन और शरीर व स्वाद पर नियंत्रण का अंकुश लगाता रहे।

इस प्रत्याख्यान के नौ आगार हैं। इनमें से (1) **अनाभोग**, (2) **सहसाकार**, (3) **महत्तराकार** एवं (4) **सर्वसमाधिप्रत्ययाकार**, इन आगारों का अर्थ पूर्व सूत्रों में किया जा चुका है। शेष आगारों का अर्थ इस प्रकार है–

लेपालेप–लेप और अलेप इन दो शब्दों के योग से बने लेपालेप शब्द का अर्थ है – पहले घृत आदि से लिप्त पदार्थ को बाद में पोंछकर लेप रहित कर देना। पोंछ देने पर भी घृत आदि का कुछ अंश शेष रह ही जाता है। ऐसा लेपालेप आहार विकृति के त्यागी साधु के लिए लेना दोषप्रद नहीं है।

गृहस्थ-संसृष्ट–चिकनाई युक्त पात्र में रुखा आहार डालकर देने से उस आहार पर चिकनाई का कुछ अंश लग जाता है। ऐसा अति अल्प चिकनाई के स्पर्श वाला आहार विगय के प्रत्याख्यानी साधक के लिए ग्राह्य है।

उत्क्षिप्त-विवेक–गुड-शक्कर आदि विकृति वाले पदार्थों पर रखी गई शुष्क रोटी, विवेक पूर्वक उक्त पदार्थों पर से उठाकर-अलग करके, विकृति का प्रत्याख्यानी साधक ग्रहण कर सकता है। परन्तु ऐसा आपवादिक स्थिति में ही होना चाहिए, नियमित नहीं।

प्रतीत्यम्रक्षित–स्वल्प चुपड़ी हुई रोटी आदि पदार्थ विगय के प्रत्याख्यानी साधक के लिए अपवाद स्थिति में ग्राह्य हैं।

पारिष्ठापनिक–लाया हुआ विगय संपन्न आहार सभी साधुओं को बांट देने पर भी शेष बच जाए तो वह पारिष्ठापनिक कहलाता है। विगय का प्रत्याख्यानी साधु गुरु के कहने पर उक्त आहार को खा सकता है। इससे गुरु की आज्ञा का पालन तो होता ही है, साथ ही आहार के परठने से होने वाली संभावित हिंसा से भी रक्षा होती है।

Explanation: The articles such as milk, curd, ghee, brown sugar, oil and the like are called Vigaya or Vikriti or they are considered to he generating bad reflections in the mind.

A practitioner consumes articles for spiritual health and not for taste or physical strength. Regular consumption of milk, ghee and the like increases physical strength. Many times it disturbs observing the rule of celibacy. So, it is essential for practitioner of spirituality that he should control the sensitivity of his mind, body and taste by occasionally dropping vikritis from his articles of consumption.

There are nine digressions which are permitted in this pratyakhyan. Out of them the meaning of **1. Anabhog, 2. Sahsakar, 3. Mehattarakar, 4. Sarv Samadhi Pratyakar** has been given earlier. The meaning of other exceptions are as under:

Lepalep: This word is formed by combination of two words lep and alep. The word lep means an article besmeared with ghee and the like while alep means from which ghee etc. has been removed by wiping it. Even after this, some part of ghee still remains on it. Such a lapalep article of consumption is not considered faulty for a monk who has taken this now of not taking Vikriti.

Grihasth-Samsrisht: In case a dry matter is put in a pot that is greasy, some grease sticks to that article. Such an article which contains very little grease can be accepted by the person who is practicing this pratyakhyan.

Utkshipt-Vivek: A dry loaf placed on *gur*, brown sugar and the like which are articles causing ill feelings, is picked up from there discriminately, can be accepted by the practitioner of this pratyakhyan if offered. But it should be only in exceptional circumstances and not regularly.

Pritityamrakshit : Such an article which contains very little grease can be accepted by the person who is exceptional in pratyakhyan.

Parishthapanikar: In case some food still remains after distribution among the monks out of the food collected as alms, it is called parishthapanik. When directed by the guru, the monk who is practicing his pratyakhyan can consume that food. Such a step results in obeying the order of the guru. Simultaneously it helps in avoiding violence to living being which is likely if it is thrown at a place.

एकासन युक्त विगय प्रत्याख्यान सूत्र

उग्गयसूरे निविगइ एकासणं पच्चक्खामि, तिविहंपि आहारं–असणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, लेवालेवेणं, गिहत्थसंसट्ठेणं, उक्खित्त-विवेगेणं, पडुच्च- मक्खिएणं, पारिठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तिआगारेणं वोसिरामि॥

भावार्थ : सूर्य उदय से लेकर विगय परित्याग युक्त एकासन की आराधना हेतु, अशन, खादिम और स्वादिम रूप त्रिविध आहार का त्याग करता हूं। अनाभोग, सहसाकार, लेपालेप, गृहस्थ-संसृष्ट, उत्क्षिप्त विवेक, प्रतीत्यम्रक्षित, पारिष्ठापनिकाकार, महत्तराकार एवं सर्व-समाधि प्रत्ययाकार उक्त नौ आगारों के सिवाय आहार का त्याग करता हूं।

Exposition: In order to observe ekaasan fast in which meals is taken only once from sunrise avoiding all such food which is likely to generate passion. I detach myself from three types of articles of consumption namely food, dry fruit and articles

of fragrance for the mouth. In this resolve nine exceptions are allowed. They are: 1. Anabhog, 2. Sahasakar, 3. Lepalep, 4. Grihasth Samsrisht, 5. Utkshipt Vivek, 6. Prateetya prakshet, 7. Parishthapanikar, 8. Mahattarakar and 9. Sarv Samadhi Pratyayakar.

संकेत : प्रस्तुत "एकासन युक्त विगय प्रत्याख्यान" में दिन में एक बार एक ही आसन पर स्थिर होकर विगय रहित आहार का उपयोग किया जाता है। सूत्र में आए हुए आगारों का अर्थ पूर्व प्रत्याख्यानों में किया जा चुका है।

Indication: In this pratyakhan food is taken only once in the day and that also sitting still at one place. The meaning of nine exception has already been explained earlier.

एकासन प्रत्याख्यान सूत्र

उग्गयसूरे एगासणं पच्चक्खामि, तिविहंपि आहारं असणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, सागारियागारेणं, आउट्टणपसारेणं, गुरुअब्भुट्ठाणेणं, पारिठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि॥

भावार्थ : सूर्य उदय से लेकर एकासन तप अंगीकार करता हूं। उसके लिए अशन, खादिम एवं स्वादिम रूप त्रिविध आहार का त्याग करता हूं। अनाभोग, सहसाकार, सागारिकाकार, आकुञ्चन-प्रसारण, गुर्वभ्युत्थान, पारिष्ठापनिकाकार, महत्तराकार एवं सर्वसमाधिप्रत्ययाकार–इन आठ आगारों के सिवाय आहार का त्याग करता हूं।

Exposition: I accept ekasan austerity from sunrise. So, I detach myself from three types of articles of consumption namely food, dry food and articles of fragrance for mouth. In it there are eight exceptions namely thing consumed in absence of recollection of the resolve (anabhog), an article suddenly dropping in the mouth (Sahasakar), Sagarikakar (moving to another place while consuming the thing as a householder comes there) aakuncham prasaram (moving hand and feet during consumption), guruabhyutham (getting up as a mark of respect when senior monks come there) Paarishthapanikakar, Mahattarakar (bowing when so directed by the guru) and Sarva Samadhi Pratyayakar. (Keeping oneself in state of equanimity)

विवेचन : एकासन को एकाशन भी कहा जाता है। एकासन का अर्थ है–एक आसन पर स्थिर रहकर भोजन करना। एकाशन का अर्थ है–दिन में एक ही बार भोजन करना। अर्थ की दृष्टि से दोनों शब्द सार्थक एवं अपने अभिधेय को स्पष्ट करने वाले हैं।

प्रस्तुत सूत्र में सागारिकाकार, आकुंचन-प्रसारण एवं गुर्वभ्युत्थान—इन तीन नवीन आगारों का उल्लेख है। इनके भावार्थ पूज्य आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज ने इस प्रकार किये हैं—

सागारियागारेणं—सागारिक शब्द का अर्थ है गृहस्थ। साधु को गृहस्थ के सामने भोजन नहीं करना चाहिये, अतः परिस्थितिवश यदि साधु-साध्वी को गृहस्थ के आ जाने पर एक स्थान पर बैठ कर ही भोजन करने की प्रतिज्ञा करके भी यदि उठना पड़ जाय तो इस से एकासन-व्रती साधु-साध्वी का व्रत भंग नहीं होता।

यह सूत्र एकासन-व्रती गृहस्थ भी पढ़ता है, अतः गृहस्थ पक्ष में सागारिक शब्द का अर्थ ऐसा व्यक्ति होता है जो स्वभावतः क्रोधी, लम्पट एवं अन्य अवगुणों से युक्त हो। ऐसे व्यक्ति के आने पर एकासन व्रती गृहस्थ एकासन की प्रतिज्ञा होते हुए भी अन्यत्र जाकर भोजन कर सकता है, इससे उसका व्रत भंग नहीं होता।

आउंटण-पसारणेणं—(आकुंचन-प्रसारणेन)—एकासना व्रती साधक भोजन करते समय हाथ-पैर आदि अंगों को हिला-चला कर यदि अवस्थान- स्थिति को बदल लेता है तो उसका व्रत भंग नहीं होता, परन्तु उसे उस स्थान से उठना नहीं चाहिये।

गुरु-अब्भुट्ठाणेणं—(गुर्वभ्युत्थानेन)—गुरु जनों—पूज्य जनों के आ जाने पर यदि एकासन व्रती साधक उनके सम्मानार्थ उठ कर खड़ा हो जाता है तो भी उसका व्रत-भंग नहीं होता।

प्रस्तुत सूत्र को यदि गृहस्थ पढ़े तो उसे **"पारिट्ठावणियागारेणं"** यह पाठ नहीं पढ़ना चाहिये, क्योंकि उसके लिये यह आगार विहित नहीं है।

Exposition: Ekasan is also called ekashan, Ekasan means to sit firm at one place in one position while taking meals, Ekashan means to take meals only once during the day. So both the words are almost synonymous.

In this sutra there are three new exceptions namely Sagarikar, Aakunchan-prasaran and Gurvbhayathunum. Acharaya Atmaram Ji Maharaj has interpreted them as under:

Sagariyagaarenum: The word Sagarik means a householder. A monk should not consume anything in presence of the householder. In case there arises a situation when a monk or nun who has taken the pratyakhan to take meals, sitting at one place, moves away from there on the arrival of a householder, his resolve may not be considered as disturbed.

The sutra is recited even by a householder when he practices ekasan. So, in case of such a householder, the word Sagarik shell mean arrival of such a person

who is in a state of anger or lust or who has any such bad qualities. The householder who is practicing ekasana can move from his place of taking meals to another place on the arrival of such a person and his resolve shall not considered as disturbed or adversely affected.

Aauntan-pasarenum (Aakunchan-pasarenum)—In case a person practicing vow of ekasan while taking meals moving his hand, feet and other limbs of the body changes that place or position, his vow shall not be considered as broken. But he should not get up from that place during meals.

Guru-abhuthanenum—In case the practitioner of ekasan resolve stands up on the arrival of senior monk as a monk of respect for them, his vow shall not be considered disturbed.

In case a householder observing ekasana recites this sutra, he should not utter **'parithavaniyagarenum'** since this exception is not allowed for him.

एकस्थान (एकलठाणा) प्रत्याख्यान सूत्र

उग्गयसूरे एगलठाणं पच्चक्खामि, तिविहंपि आहारं–असणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, सागारियागारेणं, गुरुअब्भुट्ठाणेणं, पारिठा-वणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि॥

भावार्थ : सूर्योदय के पश्चात् एक स्थान पर एक ही मुद्रा में बैठकर किए जाने वाले एकासन व्रत की प्रतिज्ञा अंगीकार करता हूं। उसके लिए अशन, खादिम एवं स्वादिम रूपी तीन प्रकार के आहार का त्याग करता हूं।

अनाभोग, सहसाकार, सागारिकाकार, गुर्वभ्युत्थान, पारिष्ठापनिकाकार, महत्तराकार एवं सर्वसमाधिप्रत्ययाकार–इन सात आगारों के सिवाय समस्त आहार का त्याग करता हूं।

Exposition: I undertake a resolve that after sunrise I shall take meals only once and at one place sitting in one portion. I detract myself from three types of articles of consumption namely food, dry fruits and articles of fragrance.

In it there are seven exceptions namely—Anabhog, Sahasakar, Sagarikakar, Gurvabhayathun, Paristhapanikakar, Mahattarakar and Sarv Samadhi Pratyayakar.

विवेचन : एकासन एवं एक-स्थान सूत्र में इतना अन्तर है कि एकासन में जहां भोजन करते हुए शरीर के अंगों को संकोचा और पसारा जा सकता है, वहां एकस्थान सूत्र में ऐसा

नहीं किया जाता। इसमें भोजन करते हुए साधक स्थिर मुद्रा में स्थित रहता है। केवल दाहिने हाथ एवं मुख से ही आहार-क्रिया की जाती है। शेष अंगोपांग स्थिर रखे जाते हैं। इसीलिए इस सूत्र में "आकुंचन-प्रसारण" नामक आगार नहीं रखा गया है।

In Ekasan, the practiser can stretch or withdraw him limb while taking food. But in Ekasthaan he cannot do so. He shall have to remain stable in his position while eating. He can take meals only with his right hand and the right side of his mouth. The other limits remain stationary. So the exception of stretching and withdrawing limbs is not mentioned in this.

आयम्बिल प्रत्याख्यान सूत्र

उग्गयसूरे आंबिलं पच्चक्खामि, तिविहंपि आहारं–असणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, लेवालेवेणं, गिहत्थ-संसट्ठेणं, उक्खित्तविवेगेणं, पारिठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, पाणस्स, लेवेण वा, अलेवेण वा, अच्छेण वा, बहुलेवेण वा, ससित्थेण वा, असित्थेण वा वोसिरामि।

भावार्थ : सूर्य उदय होने पर आयंबिल (आचाम्लतप) व्रत की आराधना करता हूं। उसके लिए त्रिविध आहार–अशन, खादिम और स्वादिम का प्रत्याख्यान करता हूं। अनाभोग, सहसाकार, लेपालेप, गृहस्थ-संसृष्ट, उत्क्षिप्त-विवेक, पारिष्ठापनिकाकार, महत्तराकार, सर्वसमाधि प्रत्ययाकार (ये आठ आगार आहार-संबंधी हैं।) एवं जल की अपेक्षा से लेपकृत, अलेपकृत, अच्छ, बहुलेप, ससिक्थ एवं असिक्थ–उक्त आगारों के अतिरिक्त समस्त आहार-पानी का परित्याग करता हूं।

विवेचन : आयम्बिल अथवा आचाम्ल व्रत में दिन में एक बार रूखा-सूखा, विगय रहित एवं नमक-मिर्च आदि समस्त रसों से रहित भोजन ग्रहण किया जाता है। अन्न की एक ही जाति से आयंबिल किया जाता है। आयंबिल की उत्कृष्ट आराधना के लिए विशिष्ट साधक रोटी को जल में भिगोकर उदरस्थ करता है।

प्रस्तुत सूत्र में अशन, खादिम और स्वादिम संबंधी आठ आगारों का अर्थ पूर्व सूत्रों में किया जा चुका है। इस सूत्र में जल संबंधी छह आगारों का भी वर्णन है। उनका स्वरूप इस प्रकार है–

(1) **लेपकृत**–इमली, खजूर, द्राक्षा आदि का जल एवं दाल आदि का मांड जिसका लेप पात्र में शेष रह जाता है, ऐसा जल लेपकृत कहलाता है। आचाम्ल व्रती के लिए यह जल ग्राह्य है।

(2) **अलेपकृत**–धोवन आदि ऐसा जल जिसका लेप पात्र में शेष न रहे। छाछ का निथरा हुआ जल एवं कांजी आदि का जल भी अलेपकृत में गिना जाता है।

(3) **अच्छ**–अर्थात् गरम किया हुआ शुद्ध प्रासुक जल।

(4) **बहुलेप अथवा बहल**–जौं, चावल आदि का ऐसा जल जिसका पात्र पर अधिक लेप लगता है, बहुलेप कहलाता है। जौं, चावल तिल आदि के चिक्कण मांड को 'बहल' भी कहा जाता है।

(5) **ससिक्थ**–ऐसा जल जिसमें आटे के कुछ कण शेष रह गए हैं।

(6) **असिक्थ**–आटे आदि के कणों वाला वह धोवन जिसे छान कर रखा गया हो, जिसमें आटे के कण विद्यमान न हों, ऐसा जल असिक्थ कहलाता है।

आयंबिल में उक्त छह प्रकार के जल के सिवाय शेष सभी प्रकार के जलों का प्रत्याख्यान किया जाता है।

Explanation: In *ayambil* meals is taken only once in the day and that should be dry and without any query (Vigay) material. It should not certain any salt or chilly and the like that generate taste. It is practiced with only one type of article of food. For the extreme practice of this austerity, the practitioner soaks the loaf in water and then devours it.

The literal meaning of eight exceptions pertaining to food has already been given in earlier Sutras. There are six exceptions pertaining to water also. Their nature is as follows:

1. **Lepakrit:** Water containing tamarind, date palm, dry grapes and the thick liquid of cooked pulse a part of which remains stuck to the pot is called lepakrit water. Practitioner of ayambil can take that water.
2. **Alepakrit:** The water resulting from cleaning of utensils a part of which does not remain sticking to the pot or the water at the top of whey is called alepakrit.
3. **Acheh:** It means pure boiled water.
4. **Bahulep or Bahal:** Barley water, rice water and the like that sticks more to the pot is called bahulep. The sticky grand (liquid) of barley, rice, til and the like is called bahal.
5. **Sasikt:** It is that water which contains some particles of flour.
6. **Asikth:** It is the water resulting from kneading of flour from which particles of flour have been removed through the sieve.

चौविहार उपवास सूत्र

उग्गयसूरे अभत्तट्ठं पच्चक्खामि, चउविहंपि आहारं–असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पारिठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्ति-आगारेणं वोसिरामि।

सूर्य के उदय होने से लेकर अभक्तार्थ अर्थात् उपवास की प्रतिज्ञा अंगीकार करता हूं। उसके लिए अशन, पान, खादिम और स्वादिम–चारों प्रकार के आहार का त्याग करता हूं। अनाभोग, सहसाकार, पारिष्ठापनिकाकार, महत्तराकार एवं सर्वसमाधिप्रत्ययाकार–उक्त पांच आगारों के सिवाय सभी प्रकार के आहार-पानी का त्याग करता हूं।

I undertake a resolve to accept fast since sunrise. I discard all the four types of article of consumption namely food, liquids, dry fruit and fragrant substances. Only five exceptions are in this resolve namely Anabhog, Sahasakar, Parishthapanikar, Mahattarakar and Sarva Samadhi Pratyayakar.

विवेचन : अभत्तट्ठं का संस्कृत रूप है–**अभक्तार्थं**। भक्त का अर्थ है भोजन। जिस साधना में किसी भी प्रकार के भोजन का कोई प्रयोजन न हो उसे अभक्तार्थ कहते हैं।

पूज्य आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज के अनुसार–उपवास से प्रथम दिन एवं उपवास के आगामी दिन यदि एकाशना करनी है तो 'अभत्तट्ठं' के स्थान पर 'चउत्थभत्तं अभत्तट्ठं' पाठ पढ़ना चाहिए।

Exposition: In Sanskrit, the word *abhattathum* is interpreted as abhaktarthum. Bhakt means food. The austerity in which food of any type is taken is called *abhaktarth.*

According to Acharya Atmaram Ji, in case ekasana is observed on the day preceding this austerity and also on the day succeeding it the word 'Chauthebhattum abhattathum should be recited in the sutra instead of abhattathum.

तिविहार उपवास सूत्र

उग्गयसूरे अभत्तट्ठं पच्चक्खामि, तिविहंपि आहारं–असणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, पारिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्व-समाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

भावार्थ : सूर्योदय होने पर मैं उपवास की आराधना हेतु अशन, खादिम एवं स्वादिम–उक्त त्रिविध आहारों का त्याग करता हूं। अनाभोग, सहसाकार पारिष्ठापनिकाकार, महत्तराकार एवं सर्वसमाधिप्रत्ययाकार–इन पांच आगारों के सिवाय सभी आहारों का त्याग करता हूं।

Explanation: At sunrise, for the practice of fast (Upavas), I discard three types of food namely *ashan*, dry fruit and articles of fragrant taste. There are five exception namely Anabhog, Sahasakar, Parishthapanikar, Mahattarakar and Sarva Samadhi Pratyayakar.

संकेत : सूत्र में आए हुए आगारों का अर्थ पूर्व सूत्रों में आ चुका है। चौविहार उपवास में जल ग्रहण नहीं किया जाता, तिविहार उपवास में जल ग्राह्य होता है।

Indication: The meaning of the exceptions has been explained in earlier sutràs.

In chauvihar fast, even water is not taken while in tivihar fast, water can be accepted for consumption.

पानाहार पौरुषी प्रत्याख्यान सूत्र

उग्गयसूरे पाणाहार-पोरिसिं पच्चक्खामि, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, पाणस्स लेवेण वा, अलेवेण वा, अच्छेण वा, बहुलेवेण वा, ससित्थेण वा, असित्थेण वा वोसिरामि।

भावार्थ : सूर्योदय से लेकर पौरुषी अर्थात् एक प्रहर के लिए जल का त्याग करता हूं। अनाभोग, सहसाकार, प्रच्छन्नकाल, दिशामोह, साधुवचन, महत्तराकार, सर्वसमाधिप्रत्ययाकार, जल की अपेक्षा से लेपकृत, अलेपकृत, अच्छ, बहुलेप, ससिक्थ एवं असिक्थ–उक्त आगारों के अतिरिक्त सभी प्रकार के जलों का त्याग करता हूं।

संकेत : प्रस्तुत सूत्र में आए हुए सभी आगारों का अर्थ पूर्व सूत्रों में किया जा चुका है।

Explanation: From sunrise for a period of one quarter of the day I avoid water. In it the exception are Anabhog, Sahasakar, Prachchann Kaal, Dishamoh, Sadhu Vachan, Mahattarakar, Sarva Samadhi Pratyayakar and in the context of water they are lepakrit, alepakrit, acheh, bahulep, sasikth and asikth.

The meaning of all the above mentioned exceptions has been given in earlier sutras.

दिवसचरिम प्रत्याख्यान सूत्र

दिवसचरिमं पच्चक्खामि, चउव्विहंपि आहारं–असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

भावार्थ : दिन के अंतिम भाग में सूर्यास्त पर्यंत अशन, पान, खादिम और स्वादिम रूप चतुर्विध आहार का त्याग करता हूं। अनाभोग, सहसाकार, महत्तराकार, सर्वसमाधिप्रत्ययाकार–इन आगारों के सिवाय सभी प्रकार के आहार-पानी का परित्याग करता हूं।

Explanation: In the last quarter of the day. I resolve not to consume any of the four articles of consumption namely food, liquids, dry fruit and fragrant tasty substances all sunset. The only exception in things consumed is due to faulty memory of resolve, sudden dropping in mouth, consumption to obey order of the employer and samehi pratyayakar.

विवेचन : साधु रात्रि-भोजन का सर्वथा त्यागी होता है। दिन के अंतिम प्रहर में सूर्यास्त से पूर्व ही साधु आहार-पानी से निवृत्त हो जाता है। आहार-पानी से निवृत्ति से लेकर सूर्यास्त तक के शेष समय का त्याग में उपयोग करने के लिए साधु दिवस चरिम प्रत्याख्यान को अंगीकार करता है। इसीलिए इस सूत्र में अनाभोग, सहसाकार, सर्वसमाधि आदि आगारों का उल्लेख है। रात्रि-भोजन के त्याग में तो साधु के लिए किसी भी आगार की अनुमति नहीं है।

Exposition: A monk is already non-taker of any food and liquid in the last quarter of the day before sunset. In order to discriminate during the remaining period till sunset, he accepts the pratiyakhyan of divasacharim. Si, in this aphorism exceptions namely Anabhog, Sahasakar, Mahattarakar, Sarva Samadhi and the like have been mentioned. In respect of not taking any food at night there is no exception for the monk.

विशेष : इसी सूत्र के द्वारा भवचरम प्रत्याख्यान अर्थात् जीवन भर के लिए आहार-पानी के त्याग (संथारे) का भी संकल्प ग्रहण किया जाता है। यदि भवचरम (संथारे) का प्रत्याख्यान अंगीकार करना हो तो "दिवसचरिमं" के स्थान पर " भवचरिमं" पद का उच्चारण करना चाहिए।

Note: With this very aphorism, the pratyakhyan till the end of life (bhavecharam) about articles of consumption of food and water is also undertaken (it is santhara). In case the resolve is till end of life, the word bhava-charam should be pronounced instead of divasacharim.

अभिग्रह सूत्र

गंट्ठिसहियं अभिग्गहं (अहवा मुट्ठिसहियं अभिग्गहं) पच्चक्खामि, चउव्विहंपि आहारं–असणं, पाणं, खाइमं, साइमं। अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

भावार्थ : ग्रंथि-सहित (अथवा मुष्टि-सहित) अभिग्रह व्रत ग्रहण करता हूं। फलतः अशन, पान, खादिम एवं स्वादिम रूपी चारों आहारों का त्याग करता हूं। अनाभोग, सहसाकार, महत्तराकार, एवं सर्वसमाधिप्रत्ययाकार–इन चार आगारों के सिवाय अभिग्रह की संपन्नता तक चारों प्रकार के आहार का त्याग करता हूं।

Explanation: I make a resolve with abhigreh such as knot or fist. Sir, I discard all the four types of articles of consumption namely food, liquids, dry fruit and fragrance for taste. The laxity in it is only in respect of Anabhog, Sahasakar, Mahattarakar, Sarva Samadhi pratyayakar. With three conceptions I resolve not to take anything till the conclusion of my abhigreh.

विवेचन : अभिग्रह जैन पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ है–संकल्प या प्रतिज्ञा करना। कर्मों की विशिष्ट निर्जरा के लिए अभिग्रह व्रत धारण किया जाता है। तपस्या की समाप्ति पर, अथवा बिना तपस्या के भी साधक अपने मन में संकल्प धारण कर लेता है कि अमुक-अमुक बातों/बोलों/स्थितियों का संयोग होने पर ही मैं आहार-पानी ग्रहण करूंगा, अन्यथा अमुक अवधि तक निराहार रहूंगा।

प्रस्तुत सूत्र में संकेत मात्र के लिए गंठी, मुट्ठी शब्दों का व्यवहार हुआ है। गंट्ठिसहियं का अर्थ है–ग्रंथिसहित। साधक किसी वस्त्र या डोरे में गांठ बांध कर संकल्प करता है कि जब तक यह गांठ नहीं खोलूंगा तब तक के लिए आहार–पानी ग्रहण नहीं करूंगा।

मुट्ठिसहियं–मुष्टि-सहित। साधक अपनी मुट्ठी बन्द करके संकल्प लेता है कि जब तक मुट्ठी नहीं खोलूंगा तब तक अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगा।

अभिग्रहों की संख्या निश्चित नहीं है। साधक के अपने चित्त पर अभिग्रह का प्रारूप निर्भर है। इसमें संदेह नहीं है कि अभिग्रह एक कठिन साधना है। धीर-वीर साधक ही इसे अंगीकार करते हैं। परन्तु यह भी आवश्यक है कि अपने धैर्य और पराक्रम के अनुरूप ही साधक को अभिग्रह अंगीकार करना चाहिए।

Exposition: Abhigreh is a particular word in Jain philosophy. It means resolve, or determination. For special shedding of Kamas, abhigreh is undertaken. The

practitioner after the conclusion of his austerity or even without any austerity such as fast, makes a resolve in his mind that he shall take food and water only when all the conditions and situations as mentally contemplated are fully fulfilled. Otherwise he shall remain without food till a particular period enunciated in the resolve.

In this sutra the words knot, as mentioned are just an indication. The word *ganthi-sahiyum* means with a knot. The practitioner tying a knot in a piece of cloth or in a thread (or string) makes a resolve that he shall not consume any foodstuff or liquid till he does not untie that know.

Muthi-sahiyam is with fist. The practitioner closing the fist makes a resolve not to consume anything till the fist is not opened.

There is no definite number of abhigrehs. The nature of abhigreh depends on the mental set up of the practitioner. There is no doubt that abhigreh is a hard ascetic practice. Only forbearant practitioner accepts it but it is also essential that the practitioner should contemplate the abhigreh according to his patience and courage.

देशावकाशिक अभिग्रह सूत्र

देसावगासियं उवभोगं परिभोगं पच्चक्खामि, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं वोसिरामि।

भावार्थ : देशावकाशिक व्रत की आराधना के लिए उपभोग-परिभोग के पदार्थों का प्रत्याख्यान करता हूं। अनाभोग, सहसाकार एवं महत्तराकार—उक्त आगारों के साथ परिमाण की हुई वस्तुओं का परित्याग करता हूं।

Explanation: I undertake vow of discarding articles of consumption and of frequent use in order to practice deshavakashik resolve. The exceptions shell be Anabhog, Sahasakar and Mahattarakar.

विवेचन : 'देशावकाशिक' श्रावक का दसवां व्रत है। इस व्रत का अभिधेय है—जीवन भर के लिए भोगोपभोग की जिन वस्तुओं का परिमाण किया है, पुन: विशिष्ट त्याग भावना हेतु उन वस्तुओं का प्रतिदिन परिमाण करना। उदाहरण के लिए—जैसे श्रावक जी ने जीवन-भर के लिए प्रतिज्ञा की है कि मैं प्रतिदिन दस लीटर जल से स्नान करूंगा, उससे अधिक जल का उपयोग नहीं करूंगा। यह जीवन-भर के लिए त्याग है। पुन: श्रावक विशेष त्यागभाव हेतु प्रात: उठकर निश्चय करता है कि आज मैं पांच लीटर जल से ही स्नान करूंगा, उससे अधिक नहीं।

"देशावकाशिक व्रत" धारण की गई प्रतिज्ञाओं में विशेष उल्लास उत्पन्न करता है।

एक ही बार उपयोग में आने वाली वस्तुएं यथा–अन्न, फल आदि उपभोग कहलाती हैं। पुनः पुनः उपयोग में आने वाली वस्तुएं यथा–वस्त्र, पात्र आदि परिभोग कहलाती हैं।

Exposition: Deshavkashik is the tenth vow of a shrawak. In brief the purpose of this vow is that the practitioner again fixes a limit of the articles of his use reducing there number as compared to that which he had earlier fixed for his entire life. Fir instance a shravak has made a resolve that throughout life he shall take bath only with ten litre of water and not more than that this resolve is for entire life-span. Again for special resolve getting up in the morning he decides that he shall take bath only with five litre on that days and not more than that.

Deshavakashik vow generates special effort in earlier resolves.

The articles which can be consumed only once are called upabhog. They are food articles, fruit etc. The articles which can be used again and again are called paribhog. They are cloth, pot and the like.

प्रत्याख्यान पारणा सूत्र

उग्गए सूरे नमुक्कार सहियं[1] पच्चक्खाणं कयं तं पच्चक्खाणं सम्मं काएणं, न फासियं, न पालियं, न तीरियं, न किट्टियं, न सोहियं, न आराहियं, न आणाए, अणुपालियं न भवइ, तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

भावार्थ : सूर्योदय होने पर जो नमस्कार सहित ...... प्रत्याख्यान किया था, उस प्रत्याख्यान को यदि मैंने (मन–वचन) काया द्वारा सम्यक् रूप से स्पर्शित, पालित, तीरित (तीर्ण), कीर्तित, शोधित एवं आराधित न किया हो, तथा आज्ञा की अनुपालना न की हो, तो उससे उत्पन्न दुष्कृत मेरे लिए मिथ्या हो।

Exposition: At the time of sunrise, I had made a resolve with Namaskar. In case mentally, verbally or physically I have not properly practiced it, followed it, completed it, discriminately attended to it, properly relished it for any fault committed in its practice. I feel sorry for the same and pray that my faults may be condoned.

विवेचन : सभी प्रकार के प्रत्याख्यानों के पारणे के लिए प्रस्तुत सूत्र का पठन किया जाता है। ध्यान रहे कि 'नमुक्कार सहियं' पद के स्थान पर इष्ट प्रत्याख्यान का नाम लेना चाहिए।

---

1. "नमुक्कार सहियं" इस पद के स्थान पर जो भी प्रत्याख्यान ग्रहण किया हो, उसका उच्चारण करना चाहिए।

उदाहरण के लिए–यदि पौरुषी का पारणा करना हो तो कहना चाहिए–'पोरुसीपच्चक्खाणं कयं'।

स्पर्शित, पालित आदि प्रत्याख्यान के छह अंगों के अभिधेयार्थ इस प्रकार हैं–

(1) **स्पर्शित**–प्रवचनसारोद्धारवृत्ति के अनुसार स्पर्शित से तात्पर्य है गुरुमुख से अथवा स्वयं ही सविधि प्रत्याख्यान अंगीकार करना। आचार्य हरिभद्र के अनुसार–स्वीकार किए हुए प्रत्याख्यान को बीच में खण्डित न करते हुए शुद्ध भावना से पालन करना।

(2) **पालित**–प्रत्याख्यान को पुनः पुनः उपयोग में लाकर सावधानी पूर्वक उसकी रक्षा करना।

(3) **शोधित**–प्रत्याख्यान में कोई दोष लग जाए तो तत्क्षण उसकी शुद्धि कर लेना। सोहियं का संस्कृत रूप शोभित भी होता है। उसके अनुसार गुरुओं, साधार्मिकों, अथवा अतिथियों को भोजन प्रदान करके स्वयं भोजन करना।

(4) **तीरित**–ग्रहण किए हुए प्रत्याख्यान को तीर–पूर्णता तक पहुंचाना, अथवा प्रत्याख्यान का समय पूरा हो जाने पर भी संतोष पूर्वक कुछ समय ठहरकर भोजन करना।

(5) **कीर्तित**–प्रत्याख्यान की पूर्ति पर भोजन प्रारंभ करने से पूर्व प्रत्याख्यान को विचार कर प्रमोदपूर्ण भाव से अथवा उत्कीर्तनपूर्वक कहना कि मैंने अमुक प्रत्याख्यान अमुक रूप से अंगीकार किया था, वह विधि सहित सम्पन्न हो गया है। इस प्रकार प्रत्याख्यान को स्मरण कर प्रसन्न होना।

(6) **आराधित**–समस्त दोषों से दूर रहते हुए विधि सहित प्रत्याख्यान की आराधना करना।

सूत्र में आए हुए अणुपालियं–अनुपालित का अर्थ है तीर्थंकर भगवन्तों की आज्ञा का पुनः पुनः स्मरण करते हुए प्रत्याख्यान का पालन करना।

Explnation: This aphorism is recited at the conclusion of every pratyakhyan. It should be kept in mind that instead of 'Namukkar Sahiyam' the name of the pratyakhyan concerned should be uttered—for instance at the conclusion of paurushi pratyakhyan, the word paurushi pratyakhyan should be uttered.

Six words, sparshit, paalit and the like mentioned in the aphorism can be interpreted as follows:

1. Sparshit: According to '*pravachan sarodhar vrithi*' the word sparshit denotes that the pratyakhan should either be accepted from the guru or by practitioner himself in proper manner.

According to Acharya Haribhadra the accepted pratyakhyan should not be diluted during that period and it should be practiced with proper contemplation.

2. Paalit: The pratyakhyan should he again and again recollected and it should be practiced carefully.

3. Shodhit: In case any fault is committed in practice of pratyakhyan it should be purified immediately. In Sanskrit sahiyum also means shobhit. It means one should take meals only after serving teachers, colleagues and guests.

4. Tearit: It means to be careful till the completion of the resolve. It also means that after the completion of pratyakhyan, one should wait for same time before consuming any thing.

5. Keertit: It means that after the fulfillment of the resolve and before taking meals, contemplating about the resolve one should in a state of pleasure or excitement say 'I had made the resove in certain form and it has been concluded properly' Recollecting the resolve in such a manner one should feel happy.

6. Aaradhit: It means practicing the resolve according to the code avoiding all the likely faults.

The word anupalit—anupaliyum in the aphorism means to recollect the command of the Tirthankar again and again while practicing the resolve.

अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना सूत्र

विधि–अपच्छिम-मारणन्तिय-संलेहणा समए पोसहसालं पडिलेहित्ता, पोसहसालं पमज्जित्ता, उच्चार-पासवण-भूमिं पडिलेहित्ता, गमणागमणं पडिक्कमित्ता, दब्भ-संथारं संथारित्ता दुरूहित्ता य उत्तरपुरत्थिम-दिसाभिमुहे संपलियंकाइ आसणे निसीइत्ता, करयल-परिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वएज्जा–

भावार्थ : आयु कर्म को स्वल्प जानकर अथवा मृत्यु को सन्निकट जानकर साधक मारणान्तिक (मृत्यु-पर्यंत) अठारह पापों और चारों प्रकार के आहार का त्याग करने के लिए संलेखना महाव्रत अंगीकार करता है। उसके लिए वह पूर्व तैयारी करता है, यथा–अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना के समय साधक पौषधशाला की प्रतिलेखना करता है। प्रतिलेखना करके पौषधशाला का प्रमार्जन करता है। उसके बाद मल-मूत्र त्यागने की भूमि की प्रतिलेखना करता है। तत्पश्चात् गमनागमन क्रिया का प्रतिक्रमण करके उत्तर-पूर्व दिशा में मुख करके दर्भ संस्तारक

(सूखी घास या पराल का बिछौना) पर पर्यंकादि आसन में आसीन होता है। उसके बाद दोनों हाथ जोड़कर, दशों अंगुलियों को मस्तक पर स्थापित करके इस प्रकार कहता है–

Explanation: The resolve for samlekhana is undertaken when noticing that the age-determining kama is at its fag end or the death is close by. One detaches oneself from eighteen types of sins and four types of articles of consumption. For this purpose he prepares himself in advance. At the time of the resolve for marnantik samlekhana, the practitioner discriminately examines the place (paushadhshala) and properly cleans it thereafter. Then he examines the place meant for call of nature and disposal of excreta, urine and the like. Thereafter, he examines his activity relating to movement, Facing north-east he discriminately examines the dry grass meant for his bedding. He sits in a particular bedding. He sits in a particular state, then folding his hand and touching the forehead with all the ten fingers, he says as under—

नमस्कार सूत्र

नमोऽत्थु णं अरिहंताणं, भगवन्ताणं, जाव संपत्ताणं, नमोऽत्थु णं मम धम्मायरियस्स जाव संपाविउ-कामस्स-वन्दामि णं भगवन्तं तत्थगयं इहगए पासउ मे।

भावार्थ : अरिहंतों-भगवन्तों को मेरा नमस्कार हो, यावत् उन सभी उत्तम आत्माओं को जो मुक्ति प्राप्त कर चुके हैं, मेरा नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य को यावत् मोक्ष की आराधना में संलग्न सभी मोक्षाभिलाषी साधकों को मेरा नमस्कार हो। मोक्ष धाम में विराजमान सिद्ध भगवान् एवं इस भूमण्डल में विहरमान मेरे धर्माचार्य मुझे देखें–अर्थात् मुझ पर कृपा-दृष्टि करें।

I pay my obeisance to reverend arihantas and all those great souls who have already attained liberation. I bow to my spiritual master and all such practitioners of the path lending to salvation I bow to all the Siddhas who are in moksha area. The Viharman. Tirthankars in this world, and my spiritual master may bless me. In other words they may look after me.

आलोचना सूत्र

तत्थगए इहगयं त्ति कट्टु वन्दित्ता एवं नमंसित्ता वइज्जा–भगवं पुव्विं मए जाणि वयाणि चिन्नाणि, ताणि आलोइत्ता पडिक्कमित्ता निंदित्ता निसल्ली होऊण सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि, सव्वं मोसावायं, सव्वं-अदिन्नादाणं, सव्वं मेहुणं, सव्वं परिग्गहं,

सव्वं कोहं, जाव सव्वं मिच्छा-दंसणसल्लं, अकरणिज्जं जोगं पच्चक्खामि, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अन्नं न समणुजाणेमि, मणसा, वयसा, कायसा, सव्वं, असणं, पाणं, खाइमं, साइमं चउव्विहंपि आहारं पच्चक्खामि, जावज्जीवाए। जं पि य इमं सरीरं इट्ठं, कंतं, पियं, मणुण्णं, मणामं, धिज्जं, विसासियं, संमयं, अणुमयं, बहुमयं, भण्ड-करण्डय-समाणं, रयण-करण्डभूयं, मा णं सीअं, मा णं उण्हं, मा णं खुहा, मा णं पिवासा, मा णं वाला, मा णं चोरा, मा णं दंसा, मा णं मसगा, मा णं वाहियं, पित्तियं, संभियं, सन्निवाइयं, विविहा रोगायंका-परिसहो-वसग्गा न फुसंतु, त्ति कट्टु एवं पिय णं चरिमेहिं उस्सास-निस्सासेहिं वोसिरामि, त्ति कट्टु संलेहणा झूसणाए देहं झोसित्ता कालं अणवकंखमाणे विहरामि। एवं मए सद्दहणा, परूवणा, अणसणावसरे पत्ते, अणसणे कए फासणाए सुद्धा हविज्जा, एवं अपच्छिम-मारणन्तिय-संलेहणा झूसणा आराहणाए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तं जहा–इहलोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्प-ओगे, कामभोगासंसप्पओगे तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : "अरिहन्त और सिद्ध भगवान् मुझ पर कृपा करें।" इस प्रकार अरिहन्तों-सिद्धों को वन्दन करके ऐसा कहे–अहो भगवन्! पूर्व में मैंने जितने भी व्रत आचरण किए हैं उनमें यदि दोष लगे हैं तो उनकी आलोचना, निन्दा और प्रतिक्रमण करता हूं। पुनः निःशल्य (माया, निदान एवं मिथ्यादर्शन रूपी कांटों से मुक्ति हेतु) होने के लिए सभी प्रकार की हिंसा का परित्याग करता हूं। सभी प्रकार के असत्य, सभी प्रकार के चौर्य कर्म, सभी प्रकार के मैथुन, सभी प्रकार के परिग्रह, सभी प्रकार के क्रोध यावत् मिथ्या दर्शन शल्य पर्यंत अठारह ही पापों का तथा न करने योग्य कार्यों एवं इन्द्रिय व्यापारों का परित्याग करता हूं। मैं जीवन भर तीन योगों–मन, वचन एवं काय से उपरोक्त अठारह पापों का न स्वयं सेवन करूंगा, न किसी को सेवन करने के लिए प्रेरित करूंगा और सेवन करने वालों को अच्छा भी नहीं मानूंगा। सभी प्रकार के अशन, पान, खादिम और स्वादिम रूप चारों आहारों का जीवन-भर के लिए परित्याग करता हूं।

मेरा यह शरीर जो कि मुझे इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मनाम, धैर्य-पात्र, विश्वासपात्र, सम्मत, अनुमत, बहुमत एवं आभूषणों तथा रत्नों के पिटारे के समान प्रिय रहा है, मैं सदैव सावधान रहा हूं कि इसे शीत का प्रकोप न हो, गरमी न लगे, भूख न लगे, प्यास परेशान न करे, सर्प आदि न डसें, चोर न सताएं, डांस-मच्छर आदि न दंसें, वात्त-पित्त-कफ-सन्निपात आदि विविध रोगातंक, बाईस परीषह तथा उपसर्ग इसका स्पर्श न करें। इस प्रकार पालित-पोषित और रक्षित अपने इस शरीर का अंतिम श्वास-प्रश्वास तक के लिए परित्याग करता हूं। इस प्रकार संलेखना

द्वारा कर्मों की निर्जरा के लिए जीवन और मृत्यु की इच्छा-अनिच्छा से मुक्त रहकर विचरूंगा। इस प्रकार मेरी श्रद्धा एवं प्ररूपणा है। अनशन का अवसर प्राप्त कर अनशन करके स्पर्शना द्वारा आत्म-शुद्धि करे।

कर्मक्षय करने वाली संलेखना-साधना के पांच अतिचार हैं जिन्हें जानना तो चाहिए पर उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे पांच अतिचार इस प्रकार हैं-(1) इस लोक संबंधी आकांक्षा, (2) परलोक संबंधी आकांक्षा, (3) मान-सम्मान की कामना हेतु अधिक दिन जीने की आकांक्षा, (4) कष्टों से घबराकर शीघ्र मृत्यु की आकांक्षा करना, एवं (5) आगामी भव में काम-भोगों की आकांक्षा रखना। संलेखना साधना की अवधि में मैंने यदि उपरोक्त अतिचारों का सेवन किया हो तो तत्संबंधी मेरा दुष्कृत-दुश्चिन्तन मिथ्या हो।

Explanation: After bowing to Arihantas and Siddhas he says as under:

'Blessed ones! I feel sorry for all the faults that I may have committed in the practice of all the resolves (vows). I condemn them and withdraw myself from them. May I be detached from all the thorns (namely deceit, nidaan and wrong faith) and for this purpose, I discard all types of violence I discard all type of falsehood, stealing, cohabitation, attachments, anger, ego and the like upto wrong faith. I discard all such activities that are undesirable and all activities relating to senses. Throughout my life I shall not mentally verbally or physically practice eighteen types of sins myself and ask anyone to commit such sins. I shell not even appreciate such acts committed by others. I withdraw myself from four types of articles of consumption namely solids, liquids, dry fruits and articles of fragrant taste for entire life-span. My physical body is liked by me. It is beautiful, loveable, trustworthy and desirable to me like a box of jewels. I have always taken precaution to protect it from drastic heat and cold, hunger and thirst, snake bite, thieves, mosquitoes, various types of disease and from imbalance in elements in the body, twenty two disturbances (Parishahs), and natural calamities. So far, I have looked after my body and taken care of it. Now I discard it till the last breath of my life. So, in order to shed karmas through samlekhama, I detaching myself from any desire or detraction for life or death. I shall spend the remaining period in this manner. This is my inner faith and its expression. At the time of fast one may desire self-purification by resorting to fast.

The practice of samlakhana destroys the Karmas attached to the soul and there are five likely digressions. One should know them but not allow them in his life. They are as follows:

1. Desire relating to the current life

2. Desire relating to the next life

3. Desire to live for more days in order to get appreciation

4. Desire to die early feeling disturbed by troubles

5. Desire to enjoy sexual pleasures in the next life. I feel sorry and condemn myself for the same that. I may have committed any one of the above mentioned digression during the period of samlakhana.

विवेचन : जैन श्रमण का संपूर्ण जीवन साधनामय होता है। दीक्षा के प्रथम क्षण से लेकर जीवन के अंतिम क्षण तक वह ग्रहण किए गए मूलगुणों एवं उत्तरगुणों की सम्यक् आराधना में तल्लीन रहता है। जिस प्रकार एक श्रेष्ठी अपनी संचित संपत्ति की सुरक्षा एवं वृद्धि में सदैव संलग्न और सावधान रहता है वैसे ही श्रमण भी ग्रहण किए गए व्रतों की सुरक्षा और आत्मगुणों की वृद्धि में सतत संलग्न और सावधान रहता है। ग्रहण किए हुए व्रतों में किंचित् भी स्खलना होती है तो वह तत्क्षण प्रतिक्रमण, आलोचना एवं प्रायश्चित्त द्वारा उस स्खलना की शुद्धि कर लेता है। सतत आत्मशुद्धि करते हुए श्रमण अपनी आत्मा पर लगी हुई अनादिकालीन कर्म-कालिमा को धो लेता है। कर्म-कालिमा के धुलने से आत्मा के ज्ञानादि गुण स्वत: प्रकट हो जाते हैं। स्फटिक मणि की भाँति साधक की आत्मा स्वच्छ और सुनिर्मल हो जाती है। ऐसी अवस्था में साधक जीवन के मोह और मृत्यु के भय से अतीत हो जाता है। चार घनघाती कर्मों का जब तक समग्रतया उन्मूलन नहीं होता, तब तक साधक निरंतर तप और ध्यान में संलग्न रहता है।

साधना पथ पर चलते-चलते यदि शरीर शिथिल हो जाए, आयुष्य-कर्म संक्षिप्त रह जाए तो साधक आगमोक्त विधि-विधान से शरीर-त्याग के लिए प्रस्तुत होता है। साधारण संसारी प्राणी मृत्यु के समय भयभीत होते हैं, रोते-कल्पते हैं, मृत्यु से बचने के लिए वैद्यों-हकीमों-डॉक्टरों की शरण में जाते हैं, यथासंभव औषधादि का उपयोग करते हैं। परंतु आयुष्य-कर्म यदि पूर्ण हो चुका है तो कोई भी साधन मृत्यु से रक्षा नहीं कर सकता।

मृत्यु का प्रसंग साधक के समक्ष भी उपस्थित होता है। परन्तु मृत्यु के प्रसंग पर साधक के हृदय में भय की संक्षिप्त-सी रेखा भी नहीं उभरती। क्यों? क्योंकि उसने अपने समग्र जीवन को धर्मकला से सजाया-संवारा है, भय और भय के कारणों का अन्वेषण करके उनका निरशन किया है। भय के कारण ही विलीन हो जाएं तो फिर भय कैसा?

साधक महोत्सव पूर्वक मरण का वरण करता है। उसका मरण, मरण नहीं, बल्कि मृत्यु-महोत्सव कहलाता है। जीवन के प्रत्येक प्रसंग पर रहने वाली प्रसन्नता, मृत्यु के क्षण में

भी उसके हृदय और आनन पर विराजमान रहती है। संसारी को मृत्यु बलात् खींचकर ले जाती है जबकि साधक संलेखना के माध्यम से मृत्यु से गुजरता है। संलेखना 'मृत्यु महोत्सव' की महान विधि है। यूं तो साधक दिवसान्त और निशान्त–इन दोनों संध्याओं में प्रतिदिन अपने दोषों का निरीक्षण और प्रक्षालन करता है, परन्तु जीवनान्त पर की जाने वाली संलेखना के माध्यम से वह समग्र जीवन में लगे हुए दोषों का विहंगम दृष्टि से निरीक्षण और प्रक्षालन करता है। इसीलिए इसे 'अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना' कहा गया है।

पश्चिम का अर्थ है–अस्त होना। अपश्चिम का अर्थ है–ऐसा अस्त, जिसके पश्चात् पुन: अस्त न होना पड़े। अर्थात् ऐसा मरण जिसके पश्चात् पुन: मरना न पड़े।

धर्म-साधना हेतु मानव-शरीर सर्वश्रेष्ठ साधन है। जैन श्रमण धर्म-साधना में शरीर का पूर्ण उपयोग करता है। साधना करते-करते शरीर जब शिथिल हो जाता है, भारस्वरूप प्रतीत होने लगता है, तब मृत्यु को सन्निकट जानकर साधक विशेष आराधना हेतु तैयारी करता है। उसी तैयारी का नाम संलेखना है।

सम्यक् प्रकार से आलेखन–आत्मावलोकन–आत्मालोचन का नाम है संलेखना। संलेखना की संपूर्ण विधि सूत्र के मूल पदों में ही स्पष्ट है। उक्त विधि के अनुसार संपूर्ण तैयारी के साथ साधक मृत्यु की आकांक्षा एवं जीवन की अनाकांक्षा, अथवा जीवन की आकांक्षा एवं मृत्यु की अनाकांक्षा से मुक्त होकर समाधि भाव में तल्लीन हो जाता है। समाधि की उस बेला में अनादिकालीन कर्म-राशि जलकर भस्मीभूत हो जाती है। उत्कृष्ट समाधि-भावों में विहार करते हुए साधक नश्वर देह का विसर्जन कर देता है।

आत्मकल्याण के अभिप्सु प्रत्येक साधक के हृदय में संलेखना की अभिप्सा होती है। उसी अभिप्सा के कारण वह प्रतिदिन दोनों संध्याओं में 'अपश्चिम मारणांतिक संलेखना' की स्वाध्याय करता है और कामना करता है कि जीवनान्त की बेला में उसे संलेखना की स्पर्शना का सुअवसर प्राप्त हो।

Exposition: The entire life of a Jain mendicant is that of spiritual practice. He remains absorbed meticulously in practice of major vows and supplementary vows right from the very moment of initiation in monkhood upto the very fag end of his life. Just as a nobleman always remains engaged in protection of his wealth and its further development, similarly Shraman remains engaged and is meticulously careful in practice of his vows, and developments of virtues of his self. In case any deviation occurs in the practice of his vows, he immediately sets it right through pratikraman, self-criticism and atonement. Through continuous self-purifications the Jain monk

washes his soul shedding Kammas attached to it since time immoral. When the kammic dirt is washed off, the virtues latent in the soul appear themselves spontaneously. The soul of the practitioner shines like pure jewel and becomes purified. In this state the spiritual practitioner becomes free of attachment and fear of death. He remains engaged continuously in ascetic austerities and meditation till he completely uproots all the karmas that malign the soul.

While practicing austerities, if the physical body becomes weak and the age-determining Kama is almost at its end, the spiritual practitioner prepares himself for discarding the body in the manner defined in the ascetic code. The lay men feel frightened at the time of death. They weap and cry. They go to doctors, medical practitioners, physicians in order to avoid death. They also take medicines as far as possible. But no treatment can save them from claws of death in case their age-determining Kamas is at its fag end.

The spiritual practitioner also faces the stage of death. But at that time he does not have even an iota of fear in his heart and face. It is because his entire life is embodiment of spiritual practice.

Medium of Samlekhane

Samlekhane is the worthy procedure of festival of death. The spiritual practitioner normally practices it daily at sunrise and sunset. After discovering the fear and its causes, he has made it ineffective. When the causes of fear are eliminated, he does not commit sin.

The spiritual practitioner attends to his death like a festival. His death is not an end of life. It is rather called the festival of death. The happiness appearing at every event in life remains evident on his face and in his heart even at the time of death. The demon of death can take away the worldly man but the spiritual practitioner passes through death in a state of samlekhana. Samlekhane is the grand procedure of the festival of death. Normally a spiritual practitioner daily at both the end points namely sunset and sunrise examines his faults and repents for them to cleanse them. But through samlekhana at the fag end of his life, he discriminately looks into the faults and digression committed during the entire life and through intropection and self-criticism he washes them away. So it is called the final samlekhane at the end of the life-spam 'Apashchim marnantik samlekhane'.

Pashchim means the end. Apashchim means such an end after which no end occurs again. It means such a death after which one does not have to die again.

The human body is the best medium for spiritual practice. A Jain monk make full use of his body in spiritual practice. When the body becomes weak as a result of spiritual practices and appears like a burden, then considering that death is very near the practitioner, he special practice prepares himself. Such a preparation is called Samlekhane.

To examine in a proper manner—to examine the self critically is called samlekhane. The entire procedure of samlekhane is crystal clear in the aphorism. Following the special procedure the spiritual practitioner with complete preparation liberating himself from any desire for death or dislike for life and any desire for life or dislike for death, becomes deeply engaged in a state of equanimity. In that period of equanimious state the karmas of endless period turn into an ash and wither away. While engaged in highest state of equanimity the spiritual practitioner discards his attachment for physical body.

Every spiritual practitioner engaged in self-realisation has a latent desire in his heart that he may be blessed with samlekhane. So, daily both the time he recites the lesson 'apashchim marnnantik samlekhane', so, that at the fag end of his life he may be blessed with the opportunity to go through samlekhana.

॥ श्री आवश्यक सूत्र संपूर्ण ॥

|| Aavashyak Sutra Concluded ||

ॐ

आवश्यक सूत्र

श्रावक प्रतिक्रमण

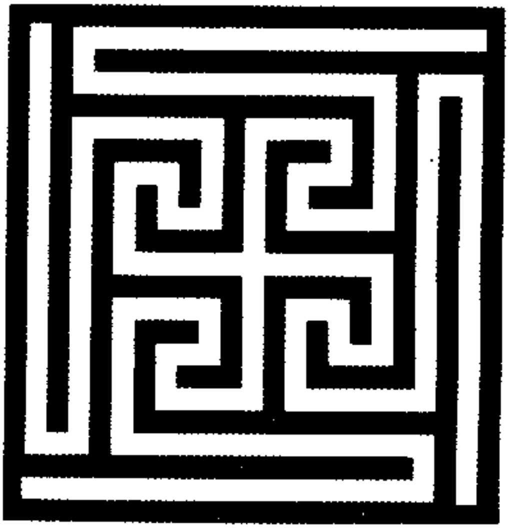

आवश्यक सूत्र : श्रावक प्रतिक्रमण

Avashyak Sutra : Shravak Pratikraman

प्रथम आवश्यक (First Aavashyak)

विधि : सर्वप्रथम गुरु महाराज को तिक्खुत्तो के पाठ से सविधि वन्दन करके चतुर्शितिस्तव की आज्ञा लेकर सम्यक्त्व की शुद्धि के लिए आगे कहे गए सूत्र का चिन्तन करें–

Procedure: The practitioner should first of all bow to the spiritual master as laid down in the code. He should then seek permission to recite hymn in praise of 24 Tirthankar. Thereafter, for the purification of his vision and faith, he should recite the following verse:

सम्यक्त्व सूत्र

अरिहंतो महदेवो जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो।
जिणपण्णत्तं तत्तं इअ सम्मत्तं मए गहियं।
पंचिंदियसंवरणो तह नवविहबंभचेरगुत्तिधरो।
चउविहकसायमुक्को इअ अट्ठारस्सगुणेहिं संजुत्तो।
पंचमहव्वयजुत्तो पंच-विहायार-पालण समत्थो।
पंचसमिओ त्तिगुत्तो छत्तीस गुणो गुरु मज्झ॥

भावार्थ : जीवनभर के लिए अरिहंत भगवान् मेरे देव हैं। शुद्ध संयम का पालन करने वाले साधु मेरे गुरु हैं। जिनेश्वर भगवान् द्वारा प्ररूपित अहिंसा आदि तत्व ही मेरा धर्म है। देव, गुरु एवं धर्म पर अविचल श्रद्धा स्वरूप यह सम्यक्त्व मैंने ग्रहण किया है।

पांच इन्द्रियों को वश में करने वाले, नौ प्रकार की ब्रह्मचर्य की गुप्तियों को धारण करने वाले, चार प्रकार के कषायों से मुक्त, इन अठारह गुणों से युक्त, तथा पांच महाव्रतों से युक्त, पंचविध आचार को पालन करने में समर्थ एवं पांच समितियों व तीन गुप्तियों की आराधना करने वाले, उक्त छत्तीस गुणों को धारण करने वाले सच्चे साधु ही मेरे गुरु हैं।

Exposition: For my entire life, honorable omniscient (Arihantas) are my gods. The monks who meticulously follow the ascetic code are my spiritual masters. The dharma consisting of non-violence and the like as propagated by omniscient is my dharma. I have unflinching faith in such gods, gurus and dharma and vow to follow it.

My spiritual master has 36 virtues. He has control over five senses. He is following nine prohibitions relating to celibacy. He has subdued four passions. He practices five great vows. He follows five types of ascetic conduct, five samitis and three stoppages (Guptis).

विवेचन : सत्य पर सुदृढ़ श्रद्धा ही सम्यक्त्व है। इस जगत में राग-द्वेष के विजेता अरिहंत देव ही सच्चे देव हैं, विशुद्ध संयम की आराधना में सतत संलग्न सुसाधु ही सच्चे गुरु हैं एवं अहिंसा, सत्य, आदि पारमार्थिक तत्वों का वर्णन करने वाला धर्म ही सच्चा धर्म है। ऐसे सच्चे देव, गुरु एवं धर्म पर सुदृढ़ आस्था रखना ही सम्यक्त्वी का लक्षण है।

'आवश्यक' में प्रवेश से पूर्व श्रावक सर्वप्रथम स्वयं द्वारा ग्रहीत सम्यक्त्व का स्मरण करता है और उपरोक्त सूत्र के माध्यम से अपनी श्रद्धा को सुदृढ़ता प्रदान करता है।

Explanation: The firm faith in truth is right perception (Samyaktva). In this world only arihantas are the real gods as they have subdued attachment and hatred completely. The true monks who practice ascetic code meticulously are the real gurus. The dharma that is based on non-violence, truth, and the like that are highest principles is the true dharma. It is the characteristic of a person of right perception that he has firm faith in gods, gurus and dharma.

Before starting Avashyak, the shravak first of all recollects the Samyaktva accepted by him and provides firmness to his faith by reciting above mentioned aphorism.

विधि : तत्पश्चात् श्रावक क्रमशः **'आलोचना सूत्र'** एवं **'उत्तरीकरण सूत्र'** का स्मरण करे। उसके बाद एक **'चतुर्विंशतिस्तव'** का ध्यान करे। **'नमो अरिहंताणं'** का उच्चारण करते हुए ध्यान पूर्ण करे। पुनः मुखर स्वर में एक **'चतुर्विंशतिस्तव'** का उच्चारण करे। उसके बाद दायां घुटना भूमि पर रखकर एवं बायां घुटना ऊंचा रखकर **'प्रणिपात सूत्र'** (णमोऽत्थुणं) का दो बार मनन करे। प्रणिपात सूत्र के द्वितीय आवर्तन में सूत्र में आए हुए **'संपत्ताणं'** इस पद के स्थान पर **'संपाविउकामाणं'** यह पद बोलें।

उसके बाद **'तिक्खुत्तो'** के पाठ से गुरु महाराज को वन्दन करके **'आवस्सही सूत्र'** का उच्चारण करते हुए प्रथम आवश्यक की आज्ञा लें।

Procedure: Thereafter the shravak recites *Alochana Sutra* and *Uttarikaran Sutra* before meditating on *Chaturvinshiti Stava.* He then in meditation utters obescence to *arihantas* to conclude meditation. Thereafter he again recites *Chaturvinshiti Sutra* loudly. Then keeping his left knee raised and right knee touching the ground, he recites the aphorism of *Namothanum* twice. In the second namothanum he utters *Sampaveokammanum* (those who are going to attain liberation) instead of *Sampattanum* (those who have attained liberation).

Thereafter saluting the guru by reciting aphorism of *Tikhutto,* he recites aphorism of *avassahi* as mentioned below to seek his permission for first *avashyak.*

आवस्सही सूत्र

आवस्सही इच्छाकारेण संदिसह भगवं! देवसी पडिक्कमणो ठामि, देवसी-ज्ञान-दर्शन-चरित्ताचरित्त तप-अतिचार-चिन्तवणा अर्थ करेमि काउसग्गं।

भावार्थ : हे भगवन्! आवश्यक की आराधना के लिए आज्ञा प्रदान करें। दिन-संबंधी दोषों की निवृत्ति के लिए मैं प्रतिक्रमण प्रारंभ करता हूं। आज दिन में मेरे ज्ञान, दर्शन, श्रावकव्रत एवं तप में जो अतिचार लगे हैं उनके चिंतन के लिए कायोत्सर्ग करता हूं।

Exposition: 'O' Lord! Kindly grant me permission for practicing avashyak. I start pratikraman in order to discard faults committed during the day. In order to recollect the devialtions incurred by me in right knowledge, right perception and in practicing the vows of Shravak and austerities. I do *Kayotsarg* (meditation discarding attachment of self from the body).

विधि : तत्पश्चात् एक **'नमोकार मंत्र'** का उच्चारण करके निम्नलिखित सामायिक सूत्र पढ़ें–

Procedure: Thereafter once *namokar mantra* should be uttered and then the following aphorism of *samayik* should be recited.

सामायिक सूत्र

करेमि भंते! सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जाव नियमं पज्जुवासामि, दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।

भावार्थ : हे भगवन्! मैं समताभाव रूप सामायिक की साधना हेतु प्रस्तुत हूं। सभी प्रकार

के सावद्य-योगों (दुश्चिन्तन, दुर्वचन एवं दुष्कर्म) का मैं परित्याग करता हूं। ग्रहण की गई सामायिक की अवधिपर्यंत अर्थात् जितने काल तक मैं सामायिक की आराधना करूंगा उतने काल तक के लिए दो करण (करना-कराना) एवं तीन योग (मन-वचन-काय) से समस्त पापों को मन, वचन एवं काय से न मैं स्वयं करूंगा और न ही दूसरों से कराऊंगा। भगवन्! अतीत काल में मेरे द्वारा हुए समस्त सावद्य व्यापारों से मैं पीछे हटता हूं, उनकी आत्म-साक्षी से निन्दा करता हूं, गुरु-साक्षी से गर्हा करता हूं एवं अपनी पापरूप आत्मा का परित्याग करता हूं।

Exposition: 'O' Lord! I am ready for practicing Samayik—the state of equanimity. I detach myself from all activities involving violence (namely ill thoughts, foul words and bad reactions) for the defined period upto which I have adopted samayik, I shall neither do myself nor get done any sin through others mentally, orally or physically. I withdraw myself from all acts of violence performed by me in the past. I curse them though self-criticism and condemn them in the presence of my spiritual master. I detach myself from that sinful state.

विवेचन : साधु की सामायिक जीवन पर्यंत के लिए होती है एवं श्रावक की सामायिक न्यूनतम अड़तालीस मिनट के लिए। सूत्र में आए हुए **'जाव नियमं'** पद से यही संकेत किया गया है। यदि श्रावक एक सामायिक करना चाहता है तो इस पद के स्थान पर 'मुहूर्त्त एक घड़ी दो' कहे, यदि दो सामायिक करना चाहता है तो 'मुहूर्त्त दो घड़ी चार' कहे। जितनी सामायिक करनी हैं उसी के अनुसार मुहूर्त्त एवं घड़ी की संख्या बढ़ा लेनी चाहिए।

साधु तीन करण एवं तीन योग से जीवन भर के लिए समस्त सावद्य-व्यापारों का त्याग करता है। श्रावक के लिए ऐसा संभव नहीं है। उस पर परिवार, समाज एवं संघ के अनेक दायित्व होते हैं। उन दायित्वों के पालन के लिए उसे आरंभ-समारंभ करना पड़ता है। सूत्र में **'दुविहं तिविहं'** जो पद आया है उसका अर्थ है– मन, वचन एवं काय से सावद्य व्यापारों को न मैं स्वयं करूंगा एवं न ही किसी दूसरे से कराऊंगा। यहां पर सावद्य व्यापारों के अनुमोदन का त्याग नहीं किया गया है। ऐसा इसलिए है कि श्रावक के जो सावद्य उद्योग-व्यापार आदि प्रगतिमान हैं उनमें उसकी अनुमोदना अखण्ड रूप से जुड़ी हुई है। श्रावक जब सामायिक करता है, उस समय भी उसके व्यापार आदि चलते ही रहते हैं। इसलिए अनुमोदन का त्याग श्रावक के लिए संभव नहीं है।

Explanation: The samayik of a jain monk is for entire life while the samayik of a shravak is for the minimum period of 48 minutes. The words **'Jaav niyam'** in

the aphorism indicate that in case the shravak intends to remain in one samayik he should utter one *muhurat* or two *gharies* and for two samayiks, he should say two muhurat or four gharies. He should increase the number of muhurats according to the number of samayiks.

A monk discards all the sinful activities for entire life mentally, orally and physically in all the three ways namely by doing, getting done and appreciating the sinful act that is done. But it is not possible for shravak to act in this manner. He has to discharge responsibility towards his family, society and the religious organization. In order to properly perform such duties, he has to incur certain acts involving violence to living beings. In the aphorism, the words are **'duvihum tivihum'**. It means I shall neither do myself nor get done acts of violence mentally verbally and physically. Here he has not discarded appreciation of such acts because in his business such acts of violence are already being done. His involvement is already there indirectly. Even during the period when a shravak is in samayik, his worldly business is functioning. So, it is not possible for a shravak to detach himself from appreciation or in supporting such acts.

विधि : तत्पश्चात् आत्मशुद्धि के लिए निम्नलिखित **'संक्षिप्त प्रतिक्रमण सूत्र'** का उच्चारण करना चाहिए–

Procedure: Thereafter for self-purification he should recite short *pratikraman* given below—

संक्षिप्त प्रतिक्रमण सूत्र

इच्छामि ठामि काउस्सग्गं जो मे देवसि अइयारो कओ, काइओ, वाइओ, माणसिओ, उस्सुत्तो, उम्मग्गो, अकप्पो, अकरणिज्जो, दुज्झाओ, दुव्विंतिओ, अणायारो, अणिच्छियव्वो, असावगो-पावगो, णाणे तह दंसणे, चरित्ता-चरित्ते सुय सामाइए, तिण्हं गुत्तीणं, चउण्हं कसायाणं, पंचण्हं अणुव्वयाणं, तिण्हं गुणव्वयाणं, चउण्हं सिक्खावयाणं, बारस्स विहस्स सावग-धम्मस्स जं खंडियं, जं विराहियं, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : (कायोत्सर्ग में प्रवेश करने से पूर्व श्रावक आत्मा की शुद्धि के लिए दिन में लगे हुए संभावित दोषों से पीछे हटने की प्रतिज्ञा करता है–)

मैं दिवस संबंधी दोषों से निवृत्त होने के लिए कायोत्सर्ग करना चाहता हूं। मैंने मन, वचन, काय संबंधी किसी अतिचार का सेवन किया हो, उत्सूत्र की प्ररूपणा की हो, उन्मार्ग में गमन

किया हो, अकल्पनीय और अकरणीय कार्य किया हो, आर्त्त एवं रौद्र ध्यानों को ध्याया हो, मन से दुष्ट चिन्तन किया हो, काय से अनाचार का सेवन किया हो, नहीं चाहने योग्य को चाहा हो, श्रावक-धर्म के विपरीत कार्य किया हो, ज्ञान, दर्शन, श्रावक व्रत, सूत्र एवं सामायिक संबंधी किसी अतिचार का सेवन किया हो, इसी प्रकार तीन गुप्तियों का गोपन न किया हो, चार कषायों का दमन न किया हो, पांच महाव्रतों, तीन गुणव्रतों एवं चार शिक्षा व्रतों-उक्त बारह प्रकार के श्रावक व्रतों को अंशत: खण्डित किया हो अथवा किसी प्रकार की विराधना की हो तो तत्संबंधी मेरे पाप निष्फल हों।

Exposition : (Before adopting the posture of Kayotsarg a shravak for self-purification detaches himself from possible deviations (or faults) committed by him during the day).

I, in order to detach myself from faults committed during the day, want to do kayotsarg. I may have committed any deviation (atichaar) mentally, orally or physically, I may have interpreted scriptures in an improper manner. I may have conducted myself on wrong path. I might have done such acts which I should not have done. I may have engaged myself in state of grief or agitation. I might have engaged myself in melancholy contemplation. I might have committed physically prohibited act, I may have desired what I should not have desired. I might have done an act which is against the code meant for a shravak. I might have committed any fault in respect of right knowledge, right perception, vows of a shravak, scriptures or samayik. Similarly I might not have performed three stoppages (guptis) properly. I might not have controlled four passions properly, practiced five minor vows meticulously, three qualitative vows and four disciplinary vows properly. I may not have properly devoted in practice of twelve vows of a shravak or I have practiced them in an improper manner. I pray that my such conduct may be condoned.

सूचना : प्रस्तुत सूत्र के विवेचन के लिए 'श्रमण आवश्यक सूत्र' में आए हुए संक्षिप्त प्रतिक्रमण सूत्र (पेज 28-29) को देखें। अन्तर इतना है कि वहां साधु-धर्म संबंधी पांच महाव्रतों आदि का वर्णन है जबकि प्रस्तुत सूत्र में श्रावक-व्रतों का वर्णन है। श्रावक-व्रतों का विवेचन अग्रिम सूत्रों में किया जाएगा।

Note: For detailed explanation of this aphorism, see short Pratikraman Sutra mentioned in 'Shraman Avashyak Sutra, at pp. 28-29. The only difference is that in shraman sutra, five major vows and the like of an ascetic are mentioned while here the vows of a shravak are narrated. The vows of a shravak are mentioned in detail in the aphorism ahead.

विधि : तत्पश्चात् **'उत्तरीकरण सूत्र'** का चिंतन करें। उसके बाद कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थिर होकर 99 प्रकार के अतिचारों का ध्यान करें।

Procedure: Thereafter, he should contemplate 'Pratikraman Sutra'. After that in the state of kayotsarg, he should contemplate on 99 deviations that are likely in the conduct of a Shravak.

सूचना : श्रुतज्ञान के 14 एवं दर्शन के 5 अतिचारों से संबंधित आलोचना सूत्रों के लिए देखिए पृष्ठ 31-34।)

Note: See pp. 31-34 for 14 deviations relating to study of scriptures and five deviations relating to right faith or right perception.

प्रथम अणुव्रत विषयक अतिचार आलोचना

पहिला थूल प्राणातिपात-वेरमण व्रत ने विषय जो कोई अतिचार लागा होय ते आलोउं, 1. रीस वसे गाढा बंधण बांध्या होय, 2. गाढ़ा घाव घाल्या होय, 3. अवयव ना विच्छेद कीधा होय, 4. अतिभार घाल्यो होय, 5. भात पाणी का विच्छेद कीधा होय, जो मे देवसि अइयार कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : प्रथम प्राणातिपातविरमण नामक अणुव्रत में यदि किसी प्रकार का अतिचार लगा हो तो मैं उस अतिचार की आलोचना करता हूं। प्रथम अणुव्रत के पांच अतिचार हैं, यथा– (1) क्रोध के वशीभूत हो कर त्रस जीवों को कठोर बन्धनों से बांधा हो, (2) तीव्र प्रहार से घायल किया हो, (3) जीवों के अंगोपांगों का छेदन किया हो, (4) सामर्थ्य से अधिक भार लादा हो, एवं (5) उचित समय पर अन्न-जल नहीं दिया हो, अथवा अपने अधीन काम करने वाले सेवक आदि को उचित वेतन न दिया हो, इस प्रकार मैंने यदि किसी अतिचार का सेवन किया है तो मैं उस दोष से पीछे हटता हूं। मेरा वह दुष्कृत मिथ्या हो।

Exposition: In the practice of first minor vow (anuvrat), if I have committed any minor fault or deviation. I repent for the same. There are five likely deviations namely (1) In a fit of anger to tie tightly the mobile living hangs (2) to cause serious hurt to them (3) to cut limbs or sub-parts of living beings (4) to burden them with a load more than their capability (5) not to provide food or water at proper time or not to give wages to the servant at proper time. In case I may have committed any such fault. I feel sorry for the same and refrain from the same in future. May my fault be condoned.

द्वितीय अणुव्रत विषयक अतिचार आलोचना

बीजा थूल मृषावाद-वेरमण व्रत ने विषय जे कोई अतिचार लागो होय ते आलोउं, 1. सहसाकारि कही प्रते कूड़ा आल दीधा होय, 2. रहस्स छानी वार्ता प्रकट करी होय, 3. स्त्री-पुरुष का मर्म प्रकाश्या होय, 4. कहीं प्रतेपाय पाडवा भणी मृषा उपदेश दीधा होय, 5. कूड़ा लेख लिख्या होय, जो मे देवसि अइयार कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : स्थूल मृषावाद विरमण नामक द्वितीय अणुव्रत के विषय में यदि कोई दोष लग गया हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। द्वितीय अणुव्रत के पांच अतिचार इस प्रकार हैं–(1) विवेक-विचार को भुला कर सहसा किसी पर झूठा आरोप लगाया हो, (2) किसी की गुप्त बात को प्रकट किया हो, (3) अपनी स्त्री के मर्म को प्रकाशित किया हो, (प्रतिक्रमण करने वाली स्त्री कहे–अपने पति के मर्म को प्रकाशित किया हो), (4) अपने अधीन करने के लिए किसी को अनुचित सलाह दी हो, एवं (5) झूठे लेख लिखे हों। उक्त अतिचारों में से यदि मैंने किसी अतिचार का सेवन किया है तो उस दोष से मैं पीछे लौटता हूं। मेरा वह दोष मिथ्या हो।

Exposition: I feel sorry for any fault committed by me in practice of second partial vow namely abstaining from telling a lie. Five faults pertaining to second minor vow (anuvrat) are as under:

(1) To level false accusation on any one without properly applying the mind (2) to disclose any secret (3) do disclose any secret talk pertaining to one's spouse (4) to give an improper suggestions to a person in order to subdue any one (5) To publish false writings. In case I may have commited any such faults, I withdraw myself from the same. May I be absolved of that sin.

तृतीय अणुव्रत विषक अतिचार आलोचना

त्रीजा थूल अदत्तादान-वेरमण व्रत के विषय जे कोई अतिचार लागो होय ते आलोउं 1. चोर की चुराई वस्तु लीधी होय, 2. चोर ने साहज दीधा होय, 3. राज्य-विरुद्ध कार्य कीधा होय, 4. कूड़ा तोल कूड़ा माप कीधा होय, 5. वस्तु में भेल संभेल कीध ा होय, जो मे देवसि अइयार कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : स्थूल अदत्तादान विरमण नामक तृतीय अणुव्रत के विषय में यदि कोई अतिचार लग गया है तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। तृतीय अणुव्रत के 5 अतिचार इस प्रकार हैं–

(1) चोर द्वारा चुराई हुई वस्तु को खरीदा हो, (2) चोर की सहायता की हो, (3) राजकीय कानूनों के विरुद्ध कोई काम किया हो, (4) तोल और माप में कम-ज्यादा किया हो, एवं (5) अधिक लाभ के लिए वस्तुओं में मिलावट की हो, दिवस संबंधी उक्त अतिचारों में से यदि किसी अतिचार का मैंने सेवन किया हो तो उस दोष से मैं पीछे हटता हूं, अर्थात् मेरा वह दोष निंदनीय है। वैसा दोष पुनः नहीं करूंगा।

Exposition: The Third partial vow is to avoid gross stealing. In this context, I may have in any way transgressed the vow, I repent for the came. There are five likely digressions. They are as follows : (1) to purchase a thing stolen by a thief (2) to help the thief in stealing (3) to do any activity prohibited by the state law (4) to flout in weights and measures (5) to adulterate things in order to have more profit. In case I may have committed any of the above faults during the day. I retreat from the same. In other words I criticise the same. I resolve that I shall not repeat it.

चतुर्थ अणुव्रत विषयक अतिचार आलोचना

चौथा थूल स्वदार-संतोष मैथुन-वेरमण व्रत के विषय जे कोई अतिचार लागो होय ते आलोउं 1. इत्तर-थोड़ा काल की राखी सूं गमन कीधा होय, 2. अपरिग-हियासुं गमण कीधा होय, 3. अणंग क्रीडा कीधी होय, 4. पराया विवाह-नाता जोड्या होय, 5. कामभोग तीव्र अभिलाषा से सेव्या होय, जो मे देवसि अइयार कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : स्थूल स्वदार संतोष नामक चतुर्थ अणुव्रत के विषय में यदि कोई दोष लग गया हो तो मैं उस की आलोचना करता हूं। चतुर्थ अणुव्रत के पांच अतिचार इस प्रकार हैं– (1) अल्पायु विवाहिता पत्नी से प्रसंग किया हो, (2) जिससे विधिवत् विवाह नहीं हुआ है, जो अभी वाग्दत्ता है, अर्थात् जिससे अभी सगाई हुई है ऐसी स्त्री से संग किया हो, (3) कामांग के इतर अंगों से क्रीड़ा की हो, (4) स्वसंतान के अतिरिक्त दूसरों की संतानों के लग्न कराए हों, एवं (5) काम-भोगों में तीव्र आसक्ति रखी हो, उक्त अतिचारों में से किसी अतिचार का मैंने सेवन किया है तो मेरा वह अतिचार मिथ्या हो।

Exposition: The fourth minor (partial) vow is to remain sexually satisfied with one's own spouse. In case I may have committed any fault in its practice, I criticise the same. There are five likely digressions. They are as under: (1) to have sex with

one's wife who is yet not of ripe age (2) to have sex with the betrothed one before marriage (3) to have sexual enjoyment with limbs other than the natural sex organs (4) to get persons other than the members of one's own family engaged matrimonially (5) to have deep sexual interest in sex.

In case I may have committed any one of the above mentioned fault, I feel sorry for the same. I may kindly be absolved of the same.

पंचम अणुव्रत विषयक अतिचार आलोचना

पांचवां थूल परिग्रह-परिमाण व्रत के विषय जे कोई अतिचार लागो होय ते आलोउं, 1. खेत्त वत्थु नो परिमाण अतिक्रम्या होय, 2. हिरण्य-सुवर्ण नो परिमाण अतिक्रम्या होय, 3. धन-धान्य नो परिमाण अतिक्रम्या होय, 4. दोपद चोपद-नुं परिमाण अतिक्रम्या होय, 5. कुविय धातु नो परिमाण अतिक्रम्या होय, जो मे देवसि अइयार कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : स्थूल परिग्रह परिमाण नामक पंचम अणुव्रत के विषय में यदि कोई दोष लगा है तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। पंचम अणुव्रत के पांच अतिचार इस प्रकार हैं–(1) क्षेत्र एवं वास्तु (खेत आदि खुले एवं मकान-दुकान आदि ढके हुए स्थान) के विषय में जो मर्यादा की है, उसका उल्लंघन किया हो, (2) चांदी और स्वर्ण के परिमाण का उल्लंघन किया हो, (3) धन-धान्य के परिमाण का उल्लंघन किया हो, (4) द्विपद (सेवक-सेविका) एवं चतुष्पद (गाय-भैंस आदि) के परिमाण का उल्लंघन किया हो, एवं (5) घरेलु सामग्री के परिमाण का अतिक्रमण किया हो, उक्त अतिक्रमण से उत्पन्न दोषों से मैं पीछे हटता हूं। मेरे ये दोष मिथ्या हों।

Exposition: The fifth minor (or partial) vow is about limit is gross possessions and attachment thereof. I feel sorry in case I may have committed any fault in its practice. There are five likely digressions in its practice. They are as follows:

(1) to cross the limit resolved regarding possession of vacant land, fields and build-up structures (2) to cross the limit resolved in respect of possession of gold and silver (3) to cross the restraint decided about possession of food articles and money (4) to cross limit resolved regarding possession of bipeds (servents) and quadruped (cows, buffalos and the like) (5) to cross the limit resolved about possession of household articles—I withdraw myself from all such faults. May my faults be condoned.

षष्ठ व्रत विषयक अतिचार आलोचना

छठा दिशि व्रत ने विषय जे कोई अतिचार लागो होय ते आलोउं, 1. उड्ढ दिसा नो प्रमाण अतिक्रम्या होय, 2. अधो दिशा नो प्रमाण अतिक्रम्या होय, 3. तिरच्छि दिशा नो प्रमाण अतिक्रम्या होय, 4. क्षेत्र वधारया होय, 5. पंथनो संदेह पड्या आगे चाल्या होय, जो मे देवसि अइयार कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : दिशा-व्रत नामक छठे व्रत के विषय में यदि कोई दोष लगा हो तो उसकी मैं आलोचना करता हूं। छठे व्रत के पांच अतिचार हैं, यथा-(1) ऊर्ध्व दिशा के परिमाण का उल्लंघन किया हो, (2) अधो (नीची) दिशा के परिमाण का अतिक्रमण किया हो, (3) तिरछी दिशा के परिमाण का अतिक्रमण किया हो, (4) एक दिशा का परिमाण कम करके दूसरी दिशा का क्षेत्र बढ़ाया हो, एवं (5) मर्यादित किए गए क्षेत्र के संबंध में संशय उत्पन्न होने पर भी आगे गमन किया हो, उक्त अतिचारों में से यदि कोई अतिचार लगा हो तो मेरा वह दुष्कृत निष्फल हो।

Exposition: I feel sorry for any fault that I may have committed in practice of sixth vow about limit of movement in various directions. There are five likely digressions that may occur. They are as under:

(1) To cross the limit resolved regarding movement in upward direction (2) to cross limit about movement in lower direction (3) to cross the limit resolved about movement in the same plane (4) to increase the limit resolved in one direction by reducing the limit already decided for other direction (5) to move ahead even when there is doubt in the mind that the limit resolved has already been covered. I feel sorry for all such faults. My faults may be condoned.

सप्तम व्रत विषयक अतिचार आलोचना

सातमा उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत ने विषय जे कोई अतिचार लागो होय ते आलोउं 1. पच्चक्खाण उपरान्त सचित्त का आहार करया होय, 2. सचित्त पडिबद्ध का आहार करया हो, 3. अपक्व ना आहार करया हो, 4. दुष्पक्व ना आहार करया होय, तुच्छौषधि ना आहार करया होय, जो मे देवसि अइयार कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

पनरा कर्मादान के विषय जे कोई अतिचार लागो होय ते आलोउं- 1. इंगालकम्मे, 2. वणकम्मे, 3. साडीकम्मे, 4. भाडीकम्मे, 5. फोडीकम्मे, 6. दंतवणिज्जे, 7. लक्ख-

वणिज्जे, 8. रसवणिज्जे, 9. केसवणिज्जे, 10. विस-वणिज्जे, 11. जंतपीलणियाकम्मे, 12. निल्लंच्छणियाकम्मे, 13. दवग्गिदावणियाकम्मे, 14. सर-दह तालाब सोसणिया-कम्मे, 15. असइ-जण पोसणिया कम्मे, जो मे देवसि अइयार कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : उपभोग-परिभोग परिमाण नामक सातवें व्रत के विषय में यदि कोई दोष लगा हो तो उसकी आलोचना करता हूं। सातवें व्रत के 5 अतिचार इस प्रकार हैं-(1) प्रत्याख्यान होने पर भी सचित्त वस्तु का आहार किया हो, (2) सचित्त प्रतिबद्ध वस्तु का आहार किया हो, (3) अपक्व (जो ठीक से पकी नहीं है) वस्तु का आहार किया हो, (4) दुष्पक्व (पकने पर भी जो बिगड़ गई है) वस्तु का आहार किया हो, एवं (5) तुच्छौषधि (जिस वस्तु में खाने योग्य अंश अल्प एवं फैंकने योग्य अधिक हो, गन्ना आदि) का आहार किया हो, उक्त अतिचारों में से किसी अतिचार का सेवन किया हो तो उससे उत्पन्न दोष मिथ्या हों।

पन्द्रह प्रकार के कर्मादान (ऐसे व्यवसाय जिनमें महाहिंसा होती है) के विषय में यदि कोई दोष लगा हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। पन्द्रह कर्मादानों का स्वरूप इस प्रकार है-(1) कोयलों का व्यवसाय, (2) वन कटवाना, (3) छकड़े-गाड़ी आदि बनाने का व्यवसाय, (4) ऊंट, बैल, घोड़े आदि को भाड़े पर देने का व्यवसाय, (5) पृथ्वी में विस्फोट करके मिट्टी, पत्थर आदि निकालने का व्यवसाय, (6) हाथी, व्याघ्र आदि के दांतों एवं उनसे बनी हुई वस्तुओं का व्यापार करना, (7) लाख, गोंद आदि का व्यापार, (8) मदिरा आदि रसों का व्यवसाय, (9) पशु-पक्षियों के केशों अथवा पशु-पक्षियों एवं मनुष्यों को बेचने-खरीदने का व्यवसाय, (10) अफीम आदि नशीली एवं धतूरा आदि जहरीली तथा तोप-तलवार आदि घातक वस्तुओं का व्यापार, (11) कोल्हू, घानी आदि का व्यापार, (12) बैल, घोड़े आदि पशुओं को नपुंसक बनाने का व्यवसाय, (13) वनों की सफाई या अधिक पैदावार के लिए खेतों में आग लगाना, (14) तालाब, कुएं आदि को सुखाने का कार्य करना, (15) हिंसक जीवों एवं दुराचारी स्त्रियों-पुरुषों का व्यापार हेतु पोषण करना।

उपरोक्त 15 प्रकार के व्यवसाय एवं कार्य महा-हिंसा के कारक हैं। श्रावक ऐसे व्यापारों का त्यागी होता है। भूलवश, लोभवश अथवा प्रमाद-वश ऐसे व्यापारों का कभी सेवन कर लिया जाए तो उसे अपनी भूल सुधार लेनी चाहिए।

प्रस्तुत कर्मादान अतिचार विषयक आलोचना सूत्र में श्रावक प्रतिज्ञा करता है कि पन्द्रह कर्मादान संबंधी किसी अतिचार का मैंने सेवन किया हो तो उससे उत्पन्न दोष मेरे लिए मिथ्या हों।

Exposition: The seventh vow is about limit of articles of daily consumption which includes articles that can be consumed only once (food etc.) and articles then can be used repeatedly. Five digressions that may occur are as under:

(1) In spite of the practice of resolve of not taking any sachit (organic) thing, in case one has consumed such thing (2) to consume a thing in which sachit thing is mixed (3) to consume a thing which is yet not fully cooked (4) to consume a thing which is badly cooked (5) to consume a thing in which element to be discarded is more than the one that can be consumed—I feel sorry for such faults.

There are fifteen trades that cause great violence to living being. They are called Karmadan. In case I may have committed any fault by taking up such trade, I repent for the same. The nature of 15 Karmadans is as foilows—

(1) To have business of preparing charcoal from wood.

(2) To get the forest cut.

(3) To engage in business of preparing bullock-carts cars and the like.

(4) To give camel, bullocks, horses and the like on hire.

(5) To quarry stone by blasting the earth.

(6) To engage in business involving sale of articles prepared from the tusk of elephants, teeth of tiger and the like.

(7) To trade in liqueur or gum.

(8) To trade in wines and such like intoxicants.

(9) To trade in locks of hair of animals and birds or to trade in birds, animals and human beings.

(10) To trade in opium and suchlike intoxicants or to trade in weapons such as swords, guns used for killing living beings.

(11) To trade in crushing oilseeds.

(12) To engage in business involving making bullocks, horses and the like infertile.

(13) To start fire in the fields for cleaning the forest or for getting more foodgrain from the fields.

(14) To trade in drying the wells, the ponds.

(15) To nourish violent anaimals or prostitutes or persons of bad character for their trads.

The abovesaid fifteen trades involve a great violence. A shravak is expected to detach himself from such professions. In case due to ignorance or in an impulse of greed or due to any influence. he has committed any such faults, he should set himself right. In this aphorism regarding Karmadan, he makes a resolve that he repents for any such fault committed by him. He prays that his fault may be condomned and he shall not do the same in future.

अष्टम व्रत विषयक अतिचार आलोचना

आठमा अनर्थ-दंड-वेरमण व्रत के विषय जे कोई अतिचार लागो होय ते आलोउं, 1. कंदर्प नी कथा कीधी होय, 2. भंडचेष्टा कीधी होय, 3. मुखारि वचन बोल्या होय, 4. अधिकरण जोडी मूक्या होय, 5. उवभोग-परिभोग अधिका वधारया होय, जो मे देवसि अइयार कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : अनर्थ दण्ड विरमण नामक आठवें व्रत के विषय में यदि कोई दोष लगा हो तो उसकी मैं आलोचना करता हूं। आठवें व्रत के पांच अतिचार इस प्रकार हैं–(1) काम-भोगों की कथा की हो, (2) भांड की भांति कुचेष्टाएं की हों, (3) मर्यादाहीन वचन बोले हों, (4) शस्त्रों का संग्रह किया हो, एवं (5) उपभोग-परिभोग की वस्तुएं मर्यादा से अधिक रखी हों, ऐसा कोई अतिचार लगा हो तो तत्संबंधी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो।

Exposition: The eighth vow is regarding causing violence without any purpose. In case I may have committed any fault, I repent for the same. Five likely digressions are as under :-

(1) To engage in talk about sex and sexual enjoyments.

(2) To make activities like a clown.

(3) To use unpalatable words.

(4) To have collection of weapons.

(5) To keep articles of consumption more than what is essential or more then the limit decided – In case I may have committed any such fault, I feel sorry for the same. May my fault be condemned.

नवम व्रत विषयक अतिचार आलोचना

नवमा सामायिक व्रत ने विषये जे कोई अतिचार लागो होय ते आलोउं, (1-3) मन, वचन, काया का जोग माठा वरताया होय, 4. सामायिक में समता न

आणी होय, 5. अणपूरी पारी होय, जो मे देवसि अइयार कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : सामायिक नामक नौवें व्रत के विषय में यदि कोई अतिचार लगा हो तो उसकी मैं आलोचना करता हूं। नौंवे व्रत के पांच अतिचार इस प्रकार हैं—(1-3) मन, वचन एवं काय—इन तीनों योगों को अशुभ मार्ग में प्रवृत्त किया हो, (4) समता भाव धारण न किया हो, एवं (5) समय पूरा होने से पहले ही सामायिक पार ली हो, उक्त अतिचारों से उत्पन्न दुष्कृत मेरे लिए मिथ्या हों।

Exposition: I criticize myself in case I may have committed any faults in the practice of ninth vow. Five likely faults in practice of ninth vow of Samayik are as follows:-

(1-3) In case I may have engaged mentally, orally or physically in perverse manner.

(4) In case I may not have remained in state of equanimity.

(5) In case I may have concluded the Samayik before the actual period had finished.

I feel sorry for all such faults. May my faults be condemned.

दशम व्रत विषयक अतिचार आलोचना

दसवां देशावगासी व्रत ने विषय जे कोई अतिचार लागो होय ते आलोउं, 1. नियमित भूमि की बाहर की वस्तु आणाइ होय, 2. मुकलाई होय, 3. शब्द करी जणायो होय, 4. रूप करी दिखलाई होय, 5. पुद्गल नाखिया आपण पउ जणावो होय, जो मे देवसि अइयार कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : देशावकाशिक नामक दसवें व्रत के विषय में यदि कोई दोष लगा हो तो उसकी मैं आलोचना करता हूं। दसवें व्रत के पांच अतिचार इस प्रकार हैं—(1) मर्यादा की हुई भूमि से बाहर की वस्तु सेवक आदि से मंगवाई हो, (2) मर्यादित भूमि से बाहर वस्तु भिजवायी हो, (3) शब्द से संकेत किया हो, (4) हाव-भाव द्वारा अपने भाव प्रकट किए हों, एवं (5) कंकर आदि गिराकर वस्तु के बारे में बताया हो, उक्त पांच अतिचारों में से कोई अतिचार लगा हो तो उससे उत्पन्न दुष्कृत को मैं छोड़ता हूं।

Exposition: I criticize myself for any fault relating to practice of tenth vow by further reducing the limit (Dashavakashick Vow). Five likely faults are as follows:

(1) To ask for an article through a servant or otherwise while that article is at a place which is outside the limit fixed in the resolve.

(2) To send an article to a place beyond the area of resolve.

(3) To verbally point out for it.

(4) To express such feeling through physical actions.

(5) To point out that article by throwing a piece of stone and the like.

I feel sorry for any such faults and resolve not to repeat the same.

एकादशम व्रत विषयक अतिचार आलोचना

इग्यारमा पडिपुण्ण पोसह व्रत ने विषय जे कोई अतिचार लागो होय ते आलोउं, 1. अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय सिज्जा संथारा, 2. अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय सिज्जा संथारा, 3. अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय उच्चारपासवण भूमिका, 4. अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय उच्चारपासवण भूमिका, 5. पोसह मांहि विकथा प्रमाद कीधा होय, जो मे देवसि अइयार कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : प्रतिपूर्ण पौषध नामक ग्यारहवें व्रत के विषय में यदि कोई अतिचार लगा हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। पौषध व्रत के पांच अतिचार हैं, यथा–(1) शय्या-संस्तारक की प्रतिलेखना न की हो अथवा सम्यक् प्रकार से प्रतिलेखना न की हो, (2) शय्या-संस्तारक की प्रमार्जना न की हो अथवा उचित रीति से प्रमार्जना न की हो, (3) मल-मूत्र विसर्जन के स्थान की प्रतिलेखना न की हो या ठीक प्रकार से प्रतिलेखना न की हो, (4) मल-मूत्र विसर्जन के स्थान का प्रमार्जन न किया हो या ठीक विधि से प्रमार्जन न किया हो, (5) पौषध की अवधि में विकथा या प्रमाद किया हो, उक्त अतिचारों में से यदि मुझे कोई अतिचार लगा हो तो उससे उत्पन्न दोष मेरे लिए मिथ्या हो, अर्थात् उक्त दोषों का मैं त्याग करता हूं।

Exposition: The eleventh vow is that of complete Paushadh (fast and stay at one place in prescribed dress avoiding violence to all living beings)

Five likely faults are as follows:

(1) The bedding has not been examined or it has not been examined carefully.

(2) The bedding has not been cleaned or it has not been cleaned properly.

(3) The place for call of nature has not been examined or it has not been examined properly.

(4) The place for call of nature has not been cleaned or it has not been cleaned properly.

(5) Any worldly activity or slackness has been resorted to during the period of paushedh. In case I may have incurred any one of the above–mentioned faults, I discard them. My faults may kindly be condoned.

द्वादशम व्रत विषयक अतिचार आलोचना

बारमा अतिथि संविभाग–व्रत ने विषय जे कोई अतिचार लागो होय ते आलोडं, 1. सूज्झती वस्तु सचित्त ऊपर मूकी होय, 2. सचित्त करी ढांकी होय, 3. काल अतिक्रम्या होय, 4. आपणी वस्तु पर की कीधी होय 5. मच्छर भाव से दान दीधा होय, जो मे देवसि अइयार कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : अतिथि संविभाग नामक बारहवें व्रत के विषय में यदि कोई दोष लगा हो तो उसकी मैं आलोचना करता हूं। बारहवें व्रत के पांच अतिचार हैं, यथा–(1) दान न देने की भावना से अचित्त वस्तु सचित्त वस्तु पर रख दी हो, (2) अचित्त वस्तु को सचित्त वस्तु से ढांप दिया हो, (3) गोचरी के समय में भावना न भायी हो, (4) अपनी वस्तु को दूसरे की बताया हो एवं (5) ईर्ष्या भाव से दान दिया हो, यदि ऐसा कोई दोष मैंने किया है तो उससे मैं पीछे हटता हूं। मेरा वह दुष्कृत मिथ्या हो।

Exposition: I repent for any fault committed in practice of twelfth resolve relating to offering to asceties (as they have no specific time of arrival they are termed as atithi). They are as follows:

(1) To place a lifeless thing on a thing having life with the intention of not offering it to the ascetic

(2) To cover a lifeless thing with a thing having life.

(3) Not to desire at the time of wandering of an ascetic for collection of food that he may visit his place.

(4) In claim that the thing belongs to another person while actually it belongs to himself.

(5) To offer any thing in a state of jealousy.

In case I have committed any such fault I feel sorry and withdraw from the same.

संलेखना विषयक अतिचार आलोचना

संलेखणा के विषय जे कोई अतिचार लागो होय ते आलोउं, 1. इहलोगा-संसप्पउग्गा, परलोगा-संसप्पउग्गा, 3. जीविया-संसप्पउग्गा, 4. मरणा-संसप्पउग्गा, 5. कामभोगा-संसप्पउग्गा, मा मज्झ हुज्ज मरणंते वि, जो मे देवसि अइयार कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : संलेखना के विषय में यदि कोई अतिचार लगा हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। संलेखना के पांच अतिचार इस प्रकार हैं, यथा–(1) संलेखना में इस लोक संबंधी सुख, यश, वैभव की कामना की हो, (2) परलोक संबंधी–दिव्य भोगोपभोगों, इन्द्रादि पद की कामना की हो, (3) अधिक समय तक जीने की आकांक्षा की हो, (4) शीघ्र मृत्यु की कामना की हो, एवं (5) काम-भोगों की आकांक्षा की हो, उक्त अतिचारों में से यदि कोई अतिचार मेरी संलेखना-साधना में लगा है तो उससे मैं पीछे हटता हूं। मेरा वह दुष्कृत मिथ्या हो।

Expositions: In case I have committed any fault with regard to samlekhana, I confess the same voluntarily. There are five faults relating to samlekhana. They are : 1. I may have thought of any worldly pleasure or grandeur in the span of life, 2. I may have anticipated heavenly enjoyments in the next life or desired, 3. I may have alive to remain for a long period, 4. I may have desired early death, 5. I may have desired sensual enjoyments.

In case any one of the above said faults have been committed. I withdraw myself from the same. May my sin he condoned.

समुच्चय अतिचार आलोचना सूत्र

चौदह ज्ञान के, पांच सम्यक्त्व के, बारा व्रतों के पांच-पांच–ये साठ, पन्द्रह कर्मादान के, पांच संलेखणा के, निन्याणवें अतिचारों के विषय जे कोई अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अणाचार सेव्या होय, सेवाया होय, सेवतां प्रति अणुमोद्या होय, जो मे देवसि अइयार कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : ज्ञान के 14, सम्यक्त्व के 5, बारह व्रतों के 60, कर्मादानों के 15, एवं संलेखना के 5, ऐसे कुल 99 अतिचारों के विषय में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार एवं अनाचार के रूप में यदि कोई दोष मैंने स्वयं सेवन किया हो, दोषों के सेवन के लिए किसी को प्रोत्साहित किया हो अथवा दोषों को सेवन करने वालों की प्रशंसा की हो, तो तत्संबंधी मेरे दोष निष्फल हों। उक्त पापों से मैं अपनी आत्मा को अलग करता हूं।

Exposition: There are 99 likely faults–14 relating to study of scriptures, 5 relating to right perception, 60 relating to twelve vows, 15 relating to prohibited trades (karmadan). In case I may have intended to commit any such fault (atikaram) or made preparation for the same (Vyatikram) or reached the stage of almost breaking the vow (atichar) myself, got the fault committed through others or appreciated those who committed such faults may my such fault be condoned. I withdraw myself from such faults.

विधि : तत्पश्चात् 'अठारह पाप स्थानक आलोचना' (पृष्ठ 59) सूत्र के द्वारा अठारह पाप-स्थानों की आलोचना-निन्दा करें। उसके बाद आत्म-आलोचना के लिए **'इच्छामि आलोइयं'** (संक्षिप्त प्रतिक्रमण सूत्र पृष्ठ 207) का मनन करें। तदनंतर निम्न सूत्र पढ़ें–

Procedure: Thereafter he should repent in respect of 18 sins (P. 59) . Then for self-criticism, he should mentally utter '*michhami dukkadam*' (I repent for the same) (see precise Pratikraman sutra 207). Thereafter one should recite the following aphorism.

सर्व अतिचार आलोचना सूत्र

सव्वस्सवि देवसियं, दुभासियं, दुचिंतियं, दुचिट्ठियं, दुनिस्सियं, अधिक ओच्छा पाठ पढ़्या होय, आगलनूं पाछल, पाछल नूं आगल, कोई खोटा अक्षर, खोटी मात्रा बोला होय, बोलाव्या होय, जो मे देवसि अइयार कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : दिवस संबंधी सर्व अतिचारों की आलोचना करता हूं। दिन में यदि मैंने दुष्ट वचनों का प्रयोग किया हो, बुरे विचारों का चिन्तन किया हो, दुष्ट क्रियाएं की हों, सूत्र का पाठ कम या अधिक पढ़ा हो, आगे का पाठ पीछे और पीछे का पाठ आगे करके पढ़ा हो, अक्षर को अशुद्ध अथवा मात्रादि घटा-बढ़ा कर बोला हो, किसी से बुलवाया हो, तत्संबंधी मेरा दोष मिथ्या हो।

Exposition: I criticize myself for all the faults committed during the day. In case I may have uttered any foul word during the day or had ill thoughts or committed any undesirable activity or I may have omitted any word in reading the scriptures or added any word or while reading scriptures, recited not in that order or wrongly recited any word or omitted any vowel or got pronounced any word incorrectly, I repent for the same.

सूचना : यहां तक के पाठों का कायोत्सर्ग की अवस्था में चिंतन करें। तत्पश्चात् **नमोकार मंत्र** के उच्चारण के साथ कायोत्सर्ग संपन्न करना चाहिए।

Information: The lessons mentioned so far should he contemplated in Kayotsarg (the posture of meditation –state of detachment from the body). Thereafter it should be concluded by reciting Namokar Mantra.

॥ प्रथम आवश्यक संपूर्ण ॥

|| First Aavashyak Concluded ||

द्वितीय आवश्यक : चतुर्विंशति-स्तव
Second Aavashyak : Chaturvinshati-stav

विधि : 'वन्दन सूत्र' (तिक्खुत्तो के पाठ) से गुरु महाराज को विधिपूर्वक वन्दन करके **चतुर्विंशतिस्तव** नामक द्वितीय आवश्यक की आज्ञा लें। गुरुदेव की आज्ञा प्राप्ति के पश्चात् **'चतुर्विंशतिस्तव'** (लोगस्स का पाठ, देखें पृष्ठ 65) का उच्चारण खड़े होकर करें।

Procedure: In prescribed manner bow to Jain Monk reciting the aphorism of Tikhutto. Thereafter seek the permission for reciting hymn in appreciation of 24 Tirthankar (The lesson of logass see pp. 65) while standing.

॥ द्वितीय आवश्यक संपूर्ण ॥

|| Second Aavashyak Concluded ||

तृतीय आवश्यक : वन्दन
Third Aavashyak : Vandan

विधि : गुरु महाराज को **वन्दन** करके वन्दन नामक तृतीय आवश्यक की आज्ञा लें। तत्पश्चात् **'इच्छामि खमासमणो'** के पाठ का दो बार विधि सहित उच्चारण करें। (इच्छामि खमासमणो के पाठ और आराधना विधि के लिए देखें पृष्ठ 69-73।)

Procedure: After bowing to the master (jain monk) one should seek permission, for third avashyak. Thereafter the aphorism of 'Ichhami Khamasamano..' should be recited twice. (For this lesson and procedure of its recitation see pp. 69-73).

॥ तृतीय आवश्यक संपूर्ण ॥

|| Third Aavashyak Concluded ||

चतुर्थ आवश्यक : प्रतिक्रमण
Fourth Aavashyak : Pratikraman

विधि : 'वन्दन सूत्र' से गुरु महाराज को वन्दन करके प्रतिक्रमण नामक चतुर्थ आवश्यक की आज्ञा लें। उसके बाद कायोत्सर्ग में पढ़े गए 99 अतिचारों के पाठों का उच्चारण करें। तत्पश्चात् दायां घुटना ऊंचा रखके तथा बायां घुटना भूमि पर रखकर 'श्रावक सूत्र' के रूप में क्रमशः **'नमोकार सूत्र', 'सामायिक सूत्र'** (करेमि भंते), एवं **'मंगल सूत्र'** (चत्तारि मंगलं) का उच्चारण करें। उसके बाद **'इच्छामि ठामि'** एवं **'इच्छाकारेण सूत्र'** का मनन करके वन्दन सूत्र पढ़ गुरु महाराज को वन्दन करें। फिर ज्ञान के अतिचारों के पाठ **(आगमे तिविहे पण्णत्ते)** से ज्ञानातिचारों की आलोचना करें। उसके बाद निम्नोक्त पाठ पढ़ें–

Procedure: Reciting Vandan Sutra, bow to Guru Ji and seek permission for pratikraman. Thereafter recite all the 99 atichars (likely digressions) loudly which earlier had been mentally gone through. Then keeping the right knee lifted and left knee touching the ground in 'Shravak Sutra' recite 'Nafmokar Mantra' Samayik Sutra (karemi Bhante..) and Mangal Sutra (Chattari Manglam) loudly in this very order. Thereafter mentally he should go through the lesson of 'Ichhami Thami' and 'Ichha Karen' Sutra and then bow to Maharaj Ji with Vandan Sutra. Thereafter the self –criticism be done about faults in study of Scriptures by reciting the specified lesson of 'Agamey Tivihey Pannattey'. Thereafter the following aphorism should be recited.

दर्शन (सम्यक्त्व) का पाठ

दर्शन-सम्यक्त्व परमत्थ संथवो वा, सुदिट्ठ परमत्थ सेवणावावि, वावण्ण कुदंसण-वज्जणा य एहवी सम्मत्त सद्दहणा; एहवा समणोवासयाणं सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा, तं जहा ते आलोउं संका, कंक्खा, वितिगिच्छा, परपासंडी-पसंसा, परपासंडी संथवो। एवं पांच अतिचार मध्ये जे कोई अतिचार लागा होय तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : दर्शन सम्यक्त्व का स्वरूप इस प्रकार है–परमार्थ रूप रत्नत्रय एवं नौ तत्वों का संस्तव तथा ज्ञान करना, जिन्होंने सुदृष्टि से परमार्थ को जान लिया है उनकी सेवाभक्ति करना, जिन्होंने सम्यक्त्व का वमन कर दिया है ऐसे लोगों की संगति का वर्जन करना, मिथ्यादृष्टियों एवं मिथ्यादर्शन का वर्जन करना, इस प्रकार से सम्यक्त्व की श्रद्धा होती है। सम्यक्त्व के प्रमुख रूप से पांच अतिचार हैं जिनका ज्ञान होना तो श्रावक के लिए आवश्यक है परन्तु उनका आचरण करना योग्य नहीं है। दर्शन के पांच अतिचार इस प्रकार हैं– (1) **शंका**–जिन वचनों में संदेह करना, (2) **कांक्षा**–मिथ्यामतों की आकांक्षा करना, (3) **विचिकित्सा**–धर्म के फल में संदेह करना, (4) **पर-पाखंडी प्रशंसा**–अन्य मतावलंबियों की प्रशंसा करना, (5) **पर-पाखण्डी संस्तव**–अन्य मतावलंबियों से परिचय करना। इन पांच अतिचारों में से यदि कोई अतिचार लगा हो तो मैं उसकी-आलोचना करता हूं। मेरा वह दुष्कृत मिथ्या हो।

Exposition: The nature of Darshan Samyaktva is as under—To gain knowledge of three jewels leading to salvation and nine elements (tatvas) appreciate them who possess it. Serve those who have understood the path leading to salvation with right perception; avoid company of those who have discarded right perception after gaining it; avoid wrong perception and company of those who have wrong perception. In this manner the faith in right perception becomes firm. There are five likely faults in practice of right faith and it is essential for the Shravak to know them. They are as follows-

(1) Suspicion: To have doubt in the word of the Lord.

(2) Kansha: To have keen desire to have knowledge about wrong perception.

(3) Vichikitsa: To have doubt about the reward of practice of Dharma.

(4) To appreciate followers of wrong faith or other faiths.

(5) To have intimate acquaintance with follower of wrong faith. In case I may have committed any one of the five faults. I condemn them. May my faults be condemned.

विधि : तत्पश्चात् अग्रिम पाठों द्वारा बारह व्रतों के स्वरूप का चिन्तन एवं अतिचारों की आलोचना करें।

Procedure: Thereafter by reciting the lessons mentioned ahead, one should think of the nature of twelve resolves and undertake self-criticism of faults committed there in.

प्रथम अणुव्रत : स्थूल प्राणातिपात विरमण

पहिला अणुव्रत–थूलाउ पाणाइवायाउ-बेरमणं, तस जीव बेइंदिय, तेइंदिय, चउरिंदिय, पंचेंदिय जाणी पीछी संकल्पी, ते मांहि सगा-सम्बंधी, शरीर माहिला पीड़ाकारी, सअपराधी, ते उपरान्त निरपराधी, आकुट्टी हणवानी बुद्धि ने हणया का पच्चक्खाण, जावज्जीवाय दुविहं, तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, एहवा पहिला थूल-प्राणातिपात-विरमण व्रत ना पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा, तं जहा ते आलोउं 1. बंधे, 2. वहे, 3. छविच्छेए, 4. अइभारे, 5. भत्त-पाण-वोच्छेए, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : प्रथम अणुव्रत–मैं स्थूल जीवों की हिंसा से पीछे हटता हूं। शरीर में पीड़ा उत्पन्न करने वाले, स्वजन-संबंधियों का अहित करने वाले एवं अपराध करने वाले प्राणियों के सिवाय शेष सभी दो इन्द्रिय वाले, तीन इन्द्रिय वाले, चार इन्द्रिय वाले एवं पांच इन्द्रिय वाले प्राणियों की जान-बूझ कर एवं मारने की बुद्धि से हिंसा करने का त्याग करता हूं। जीवनभर के लिए दो करण, तीन योग से, अर्थात् मन, वचन एवं काय से किसी भी निरपराध त्रस जीव की हत्या न मैं स्वयं करूंगा और न ही किसी से हिंसा कराऊंगा। प्रथम स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत के पांच प्रमुख अतिचार हैं। इन पांच अतिचारों को जानना तो चाहिए परन्तु इनका आचरण नहीं करना चाहिए। पांच अतिचार इस प्रकार हैं–(1) वध, (2) बंध (3) अंगोपांग आदि का छेदन करना, (4) अतिभार, एवं (5) भक्त-पान व्यवच्छेद। उक्त पांच अतिचारों में से किसी भी अतिचार का यदि मैंने सेवन किया हो तो उससे मैं पीछे हटता हूं। मेरा वह दुष्कृत दूर हो।

Exposition: First partial Vow: I withdraw myself from violence to gross living beings. I withdraw from causing violence to two sensed, three sensed, four sensed and five sensed living being intentionally and with a desire to kill then except those who have caused pain in my body or who caused damage to my relatives. I for the entire life shall never mentally, orally or physically cause or get caused violence to mobile living beings who have not committed any crime towards me. There are five primary faults that can occur in practice of the resolve. They should properly be understand but should not be committed. They are as follows:—(1) To kill (2) To imprison (3) To cut limbs or sub-limbs of living being (4) To put a load on them more than what they can carry. (5) No to give food and water (or wages) to them at

proper time. In case I have committed any such fault, I feel sorry for them. My such fault may be condoned.

भावार्थ : साधु द्वारा ग्रहण किए गए व्रत 'महाव्रत' एवं श्रावक द्वारा ग्रहण किए गए व्रत 'अणुव्रत' कहलाते हैं। अणुव्रत का अर्थ है–आंशिक रूप से ग्रहण किया गया व्रत। साधु तीन करण (करना, कराना एवं अनुमोदन करना) एवं तीन योग (मन, वचन एवं काय) से व्रत धारण करता है, जबकि श्रावक दो करण और तीन योग से, अथवा इससे भी कम स्तर पर व्रत धारण करता है। इसीलिए उस द्वारा ग्रहण किए गए व्रत 'अणुव्रत' कहे जाते हैं।

प्रस्तुत पाठ में स्व-शरीर में पीड़ा उत्पन्न करने वाले, सगे-संबंधियों के लिए कष्ट उत्पन्न करने वाले एवं किसी भी प्रकार का राजकीय या सामाजिक अपराध करने वाले प्राणियों को दण्डित करने का विकल्प श्रावक खुला रखता है। पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय दायित्वों का भार श्रावक के कन्धों पर होता है, इसलिए उसे अपराधियों को दण्ड देने के लिए विवश होना पड़ता है। जैन धर्म के अनुसार श्रावक के संदर्भ में अहिंसा का अर्थ है–न स्वयं जुल्म करना और न ही जुल्म सहना। जुल्म करना तो हिंसा है ही, जुल्म सहना भी हिंसा है। इसीलिए श्रावक अपराधियों को दण्डित करने का विकल्प खुला रखता है। शेष समस्त त्रस प्राणियों को जानते-बूझते, मारने की बुद्धि से मारने का वह त्याग करता है।

अनजाने में होने वाली हिंसा का विकल्प भी श्रावक के लिए खुला है। क्योंकि व्यापार करते हुए, कृषि करते हुए, वाहन आदि से आवागमन करते हुए त्रस प्राणियों की हिंसा हो जाना अस्वाभाविक नहीं है। परन्तु उस हिंसा में श्रावक के हृदय में हिंसक विचार नहीं होता है।

(पांच अतिचारों का सरलार्थ पृष्ठ 209 पर किया जा चुका है।)

Explanation: The vows accepted by an ascetic are called major vows and those by Shravak are called minor (or partial) vows. Anuvrat means a vow that has been accepted in part. A monk accepts a vow in three ways (mentally, physically and orally) and in three forms (doing, getting done and appreciating) while a Shravak takes the vows in three ways and in two forms (doing and getting done). He can accept a vow even in a lesser form than this. So his vows are called Partial Vows.

In this resolve, a householder (Shravak) is free to punish those who cause hurt in his body, or cause trouble to his relatives or in any form commit a crime punishable under the law or social crime. A Shravak has to discharge duties towards his family, society and the state. So he has to punish such criminal or defaulters. In Jainism the Ahinsa (non-violence in the context of a Shravak is that he shall neither

be cruel to others nor patiently tolerate cruelty towards him by others. So he is free to punish defaulters. He makes a resolve not to cause other living beings any violence intentionally or knowingly.

He is not held guilty of transgressing. this vow if out of ignorance any violence is caused, because in trade, in farming and in moving in vehicles, violence is caused to some living beings that cannot be avoided. In such a violence, there is no element in his heart of causing violence .

(The simple meaning of five atichars—faults has been narrated at pp. 209)

द्वितीय अणुव्रत : स्थूल मृषावाद विरमण

बीजूं अणुव्रत थूलाउ मोसावायाउ वेरमणं, कन्नालिए, गोवालिए, भोमालिए, थापणमोसा, मोटिको कूड़ी साख इत्यादि मोटकूं झूठ बोलवाना पच्चक्खाण, जावजीवाय दुविहं तिविहेणं, न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा कायसा। एहवा बीजा थूल मृषावाद-विरमण व्रतना पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तं जहा ते आलोउं, 1. सहसाभक्खाणे, 2. रहस्साभक्खाणे, 3. सदारमंतभेए, 4. मोसोवएसे, 5. कूडलेहकरणे, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ–द्वितीय अणुव्रत–मैं स्थूल मृषावाद से पीछे हटता हूं। कन्या (वर) संबंधी असत्य, गौ आदि पशुओं संबंधी असत्य, भूमि संबंधी असत्य, स्थापना (धरोहर) संबंधी असत्य, एवं गवाही आदि से संबंधी असत्य बोलने का जीवन पर्यंत के लिए दो करण, तीन योग से त्याग करता हूं। मैं मन, वचन एवं काय से न स्वयं स्थूल झूठ बोलूंगा और न ही किसी अन्य को स्थूल झूठ बोलने की प्रेरणा दूंगा।

स्थूल मृषावाद विरमण नामक द्वितीय अणुव्रत के पांच अतिचार हैं। इन्हें जानना तो चाहिए पर इनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे पांच अतिचार इस प्रकार हैं–(1) बिना सोचे-विचारे बोलना अथवा यूं ही किसी पर सहसा दोषारोपण कर देना, (2) किसी की गुप्त बात को, रहस्य को लोगों के सामने प्रकट कर देना, (3) अपनी पत्नी की गोपनीय/मर्म युक्त बातों को प्रकट कर देना, (4) दूसरों को झूठ बोलने का उपदेश देना, एवं (5) झूठे लेख लिखना, उक्त पांच अतिचारों में से किसी भी अतिचार से मेरा द्वितीय अणुव्रत दूषित हुआ हो तो उसकी मैं आलोचना करता हूं। मेरा वह दुष्कृत मिथ्या हो।

Exposition: Second Anuvrat: I discard gross falsehood. I discard for the entire life telling lie about girl (or boy), animals, land, things pawned, as a witness in three

ways (mentally, orally and physically) and in two forms namely, telling and getting told a lie, I shall not incite others to tell a lie.

There are five likely faults that may occur in practicing this vow of non-stealing. It is important to know them but one should not adopt them in his conduct. They are as follows.

(1) To speak without proper thinking or to cast an aspersion (or blame on other suddenly)

(2) To divulge one's secret to others.

(3) To disclose secret talk between husband and wife.

(4) To inspire others to tell a lie.

(5) To write false versions.

I feel sorry in case I may have committed any one of the above five faults. May my fault be condoned.

विवेचन : दृश्यमान जगत में मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जिसके पास अपनी एक विकसित भाषा है। भाषा के विकास से ही मनुष्य ने इतना विकास किया है। भाषा एक बड़ी शक्ति है। उस शक्ति का उपयोग सृजन और विध्वंस दोनों ही तरह से किया जा सकता है। मनुष्य अपने वचन-व्यापार के बल पर अपना और दूसरों का बहुत हित भी कर सकता है और बहुत नुकसान भी कर सकता है। श्रावक को वचन-व्यवहार किस विधि से करना चाहिए, कैसे वचन नहीं बोलने चाहिएं, यही तथ्य उसके द्वितीय अणुव्रत के आधार हैं।

'झूठ बोलना' एक बुराई है। अपने स्वार्थ को साधने के लिए ही व्यक्ति झूठ बोलता है। झूठ बोलने से व्यक्ति का अपना स्वार्थ तो सध जाता है, परन्तु उससे दूसरों का अहित भी हो जाता है। 'स्थूल मृषावाद विरमण व्रत' का यही अभिधेय है कि श्रावक को ऐसा झूठ कदापि नहीं बोलना चाहिए जिससे दूसरों का अहित हो अथवा किसी के प्राणों का नुकसान हो। बच्चों को बहलाने के लिए, अथवा रोजगार हेतु आटे में नमक के तुल्य सूक्ष्म असत्य बोलने का विकल्प श्रावक के लिए खुला है। क्योंकि संपूर्ण सत्य बोलते हुए व्यापारिक जीवन का निर्वाह संभव नहीं हो पाता है। व्यापारी को चार आने की वस्तु को पांच आने की कह कर बेचना पड़ता है। इतना असत्य सूक्ष्म असत्य की श्रेणी में आता है। चार आने की वस्तु को आठ आने की कहकर बेचना, नकली वस्तु को असली कहकर बेचना एवं असली वस्तु में मिलावट करके बेचना, ये कर्म स्थूल झूठ की श्रेणी में आते हैं, ऐसा करने से श्रावक का द्वितीय व्रत दूषित हो जाता है।

श्रावक के द्वितीय अणुव्रत में पांच बड़े झूठ बताए गए हैं, यथा–(1) कन्या अथवा वर संबंधी झूठ। अपनी संतानों या अपने सगे-संबंधियों की संतानों का लग्न कराते हुए श्रावक को वर या कन्या के संबंध में यथातथ्य बात कहनी चाहिए। उनके गुण और दोष को छिपाकर गुणवान को दुर्गुणी एवं दुर्गुणी को गुणवान कह देना, यह स्थूल झूठ है। ऐसे झूठ से कन्या अथवा वर का भावी जीवन दुखमय हो जाता है।

(2) गौ आदि पशुओं से संबंधित झूठ, जैसे कि कम दूध देने वाली गाय या भैंस को अधिक दूध देने वाली बता कर बेच देना। इससे विश्वासघात का दोष तो लगता ही है, साथ ही बेचे गए पशु का जीवन भी संकट में पड़ जाता है।

(3) भूमि संबंधी झूठ। कम उपजाऊ जमीन को अधिक उपजाऊ कह कर बेच देना। ऐसा करने से खरीदने वाले को महा मानसिक व्यथा का शिकार होना पड़ता जिसका दोष झूठ बोलने वाले पर ही आता है।

(4) स्थापना मृषा–बिना किसी की साक्षी के रखे गए धन को दबा लेना, अथवा किन्हीं अन्य दो व्यक्तियों के मध्य स्वयं की साक्षी को किसी एक के लाभ के लिए बदल देना।

(5) झूठी गवाही देना।

उपरोक्त पांचों बड़े असत्यों से श्रावक को सावधान रहना चाहिए।

द्वितीय महाव्रत के पांच अतिचारों का स्वरूप मूलार्थ में ही स्पष्ट किया जा चुका है।

स्मरण रहे–प्रतिक्रमण करने वाली श्राविका को तृतीय अतिचार में **"सदारमंतभेए"** के स्थान पर **"स्वभरतारमंतभेए"** यह पद बोलना चाहिए।

Explanation: In the mundane world, only human being is such who is bestowed with a developed language. He has attained so much development only because of the development language. The language is a great power. This power can be used in both ways – for development and for destruction. On the basis of his power of speaking, a man can cause great welfare of himself and of others. He also can cause great harm. How a Shravak should talk to others, what type of language he should avoid—such implications are the basis of the Second Anuvrat.

To tell a lie is a bad thing. A person tells a lie for selfish end. He may succeed in his selfish motive by it but it results in disadvantage to others. The purpose of this vow of avoiding gross falsehood is that a shravak should never tell such a lie which may cause loss to others or may hurt any one's life-force. He is however; may make any false utterance in order to please a child or to seek an employment but that false

statement should be subtle like a little salt added to the flour. It is because the trade cannot flourish in case a person totally adopts truth. A businessman has to say that a thing costs him 50 paise while actually it cost 40 paise in order to sell that article. Such a false statement falls in the category of subtle falsehood, but to say that it costs him 80 paise while it costs 40 paise, or to say that relevant article is a true one while it is artificial (or a copy of the true one) or to adulterate a thing for selling and pronouncing that it is pure–all these statements fall in the category of gross falsehood. By such statement the Shravak maligns his second Vow.

In respect of Second Anuvrat of a Shravak five gross falsehood have been mentioned. They are–(1) While engaging his daughter or the son as the case may be or that of his near relatives, a shravak should disclose the real thing about them. He should not conceal their merit and demerits. To pronounce as meritorious one who is demeritorious and vice versa is gross falsehood. By such statement, the wedded life of that couple becomes nasty.

(2) To tell a lie about milch cattle such as cow. For instance if the cow concerned gives only a little milk, to say that it produces very much milk. Such a statement leads to mistrust. Simultaneously the life of the animal sold may also become troublesome.

(3) To make false statement about land – To tell about barran land as fertile for selling it. Due to such a statement the buyer feels great mental tension. So it is a fault of the seller.

(4) To make false statement about the article pawned – To deny the cash pawned by a person without the presence of any witness or when the dispute is between two parties, to make a statement as a witness (while actually he was not a witness to it) in order to cause gain to one of them.

(5) To appear as a witness and make a false statement.

A shravak should be coutious about abovesaid five faults.

The nature of five artichars of the second major vow has already been clearly mentioned.

It should be kept in mind that the Shravika (female devotee) should say 'Svabharta-mantbheya' instead of 'sadar-mantbhey'. It means that she says in respect of her husband.

तृतीय अणुव्रत : स्थूल अदत्तादान विरमण

तीजा अणुव्रत–थूलाउ अदिन्नादाणाउ वेरमणं–1. खातर खणी, 2. गांठडी छोड़ी, 3. तालापडि कुंची, 4. वाट पाडी, 5. पडी वस्तु धणीयानी जाणी इत्यादिक मोटका अदत्तादाण सगा-सम्बंधी व्यापार-सम्बंधी तथा पडी निरधनी वस्तु ते उपरान्त मोटका अदत्तादाण लेवाना पच्चक्खाण, जावज्जीवाय दुविहं तिविहेणं, न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, एहवा तीजा थूल अदत्तादाण विरमण व्रतना पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तं जहा ते आलोउं, 1. तेणाहडे, 2. तक्करप्पउग्गे, 3. विरुद्ध रज्जाइकम्मे, 4. कूड तोले, कूड माणे, 5. तप्पडिरूवग ववहारे। जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : तृतीय अणुव्रत में स्थूल चोरी से निवृत्त होता हूं। किसी के घर में सेंध लगाकर चोरी की हो, गांठ कतर कर अथवा जेबतराशी के द्वारा किसी का धन चुराया हो, किसी के ताले पर कोई अन्य चाबी लगाकर द्रव्य हरण किया हो, किसी राह चलते को लूटा हो, मार्ग में पड़ी हुई वस्तु को उसके स्वामी का ज्ञान होते हुए भी उठा कर अपना लिया हो, इस प्रकार की स्थूल चोरी से मैं पीछे हटता हूं। स्वजन-परिजन संबंधी एवं व्यापार संबंधी सूक्ष्म अदत्तादान का मुझे आगार है तथा ऐसी वस्तु जिसका कोई स्वामी नहीं है अथवा जिसके स्वामी का मुझे ज्ञान नहीं है उसे ग्रहण करने का भी आगार। उपरोक्त आगारों के अतिरिक्त स्थूल चोरी का मैं जीवनभर के लिए दो करण-तीन योग से त्याग करता हूं। मैं मन से, वचन से एवं काय से स्थूल चोरी न स्वयं करूंगा एवं न ही चोरी करने के लिए किसी को प्रेरित करूंगा। तृतीय अणुव्रत के पांच अतिचार हैं जिन्हें जानना तो आवश्यक है पर उनका आचरण करना उचित नहीं है। वे पांच अतिचार इस प्रकार हैं–(1) चोरी की वस्तु लेना, (2) चोरों की सहायता करना, (3) राज्य के विरुद्ध काम करना, (4) कम-अधिक तोल-माप करना, एवं (5) अधिक मूल्य की वस्तु दिखाकर, उसके स्थान पर छलपूर्वक कम मूल्य की वस्तु दे देना। उक्त अतिचारों में से यदि किसी अतिचार से मेरा व्रत दूषित हुआ है तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। मेरा वह दुष्कृत मिथ्या हो।

Exposition: By accepting the third partial vow (Anuvrat) I undertake to avoid gross stealing. I may have broken into any house for stealing. I may have committed an act of pickpocketing. I may have opened the lock of any house with another key and committed theft. I may have robbed any traveller. I may have picked up any article lying on the way fully knowing who is its owner but kept it still with me. Now

I withdraw myself from all such acts of gross stealing. I may, however, perform subtle such acts concerning business or relating to relatives and persons belonging to my family. I am free to keep such article which does not belong to any one or whose owner is not in my knowledge. All other acts of stealing, I discard for entire life in three ways namely mentally, orally and physically and in two forms namely doing and in getting done.

There are five faults that may happen in practice of this vow. They are – (1) To accept an article knowing that it is a stolen article (2) To help the thieves (3) To do any act contrary to the state law (4) To weigh or measure less or more (5) To show a costly thing but deceitfully to give in its place a thing of lesser value. In case I may have committed any one of the above faults, I withdraw myself from the same I feel sorry for such faults. May my faults be condoned.

विवेचन : श्रावक एक जिम्मेदार नागरिक का जीवन-यापन करता है। वह स्थूल चोरी से सदैव दूर रहता है। सूक्ष्म अदत्तादान का उसे आगार होता है। सूक्ष्म अदत्तादान जैसे कि–अपने ही स्वजनों की कोई छोटी वस्तु बिना उनकी आज्ञा से ले लेना, व्यापार में–कुछ सूक्ष्म बातें ग्राहक से छिपा लेना, मार्ग में पड़ी किसी ऐसी वस्तु को अपने अधिकार में ले लेना जिसके स्वामी के बारे में किसी को भी पता न हो।

Explanation: A shravak leads the life of responsible citizen. He always keeps himself away from gross acts of theft. He, however, has not discarded subtle form of stealing. The instance of subtle form are to take a small article of relatives without their permission, to conceal some subtle matters from the customer or to take possession of an articles lying on the way whose ownership is not known to any one.

चतुर्थ अणुव्रत : स्वदार-संतोष

चौथूं अणुव्रत थूलाउ मेहुणाउ वेरमणं सदारासंतोसिए अवसेसं मेहुणनूं सेववाना पच्चक्खाण, जावज्जीवाय देवतादेवी सम्बन्धी दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा। मनुष्य तिर्यंच सम्बन्धी एगविहं एगविहेणं न करेमि कायसा। एहवा चौथा स्थूल मेहुण विरमण व्रतना पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तं जहा, ते आलोउं 1. इत्तिरियपरिग्गहियागमणे, 2. अपरिग्गहियागमणे, 3. अणंग-कीडा, 4. पर-विवाह-करणे, 5. काम-भोगेसु तिव्वाभिलासा, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : स्वदार संतोष नामक चतुर्थ अणुव्रत में–अपनी स्त्री में संतोष रखकर शेष सभी प्रकार के मैथुन को सेवन का त्याग करता हूं। जीवन भर के लिए देवता-देवी संबंधी मैथुन सेवन का दो करण और तीन योग से त्याग करता हूं। मन, वचन एवं काय से न मैं स्वयं देव-देवी संबंधी मैथुन सेवन करूंगा एवं न ही उसके लिए किसी को प्रेरित करूंगा। मनुष्य और तिर्यंच संबंधी मैथुन-सेवन का एक करण एवं एक योग से त्याग करता हूं अर्थात् मैं अपनी काय से मनुष्य-तिर्यंच संबंधी काम-भोगों का सेवन नहीं करूंगा।

प्रस्तुत 'स्थूल मैथुन विरमण' व्रत के पांच अतिचार हैं जिन्हें जानना तो आवश्यक है परन्तु उनका आचरण करना योग्य नहीं है। वे पांच अतिचार इस प्रकार हैं–(1) अल्प आयु वाली अपनी विवाहिता स्त्री से गमन करना, (2) जिस स्त्री से अभी सगाई ही हुई है, विधिवत् विवाह नहीं हुआ है ऐसी स्त्री से गमन करना, (3) कामांग के अतिरिक्त अंगों से काम का सेवन करना, (4) किसी दूसरे व्यक्ति की वाग्दत्ता से विवाह करना, एवं (5) काम-भोगों की तीव्र लालसा रखना। उक्त अतिचारों में से यदि कोई अतिचार मैंने सेवन किया हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। दिवस संबंधी मेरा वह दुष्कृत मिथ्या हो।

Exposition: Accepting the fourth partial vow of satisfaction of sex with one's own spouse. I keeping myself satiated in my wife discard sex and all such like activities with any other woman. For the entire life, I discard sex with any god or goddess in two forms namely doing and inspiring or getting done and in three way namely mentally, orally and physically. In case of human beings and animals, I discard sex in one form namely doing myself and in one way namely physically.

There are five digressous that may happen in the practice of the vow of discarding gross sex like activities or cohabitation. They are as follows– (1) To have sex with one's own wife while she is yet of tender age (2) To have sex with the woman who is just betrothed and not yet married to me (3) To have sex like activities in an unnatural manner (4) To get married to a woman who is betrothed (or married) to someone else (5) To have intense desire for sex. In case I may have committed any one of the above faults, I feel extremely sorry for the same, criticize myself for the same. May my fault be condoned.

विवेचन : मोहनीय कर्म के उदय से भोगों की लालसा उत्पन्न होती है। मोक्ष का इच्छुक श्रावक अपने विवेक और वैराग्य से उस लालसा को शान्त करता है। भोगों की अथाह लालसा के परिसीमन के लिए ही वह विवाह करता है। जिस स्त्री से विवाह करता है, जीवन भर उसी में वह संतुष्ट रहता है।

श्रावक देव-देवी संबंधी मैथुन का दो करण-तीन योग से, तथा मनुष्य और तिर्यंच संबंधी मैथुन का एक करण और एक योग से त्याग करता है। मनुष्य और तिर्यंच संबंधी मैथुन सेवन से वह स्वयं विरत होता है, परन्तु अपनी संतानों से संबंधित एवं अपने स्वामीत्व के पशुओं से संबंधित मैथुन में उसकी मानसिक और वाचिक अनुमोदना सहज रूप से जुड़ी होती है। अपनी संतानों को त्याग हेतु वह प्रेरित तो कर सकता है परन्तु बलात् उन पर अंकुश नहीं लगा सकता। इसी प्रकार अपने अधीनस्थ पशुओं के संदर्भ में भी वह उनके मैथुन संबंधी कार्य-कलापों में निमित्त बनता है।

'काम संसार-वृद्धि का मूल कारण है' इस भगवद् वचन पर अटूट श्रद्धा रखने वाला श्रावक सदैव कामोन्मूलन के प्रति सचेत रहता है। कदाचित् प्रमादवश उसके व्रत में दोष उत्पन्न हो जाए तो प्रतिक्रमण के द्वारा वह उस दोष को दूर कर लेता है।

Explanation: The desire for sexual activity arises due to deluding Karma. A shravak has a keen desire to attain salvation. So he cools down his desire for sex through discrimination and detachment. He enters in marital bondage in order to limit the instinct of sex. He remains contented throughout life with the woman to whom he is married.

A Shravak discards sex with gods and goddesses in three ways and in two forms and with human beings and animals in one way and in one form. He avoids sex with any human being or animal but his support or concurrence exists mentally and orally in sexual activities of the members of his family and in the animals belonging to him. He can inspire the members of his family to avoid sex like activities but cannot force them to avoid such activities. Similarly he is involved in sexual activities of the animals under his charge.

Sex is the basic factor of increasing the population. A shravak has firm faith in the word of the omniscient. So he is always vigilant in completely avoiding sex. In case due to any slackness, any minor fault occurs in practicing this vow, he removes the effect of it through pratikraman.

पंचम अणुव्रत : स्थूल परिग्रह परिमाण

पांचमूं अणुव्रत थूलाओ परिग्गहाओ-वेरमणं खित्तवत्थुनूं यथा-परिमाण, हिरण्णसोवण्णनूं यथा-परिमाण, धन-धाण्णनूं यथा परिमाण, दुप्पदचउप्पदनूं यथा-परिमाण, कूविय-धातुनूं यथा-परिमाण, ए यथा परिमाण कीधूं छे, ते उपरान्त

पोतानुं करी परिग्रह राखवाना पच्चक्खाण जावजीवाय, एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा, वयसा, कायसा। एहवा पांचमा थूल-परिग्रह-परिमाण व्रत ना पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तं जहा ते आलोउं–1. खित्तवत्थुप्पमाणाइक्कमे, 2. हिरण्णसोवण्णप्पमाणाइक्कमे, 3. धनधाण्णप्पमाणाइक्कमे, 4. दुप्पदचउप्पद-प्पमाणाइक्कमे, 5. कुवियधातुप्पमाणाइक्कमे, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : 'परिग्रह परिमाण' नामक पांचवें अणुव्रत में स्थूल परिग्रह से निवृत्ति करता हूं। (1) क्षेत्र-वास्तु–खेत-खलिहान, बाग-बगीचे आदि क्षेत्र एवं घर, मकान, दुकान आदि वास्तु का जितना परिमाण किया है, (2) हिरण्य-सुवर्ण-सोने-चांदी, मणि-माणिक्य आदि का जितना परिमाण किया है, (3) धन-धान्य–रुपया, पैसा आदि धन एवं गेहूं, चावल आदि धान्य का जितना परिमाण किया है, (4) द्विपद-चतुष्पद–दास-दासी आदि द्विपद एवं गाय, भैंस, बैल आदि चतुष्पद का जितना परिमाण किया है, एवं (5) कुविय धातु–घर में उपयोग आने वाली सभी वस्तुओं का जितना परिमाण किया है–उपरोक्त परिमाण के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार के परिग्रह को रखने का एक करण एवं तीन योग से त्याग करता हूं। अर्थात् परिग्रह परिमाण अणुव्रत ग्रहण करते हुए मैंने जितने-जितने परिग्रह को अपने अधिकार में रखने का परिमाण किया था, उससे अधिक परिग्रह को मन, वचन एवं काय से त्यागता हूं। 'स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत' के पांच अतिचार हैं, उन्हें जानना तो जरूरी है परन्तु उनका आचरण करना उचित नहीं है। पांच अतिचार इस प्रकार हैं–(1) क्षेत्र-वास्तु के परिमाण का अतिक्रमण, (2) हिरण्य-सुवर्ण के परिमाण का अतिक्रमण, (3) धन-धान्य के परिमाण का अतिक्रमण, (4) द्विपद-चतुष्पद के परिमाण का अतिक्रमण, एवं (5) घर में उपयोग होने वाली वस्तुओं के परिमाण का अतिक्रमण। उक्त अतिचारों में से यदि कोई अतिचार लग गया हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। मेरा वह दुष्कृत निष्फल हो।

Exposition: In practicing the fifth partial vow of limiting possessions (and attachment thereof), I withdraw from gross attachment. (1) I have decided a limit for my open land, buildings, orchards, fields, homes, ships (2) I have resolved to have gold, silver, jewellery only up to a certain limit. (3) I have undertaken a limit for possession of money and foodgrains such as wheat rice and the like. (4) I have decided a limit for my possession of animals and servants such as cows, buffalos, bullocks, maids employees. (5) I have also decided a limit about other different household articles – I undertake not to cross such limit in one form namely in crossing

it myself and in three ways namely mentally, orally and physically. In other words while accepting the vow, the limit for various things that I have decided, I shall not cross it. There are five deviations that may occur while practicing this vow. They are as follows:- (1) To cross the limit fixed for possession of open land and building. (2) To cross the limit about possession of gold and silver. (3) To cross the limit about possession of gold and money and food grains. (4) To cross the limit about possession of bipeds (Servants, maids) and quadrupeds (animals). (5) To cross the limit about possession of other articles of domestic use. In case I may have crossed any such limit, I feel sorry for it and criticize myself. May my fault be condoned.

विवेचन : लाभ लोभ का प्रधान कारण है। जैसे-जैसे लाभ बढ़ता जाता है वैसे-वैसे लोभ बढ़ता जाता है। श्रावक के लिए इस तथ्य को जानकर अपने परिग्रह को नियम के द्वारा परिमित कर लेना आवश्यक होता है। 'स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत' का यही अभिधेय है। मर्यादा-रेखा खींच देने से लोभ पर विजय प्राप्त करना सरल हो जाता है। उससे संतोष वृत्ति का जन्म होता है और संतोष ही सच्चा सुख भी है।

Explanation: Benefit is the primary factor of causing greed. When the gain increases, the greed increases in the same ratio. Knowing this basic fact a Shravak must control his desire for possessions through the Vow of limit to possessions (Pasiggreh). This is the primary purpose of this vow of limiting gross possessions. When a person decides a limit about his possessions, it becomes easy to control the instinct of greed. It gives rise to sense of satisfaction and real happiness lies in satisfaction.

छठा व्रत : दिशा परिमाण

छट्ठूं दिशिव्रत–ऊर्ध्वदिशानूं यथा-परिमाण, अधो दिशानूं यथा परिमाण, तिरियदिशानूं यथा-परिमाण, ए यथा-परिमाण कीधूं छे, ते उपरान्त सइच्छाए, कायाए, जइने पंच आस्त्रव सेववाना पच्चक्खाण, जावज्जीवाय दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा। एहवा छट्ठा दिशिव्रतना पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा; तं जहा ते आलोउं, उड्ढदिसिप्पमाणाइक्कमे अहोदिसिप्पमाणाइक्कमे, तिरियदिसिप्पमाणाइक्कमे, खित्तवुड्ढी सइअंत्तरद्धा य, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : दिशा परिमाण नामक सातवें व्रत संबंधी अतिचारों की आलोचना करता हूं। ऊंची दिशा में जाने का जितना परिमाण किया है, नीची दिशा में जहां तक जाने का परिमाण किया

है, तिर्यक्–पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण दिशाओं में जाने का जितना परिमाण किया है–उक्त तीनों (छहों) परिमित दिशाओं में अपनी इच्छा से सशरीर बाहर जाकर दो करण, तीन योग से अर्थात् मन, वचन एवं काय से स्वयं आस्रव सेवन का तथा दूसरों को आस्रव सेवन के लिए प्रेरित करने का त्याग करता हूं। छठे दिशाव्रत के पांच अतिचार हैं जिन्हें जानना तो चाहिए परन्तु उनका सेवन नहीं करना चाहिए। पांच अतिचारों का स्वरूप इस प्रकार है–(1) ऊर्ध्व दिशा के परिमाण का अतिक्रमण किया हो, (2) अधोदिशा के परिमाण का अतिक्रमण किया हो, (3) तिर्यक् दिशा के परिमाण का अतिक्रमण किया हो, (4) क्षेत्र-वृद्धि की हो, एवं (5) संदेह होने पर भी आगे गमन किया हो। दिवस संबंधी उक्त अतिचारों से यदि मेरा व्रत दूषित हुआ है तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। मेरा वह दुष्कृत मिथ्या हो।

Exposition: I condemn myself for any deviation in practicing this sixth vow of limit to travel in different directions. I have fixed a limit of movement in upward direction, movement in downward direction movement towards north, south, east and west. I make a resolve that in three ways – mentally, orally and physically and in two forms namely moving myself or in sending others, I shall not cross such limits.

There are five deviations (atichars) that may happen in practicing this vow. One should know them but should not practice them. They are as follows :- (1) To cross the limit fixed for movement in upward direction. (2) To cross the limit fixed for movement in downward direction. (3) To cross the limit for movement in the same plane. (4) To increase the limit already fixed (5) To have a doubt whether the limit has been crossed, yet to move ahead. In case during the day, I may have crossed any limit and thus deviated in practicing the vow, I feel sorry for the same and undertake self-criticism. May my fault be condoned.

विवेचन : सूत्र में पढ़े गए 'सइच्छाए' शब्द का अर्थ है–अपनी इच्छा से। अर्थात् इच्छा पूर्वक जानबूझकर मर्यादित क्षेत्र से बाहर जाने का त्याग करता हूं। इसमें राजा की आज्ञा से, देव योग से अर्थात् ट्रेन आदि में नींद आ जाने से यदि क्षेत्र की उल्लंघना हो तो व्रत खण्डित नहीं होता।

'क्षेत्र वृद्धि' से तात्पर्य है–यदि चारों दिशाओं में सौ-सौ किलोमीटर तक जाने की मर्यादा की हुई है। कालान्तर में पूर्व दिशा में अधिक दूरी तक जाने का प्रसंग आने पर पश्चिम दिशा का परिमाण कम करके पूर्व दिशा के परिमाण में वृद्धि कर लेना। ऐसा करना दोषप्रद है। इससे श्रावक का ग्रहीत व्रत दूषित हो जाता है।

Explanation: The word 'Sa-ichhaye' in the aphorism (Hindi version) means with one's own desire. It means I voluantariy and knowing very well decide not to go beyond certain limit fixed by me. This vow is not considered as transgressed in case under the orders of the king (government), under the influence of any angel, or due to sleep in the train, he has crossed that limit.

The fault of increasing the area is as under:– Suppose a person has taken a vow that he shall not go beyond 100 km in any of the four directions. With the passage of time.., he feels that he has to go beyond limit in the east. In case he increases his limit of movement in the east by reducing the limit of movement in the western direction, it is considered as the diviation in the vow. A shravak should not commit such a fault.

सातवां व्रत : उपभोग-परिभोग परिमाण

सातमूं व्रत–उवभोग-परिभोगविहं पच्चक्खायमाणं ऊल्लणियाविहं, दंतणविहं, फलविहं, अब्भंगणविहं, उवट्टणविहं, मज्जणविहं, वत्थविहं, विलेवणविहं, पुप्फविहं, आभरणविहं, धूपविहं, पेज्जविहं, भक्खणविहं, ओदणविहं, सूपविहं, विगयविहं, सागविहं, माहुरविहं, जीमणविहं, पाणीविहं, मुखवासविहं, वाहणविहं, उवाहणविहं, सयणविहं; सचित्तविहं, दव्वविहं, इत्यादिक नूं यथा-परिमाण कीधूं छे, ते उपरान्त उवभोगपरिभोग–भोगनिमित्ते भोगवाना पच्चक्खाण, जावज्जीवाय, एगविहं, तिविहेणं न करेमि, मणसा, वयसा, कायसा; एहवा सातमां उवभोग- परिभोग दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–भोयणाउ य, कम्मउ य। भोयणाउ समणोवासयाणं पंच अइयारा जाणियव्वा– तं जहा–ते आलोउं सचित्ताहारे, सचित्तपडिबद्धाहारे अप्पोलिओसहि भक्खणया य, दुप्पोलिओसहि भक्खणया य, तुच्छोसहि भक्खणया य, जो मे देवसि अइयार कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

तत्थ णं जे ते कम्मउणं समणोवासयाणं पन्नरस्स कम्मादाणइं जाणियव्वाइं न समायरियव्वाइं, तं जहा–ते आलोउं–इंगालकम्मे वणणकम्मे, साडीकम्मे, भाडीकम्मे, फोडीकम्मे, दंतवाणिज्जे, लक्खवाणिज्जे, रसवाणिज्जे, केसवाणिज्जे, विसवाणिज्जे जंतपिलणियाकम्मे, निल्लंच्छणियाकम्मे, दवग्गि-दावणियाकम्मे, सर-दह-तलाय-परिसोसणियाकम्मे, असईजणपोसणियाकम्मे, जो मे देवसि अइयार कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : सातवें व्रत में उपभोग-परिभोग की वस्तुओं का प्रत्याख्यान करते हुए आगे कही जाने वाली 26 वस्तुओं का परिमाण करे। (1) शरीर पोंछने के लिए तोलिए, अंगोछे आदि का परिमाण, (2) दांत साफ करने के लिए दांतुन-मंजन आदि का परिमाण, (3) खाने के उपयोग में आने वाले आम, अंगूर आदि तथा बाल धोने के काम आने वाले आंवले-रीठे आदि फलों का परिमाण, (4) तेल, इतर आदि का परिमाण, (5) शरीर-शुद्धि के लिए लगाए जाने वाले उबटन, पीठी आदि का परिमाण, (6) स्नान के लिए जल का परिमाण, (7) वस्त्रों का परिमाण, (8) चन्दन, क्रीम आदि विलेपन की वस्तुओं का परिमाण, (9) पुष्पों की जाति एवं मात्रा का परिमाण, (10) आभूषणों का परिमाण, (11) धूप, अगरबत्ती आदि का परिमाण, (12) पीने वाले पदार्थों का परिमाण, (13) खाद्य पदार्थों का परिमाण, (14) चावल आदि पदार्थों का परिमाण, (15) विभिन्न दालों का परिमाण, (16) दूध, दही, घी, मक्खन, तेल, गुड़, शहद आदि का परिमाण, (17) घीया, तोरई आदि सब्जियों का परिमाण, (18) बादाम, पिस्ता, द्राक्षा आदि पदार्थों का परिमाण, (19) खाने के समय खाद्य वस्तुओं का परिमाण, (20) नदी, तालाब, कुएं आदि के जल का परिमाण, (21) लौंग, सुपारी आदि मुख को सुवासित करने वाले पदार्थों का परिमाण, (22) रथ, घोड़ा, बैल, गाड़ी, कार आदि परिवहन का परिमाण, (23) जूते, चप्पल आदि का परिमाण, (24) खाट, पलंग, कुर्सी, मेज आदि का परिमाण, (25) सचित्त वस्तुओं का परिमाण, (26) सचित्त-अचित्त सभी द्रव्यों का परिमाण। उपरोक्त 26 प्रकार की वस्तुओं का जितना परिमाण किया है, उस परिमाण से अधिक वस्तुओं के सेवन का जीवन भर के लिए एक करण एवं तीन योग से प्रत्याख्यान करता हूं। मर्यादा के उपरान्त उक्त पदार्थों के सेवन का मन, वचन एवं काय से त्याग करता हूं।

उपभोग-परिभोग नामक यह सातवां व्रत दो प्रकार का कहा गया है, जैसे कि-(1) भोजन संबंधी, एवं (2) व्यापार (कर्मादान) संबंधी। भोजन संबंधी इस व्रत के पांच अतिचार श्रावक के लिए जानने योग्य हैं पर आचरण करने योग्य नहीं हैं। पांच अतिचार इस प्रकार हैं-(1) जिन सचित्त द्रव्यों का त्याग अथवा परिमाण किया है उनका परिमाणातीत उपभोग करना, (2) सचित्त प्रतिबद्ध अर्थात् सजीव पदार्थों जैसे कि वृक्ष पर लगे हुए गोंद को वृक्ष से उतार कर खाना या वृक्ष से तोड़कर फल खाना, (3) ठीक प्रकार से जो पकी नहीं है अर्थात् ऐसी वस्तु का आहार करना जो कच्ची हो एवं पूरी तरह से अचित्त न हुई हो, (4) दुष्पक्व-पकने के बाद जिन वस्तुओं के वर्ण-गंध-रस आदि बिगड़ गए हों ऐसे पदार्थों का आहार करना, एवं, (5) तुच्छौषधि-जिस खाद्य पदार्थ में खाद्यांश अल्प एवं प्रक्षेपांश अधिक हो (गन्ना आदि) ऐसे पदार्थ का आहार करना। दिवस संबंधी उक्त अतिचारों से यदि मेरा सप्तम व्रत दूषित हुआ हो तो उसकी मैं आलोचना करता हूं। तत्संबंधी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो।

व्यापार संबंधी पन्द्रह कर्मादानों (कर्म बंधन के उत्कृष्ट कारणों) का स्वरूप श्रावक के लिए जानना आवश्यक है। परंतु उनको आचरण में लाना उचित नहीं है। पन्द्रह कर्मादानों (सूचनाः पन्द्रह कर्मादानों के विवरण हेतु देखिए पृष्ठ 214) का यदि भूलवश मैंने सेवन किया है तो उसकी मैं आलोचना करता हूं। दिवस-संबंधी मेरा वह दुष्कृत दूर हो।

Exposition: While accepting the seventh vow of limit to articles of immediate consumption and of frequent consumption, a shravak should fix the limit about the following 26 articles of daily use namely (1) Towel used for wiping the body and underwear. (2) The paste of powder used for cleaning the teeth. (3) Fruit such as mangoes, grapes and the like that are used for consumption and the powder used for cleaning the hair. (4) Oil, scent and the like. (5) The paste used for cleaning the body. (6) The water used for taking bath (7) Clothes (8) Sandalwood paste or cream (9) The quantity and type of flowers (10) Ornaments (11) Incense and such like articles of fragrance (12) Syrups used for drinking (13) Food articles (14) Rice and the like (15) Different type of pulses (16) Milk, curd, ghee, butter, honey and the like (17) Vegetable such as gourd, lady finger and the like (18) Almonds, dryfruits and the like (19) Dishes served at the time of consumption (20) Water of well, stream, tank and the like (21) Cardamom and other such like spices (22) Cart, horse, car and suchlike vehicles (23) Shoes, sandals and the like (24) Beds, chairs tables and the like (25) Article containing life (26) Things that are lifeless and those having life.

I take a vow that I shall not throughout my life cross the limit of above articles that I have decided while accepting the vow in three ways namely mentally, orally and physically and in one form namely using myself. Beyond the limit fixed by me, I discard the use of all such articles.

This seventh vow of use of articles of immediate consumption and articles of frequent consumption has been described in two forms namely (1) articles consumed (2) article traded (karmadan)

Five deviations that may occur are as follows (1) To consume or make use of articles beyond the limit fixed in the vow (2) To consume articles attached to the tree or to pluck fruit from the tree and consume it (3) To consume article which is not fully ripe or which is raw (4) To consume article which is not properly cooked or whose colour, taste or smell has spoilt (5) To consume an article wherein the element to be consumed is much less than the portion discarded such as sugar cane and the like.

I feel sorry for any such fault commit during the day. May my fault be condoned.

There are fifteen causes of severe Karmic bondage in respect of trading. It is important for a shravak to know their nature very well. But he should not enter in such trades. For details of fifteen karmadan (such trades see pp. 215). in case due to any lack of knowledge or inadvertently, I may have undertaken any such trade, I feel sorry for the same and shall soon wind up the same. I condemn such act. May my fault be condoned.

विवेचन : श्रावक का समग्र जीवन एक साधक का जीवन है। खान-पान से लेकर व्यापार-व्यवसाय तक वह स्वयं के लिए मर्यादाएं निर्धारित करता है। सूत्र के भावार्थ में श्रावक के खान-पान एवं व्यवसाय संबंधी प्रायः पूरा आचार स्पष्ट है। प्रबुद्ध श्रावक के लिए यह आवश्यक है कि वह गृहीत मर्यादाओं के प्रति पूर्णतः सचेत रहे। प्रमादवश किंचित् दोष उत्पन्न हो जाए तो उक्त पाठ के मनन-चिन्तन-आराधन से उस दोष की शुद्धि कर ले।

Explanation : The entire life of Shravak is that of a spiritual practitioner. He sets limit for the articles of consumption and articles of trading. In this aphorism such articles have been clearly narrated. It is essential for the learned Shravak, to remain vigilant about such limits. In case due to any slackness any fault is committed, he should by reciting and meditating this lesson remove the effect of that fault.

आठवां व्रत : अनर्थदण्ड विरमण

आठमूं, अनर्थदण्ड-विरमण व्रत ते—चउविहे अणत्थादंडे पण्णत्ते, तं जहा— अवज्झाणायरिए, पमायायरिए, हिंसप्पयाणे, पावकम्मोवएसे, एहवा अनर्थदण्ड सेववाना पच्चक्खाण जावज्जीवाय; दुविहं तिविहेणं, न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा। एहवा आठवां अनर्थ-दंड-विरमण व्रत ना पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तं जहा—ते आलोउं; 1. कन्दप्पे, 2. कुक्कुइए, 3. मोहरिए, 4. संजुत्ता-हिगरणे, 5. उवभोग-परिभोग अइरत्ते, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : आठवें व्रत में अनर्थ-दण्ड से निवृत्त होता हूं। अनर्थ दण्ड चार प्रकार का प्रतिपादित किया गया है, यथा—(1) अपध्यान करना अर्थात् आर्त्त और रौद्र ध्यानों में निमग्न रहना, (2) प्रमाद का आचरण करना, (3) हिंसा-प्रदान—हिंसा के निमित्तिक साधनों—जैसे तलवार, भाला, हल, ऊखल आदि उपकरण दूसरों को देना, (4) दूसरों की पाप में प्रवृत्ति हो जाए ऐसा उपदेश

देना। उपरोक्त चारों प्रकार के अनर्थ दण्ड का मैं जीवनभर के लिए दो करण एवं तीन योग से प्रत्याख्यान करता हू। मन, वचन एवं काय से अनर्थ दण्ड का न मैं स्वयं सेवन करूंगा एवं अन्य किसी को सेवन करने के लिए प्रेरित भी नहीं करूंगा।

'अनर्थ दण्ड विरमण' व्रत के पांच अतिचार हैं जो ज्ञेय तो हैं पर आचरणीय नहीं हैं। वे पांच अतिचार इस प्रकार हैं-(1) काम-विकार उत्पन्न करने वाली कथा करना, (2) भाण्ड की भांति शारीरिक कुचेष्टाएं करना, (3) बिना सोचे-विचारे बोलना, (4) मर्यादा से अधिक शस्त्रों का संग्रह करना, एवं (5) उपभोग-परिभोग की वस्तुओं में अत्यधिक आसक्ति रखना। उपरोक्त दिवस संबंधी अतिचारों से यदि मेरा व्रत दूषित हुआ है तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। मेरा वह दुष्कृत मिथ्या हो।

Exposition: By accepting the eighth vow I detach myself from activity which causes unnecessary punishment (trouble) to others. It is of four types namely (1) To think perversely or to remain absorbed in state of grief or anger (2) To conduct myself in indolent manner. (3) To give such articles to others that cause violence to living beings namely sword, spade plough and the like. (4) To advise others in such a manner that he may engage in sinful acts. I withdraw myself from all the four above said activities for entire life in two forms namely doing myself and inspiring others to do it and in three ways namely mentally, orally and physically.

There are five transgressions that may occur in practicing this vow of avoiding avoidable violence to others. They are as under. (1) To engage in talk that generates sexual feelings (2) To make postures like a clown (3) To speak not properly considering its consequences (4) To collect literature or scriptures more than what is essential (5) To remain extremely attached to articles of immediate consumption and those of frequent consumption. I may have committed any one of the above-mentioned faults. I criticize and condemn such faults. May it be condoned.

विवेचन : जिस कार्य से किसी भी प्रकार के अर्थ की सिद्धि न हो उसे अनर्थ-दण्ड कहा जाता है। कृषि, व्यापार आदि करते हुए जो पाप लगता है वह अर्थ-दण्ड है। कृषि आदि के अभाव में श्रावक के लिए जीवन-निर्वाह करना असंभव है। परन्तु कुछ कार्य ऐसे हैं जिनसे किसी भी प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती है, जो अज्ञान, प्रमाद अथवा दिल बहलाव के लिए किए जाते हैं, वे अनर्थ-दण्ड की श्रेणी में आते हैं जो श्रावक के लिए सर्वथा त्यागने योग्य हैं। ऐसे अपध्यान, प्रमाद, हिंसा-प्रदान आदि अनर्थ-दण्ड से श्रावक को सदैव सावधान रहना चाहिए। भूलवश दोष लग जाए तो उक्त पाठ के चिन्तन द्वारा आत्म-शुद्धि कर लेनी चाहिए।

Explanation: That activity which does not serve any purpose is called worthless activity. The demerit committed by engaging in cultivation, trade and the like is termed as useful worldly activity (dand). In the absence of cultivation it is impossible for a Shravak to lead a proper life but some activities are of such a nature that they do not serve any useful purpose. They are done in a state of improper knowledge, slackness or just for momentary engagement.

They fall in the category of worthless activities and a Shravak is expected to avoid them completely. He should always remain cautious from such activities namely ill thoughts, slackness activities generating violence and the like. In case due to any ignorance he commits such fault he should purify his soul by meditating on the above lesson.

नौवां व्रत : सामायिक

नवमूं सामायिक व्रत सावज्ज जोगनूं वेरमणं जाव नियमं पज्जुवासामि, दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा। एहवी सद्दहणा परूवणा, करिये तिवारे फरसनाये करी शुद्ध, एहवा नवमा सामायिक व्रतना पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा–ते आलोउं–मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, काय-दुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइ-अकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : सामायिक नामक नौवें व्रत में मैं समस्त सावद्य योगों से निवृत्त होता हूं। यावत् नियम (एक, दो, या तीन मुहूर्त अथवा जितने समय तक के लिए सामायिक की प्रतिज्ञा ली गई है) मैं सामायिक की आराधना करूंगा तब तक के लिए दो करण, तीन योग से, अर्थात् मन, वचन एवं काय से समस्त प्रकार के पापों का सेवन न मैं स्वयं करूंगा और न ही पाप में प्रवृत्ति के लिए किसी को प्रेरित करूंगा। इस प्रकार से सामायिक के प्रति मेरी श्रद्धा है एवं अन्य के सामने ऐसी ही मेरी प्ररूपणा भी है। इस विधि से सामायिक की आराधना की जाए तभी शुद्ध सामायिक होती है।

सामायिक नामक इस नवम व्रत के पांच अतिचार हैं। उन अतिचारों को जानना तो आवश्यक है परन्तु उन्हें आचरण में लाना योग्य नहीं है। वे पांच अतिचार इस प्रकार हैं–(1) सामायिक के काल में यदि मैंने दुष्ट चिन्तन किया हो, (2) दुर्वचन बोले हों, (3) शरीर से दुश्चेष्टाएं की हों, (4) सामायिक के समय को विस्मृत किया हो, एवं (5) समय पूरा होने से पहले

ही सामायिक को पार लिया हो। उक्त अतिचारों से यदि मेरी सामायिक दूषित हुई है तो मैं आलोचना करता हूं। दिवस संबंधी मेरा वह दुष्कृत मिथ्या हो।

(सूचना : सामायिक के 32 दोषों के लिए देखिए परिशिष्ट।)

Exposition: By practicing this ninth vow of Samayik, I detach myself from all activities involving violence for a particular period (it can be one, two or three muhurat or the period for which the resolve for remaining in state of equanimity has been undertaken). I shall avoid in three ways – mentally, orally and,physically the activities involving violence myself and shall not inspire others for committing violence to living being. Thus I have firm faith in Samayik and I explain it in the same manner to others. In case the practice of Samayik is done in this manner, only then it is termed a true Samayik.

There are five digressions that may occur in practice of Samayik. It is essential to know them but it is not proper to engage in them. They are as under:- (1) In case may have engaged in perverse contemplation during Samayik (2) In case I may have I engaged in loose talk. (3) In case I may have engaged in funny postures (4) In case I may have forgotten the period of Samayik. (5) In case I may have concluded the Samayik before its actually period has expired In case I may have committed any one of above-mentioned faults, I feel sorry for the same. May my faults be condoned.

For 32 faults in practicing Samayik see Annexure.

दसवां व्रत : देशावकाशिक

दशमूं देसावगासिक व्रत दिन प्रते प्रभात थकी प्रारंभीने पूर्वादिक छे दिशे जेटली भूमिका मोकली राखी छे ते उपरांत सइच्छाए कायाए जइने, पांच आस्रव सेववाना पच्चक्खाण, जाव अहोरत्तं दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा तथा जेटली भूमिका मोकली राखी छे ते मांहिज जे द्रव्यादिकनी मर्यादा कीधी छे ते भोगववी, ते उपरांत उवभोग परिभोग निमित्ते भोगववाना, पच्चक्खाण, जाव अहोरत्तं एगविहं, तिविहेणं, न करेमि, मणसा, वयसा, कायसा। एहवा दशवां देशावकाशिक व्रतना पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा ते आलोउं–आणवणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाई, रूवाणुवाई, बहियापुग्गल-पक्खेवे, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : दसवें देशावकाशिक व्रत में प्रातः सूर्योदय होने पर मैंने पूर्व आदि छहों दिशाओं में गमनागमन की जो मर्यादा निर्धारित की है उस मर्यादित क्षेत्र के उपरान्त अपनी इच्छा से काया से आगे जाकर पांच आस्रवों को सेवन करने का प्रत्याख्यान करता हूं। एक दिन एवं रात्रि पर्यंत दो करण एवं तीन योग से–अर्थात् मन, वचन एवं काय से मर्यादित भूमि से बाहर जाकर पांच आस्रवों का न मैं स्वयं सेवन करूंगा एवं न ही किसी दूसरे को उसके लिए प्रेरित करूंगा।

गमनागमन के लिए जितनी भूमि की मैंने मर्यादा की है, उस भूमि में रहे हुए भोगोपभोग के साधनों की जो मर्यादा की है, उसके उपरान्त समस्त भोगोपभोग के पदार्थों का प्रत्याख्यान करता हूं। एक दिन और रात के लिए एक करण एवं तीन योगों से अर्थात् मन-वचन एवं काय से अमर्यादित पदार्थों का उपभोग नहीं करूंगा।

देशावकाशिक व्रत के पांच अतिचार हैं जो ज्ञेय तो हैं पर आचरणीय नहीं हैं। वे पांच अतिचार इस प्रकार हैं–(1) मर्यादित भूमि से बाहर की वस्तु मंगवाई हो, (2) मर्यादित भूमि से बाहर वस्तु भिजवायी हो, (3) शब्द द्वारा मर्यादित भूमि से बाहर के लोगों को चेताया हो, (4) अपना रूप दिखाकर अपना कार्य सिद्ध कराया हो, एवं (5) किसी वस्तु को फैंककर मर्यादित भूमि से बाहर के लोगों को बुलाया हो, उक्त अतिचारों से यदि मेरा व्रत दूषित हुआ हो तो उसकी मैं आलोचना करता हूं। दिवस संबंधी मेरा वह दोष मिथ्या हो।

Exposition: In Deshavakashik resolve, I have early in the morning at the time of sunrise, further reduced my likely movement in all the six directions namely east and others. I undertake not to go beyond that area intentionally and involve myself in acts that generate karmas. For twenty four hours (one day and one night) I shall not in three ways namely mentally, orally and physically and in two forms namely doing myself and inspiring others to do, I shall not go beyond the area determined in my resolve to commit any act of violence or inspire others for the same.

In the area determined for my movement, I shall use the articles of immediate consumption and of frequent use only to the extent already fixed in the resolve and withdraw myself from all other articles of enjoyment.

I shall not use or desire articles other than those included in my resolve mentally, orally and physically.

There are five likely deviations that may occur in practice of Deshavakashik resolve. They are as under: (1) to ask for any article which is in area not included

in the resolve.(2) To send any article to that excluded area.(3) To warn the people of that area by uttering some word.(4) To get any work done in that excluded area by showing one's face. (5) To call any one from excluded area by throwing any article.

In case my resolve has been adversely affected by any such fault, I feel sorry for it. May my that fault during the practice of this vow in the day be condoned.

विवेचन : छठे व्रत में छहों दिशाओं एवं सातवें व्रत में भोगोपभोग के पदार्थों की मर्यादा जीवनभर के लिए की जाती है। प्रस्तुत दसवें व्रत में जीवन भर के लिए मर्यादित की गई दिशाओं में गमनागमन की सीमा को एक-दिन रात के लिए विशेष रूप से मर्यादित किया जाता है। उदाहरण के लिए - पूर्व दिशा में सौ कि.मी. तक जाने का जीवनभर के लिए परिमाण किया. हुआ है। परन्तु प्रतिदिन सौ कि.मी. जाने का प्रयोजन नहीं होता है। उसके लिए श्रावक प्रातःकाल एकान्त स्थान में बैठकर अपने दिवसभर के गमनागमन संबंधी प्रयोजनों का चिन्तन करता है। जिन दिशाओं में जाने का विशेष प्रयोजन नहीं होता, उन दिशाओं में गमनागमन को वह एक दिन एवं एक रात के लिए विशिष्ट रूप से मर्यादित कर लेता है। आज मैं अमुक-अमुक दिशाओं में अमुक अवधि तक ही जाऊंगा, उसके उपरांत नहीं।

इसी प्रकार सातवें व्रत में भोगोपभोग के साधनों का परिमाण जीवनभर के लिए किया जाता है। प्रस्तुत दसवें व्रत में उन साधनों की एक दिन-रात के लिए विशिष्ट मर्यादा अंगीकार की जाती है। उक्त दिशाओं और भोगोपभोग के पदार्थों की विशिष्ट मर्यादा से श्रावक कर्म आने के परिमित द्वारों को और अधिक परिमित कर लेता है। इससे व्रतों के प्रति उसकी जागरूकता में भी वृद्धि होती है तथा पूर्व गृहीत व्रतों में विशेष उत्कर्ष भी होता है।

प्रस्तुत देशावकाशिक व्रत को संवर व्रत भी कहा जाता है।

Explanation: In the sixth vow, the limit for movement in all the six directions and in the seventh vow the limit of articles of immediate and frequent consumptions is fixed for entire life. But in the tenth vow, these limits are further curtailed for 24 hours (for one day and one night). For instance a person has made a resolve that he shall not go beyond 100 km in the east. But he finds that he has not to go upto 100 km every day. So he early in the morning sitting at a lonely places ponders over all his early movement. When he finds that in any particular directions or directions he does not have to go, he further curtails these limits for one day and one night for that particular direction. By further reducing the limit of his movement and articles of worldly amusement, he further reduces the inflow of karmas. It increases his

vigilance in practice of the vows. Further the vow already accepted becomes more distinct. He makes a resolve that on that day, he shall go in that particular direction for only that particular period and not thereafter.

Similarly in the seventh vow the limit for consumption and frequent consumption of articles of such use has been fixed by him voluntarily for one day and one night. By such special limitation of movement and consumption the shravak reduces further the inflow of karmic matter. It increases his vigilance towards the resolves and vows already undertaken become prominent.

This Deshavakaskik Vrat is also called Samvar Vrat.

ग्यारहवां व्रत : प्रतिपूर्ण पौषध

इग्यारमूं पडिपुण्ण पोषधव्रत असणं, पाणं, खाइमं, साइमं चार आहारनूं पच्चक्खाण, अबंभ सेवननूं पच्चक्खाण, अमुक मणि-सुवण्ण-माला-वन्नग- विलेवणनूं पच्चक्खाण, सत्थ मूसलादिक सावज्ज जोगनूं पच्चक्खाण; जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि, दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि; मणसा, वयसा, कायसा, एहवी सद्दहणा परूपणा, करीए ते वारे फरसनाए करी शुद्ध। एहवा इग्यारमां पडिपुण्ण पोषधव्रतना पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तं जहा ते आलोउं–अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय सेज्जासंथारए, अप्पमज्जिए दुप्पमज्जिए सेज्जासंथारए, अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय उच्चारपासवणभूमि, अप्पमज्जिए दुप्पमज्जिए उच्चार- पासवणभूमि, पोसहस्स सम्मं अणणुपालणिया य जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : 'प्रतिपूर्ण पौषध' नामक ग्यारहवें व्रत में आठ प्रहर (अहोरात्र पर्यंत) के लिए सभी प्रकार के अन्न, जल, मेवा-मिष्ठान्न एवं लौंग-सुपारी आदि चारों प्रकार के आहार का त्याग करता हूं। अब्रह्मचर्य-सेवन का त्याग करता हूं। अमुक प्रकार के मणि, सुवर्ण, पुष्पमाला, सुगंधित चूर्ण एवं विलेपन आदि द्रव्यों का त्याग करता हूं। इसी प्रकार शस्त्र-मूसल आदि को रखने एवं सावद्य योगों का त्याग करता हूं। एक दिन-रात अर्थात् आठ प्रहर के लिए दो करण, तीन योग से उपरोक्त सभी पदार्थों और सावद्य योगों का मन, वचन एवं काय से न स्वयं सेवन करूंगा और न ही सेवन करने के लिए दूसरों को प्रेरित करूंगा। इस प्रकार पौषध व्रत के प्रति मेरी श्रद्धा एवं प्ररूपणा है। पौषध के अवसर पर इसकी स्पर्शना करके आत्म-शुद्धि करूंगा।

इस ग्यारहवें प्रतिपूर्ण पौषध व्रत के पांच अतिचार हैं जो ज्ञेय हैं, पर आचरणीय नहीं हैं। वे पांच अतिचार इस प्रकार हैं--(1) शय्या-संस्तारक की प्रतिलेखना न की हो अथवा विधिपूर्वक प्रतिलेखना न की हो, (2) शय्या संस्तारक की प्रमार्जना न की हो, अथवा उचित विधि से प्रमार्जना न की हो, (3) मल-मूत्र त्याग करने के स्थान की प्रतिलेखना न की हो अथवा उचित विधि से प्रतिलेखना न की हो, (4) मल-मूत्र त्यागने के स्थान की प्रमार्जना न की हो, अथवा उचित विधि से प्रमार्जना न की हो, एवं (5) पौषध व्रत को शास्त्रोक्त विधि से पालन न किया हो, तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। दिवस संबंधी मेरा वह अतिचार मिथ्या हो।

Exposition: The eleventh vow of paushadh (complete fast and highly restricted movement) is practiced for 24 hours (full day and full night). The practitioner does not take any meals, drinks, sweets and articles of fragrance during that period. He also completely avoids sex and suchlike activities. I accept this vow. I further shall not wear any jewellery, garlands, fragrant articles, paste or cream. I shall avoid weapons and wooden rod to grind any thing. I withdraw from all the activities that generate violence. I discard for 24 hours mentally, orally and physically the use of such articles and shall not inspire others for them. Such is my determination and faith for this vow. During Paushadh I shall engage myself completely in self-purification.

There are five likely faults that may occur in practice of this eleventh vow of paushadh. They are as under :

(1) I may not have examined my bedding or may not have cleaned it properly or examined it.

(2) I might not have cleaned my bedding or might not have cleaned it properly.

(3) I might not have examined the place meant for discarding urine and excreta or might not have examined it properly.

(4) I might not have cleaned the place meant for discarding urine and excreta or might not have cleaned it properly

(5) I might not have practiced the vow of paushadh in the manner mentioned in the code.

I feel sorry for all such faults. I condemn them may my faults committed be condoned.

विवेचन : पौषध श्रमणत्व का अभ्यास है। चौबीस घण्टे के लिए श्रावक पौषध की आराधना द्वारा श्रमणत्व की भूमिका में विहार करता है।

पौषध दो प्रकार का है—(1) प्रतिपूर्ण पौषध एवं (2) देश पौषध। प्रतिपूर्ण पौषध में चारों प्रकार के आहार का त्याग किया जाता है। देश पौषध में जल का आगार रखा जाता है। उसे तिविहार पौषध कहते हैं। चारों आहारों का यथेच्छ उपयोग करते हुए भी पौषध किया जाता है। उसमें चारों आहारों के सिवाय शेष सभी नियमों का पालन करना होता है। पौषध के इस प्रारूप को दयाव्रत कहते हैं।

Explanation: PAUSHADH is the practice of ascetic life. By practicing it for 24 hours, the Shravak goes through the elementary practice of ascetic life.

Paushadh is of two types (1) Complete Paushadh (2) Partial paushadh. In complete paushadh one discards all the four types of articles of consumption. In partial paushadh he can take water. It is called tivihar paushadh (paushadh in which three types of articles of consumption are avoided.) Paushadh Vrat is also undertaken by keeping oneself free to consume all the four types of articles of consumption. But in that case all other rules are strictly followed. This form of paushadh is called aahar-paushadh (compassion to all the six types of living beings –Daya Vrat)

बारहवां व्रत : अतिथि-संविभाग

बारमूं अतिथिसंविभागव्रत समणे निग्गंथे फासुयं एसणिज्जेणं असणं-पाणं-खाइमं-साइमेणं, वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुच्छणेणं, पाडिहारिय-पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं, ओसह-भेसज्जेणं पडिलाभेमाणे विहरामि; एहवि सद्दहणा परूपणा, फरसनाए करी शुद्ध, एहवा बारमां अतिथिसंविभाग-व्रत ना पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तं जहा—ते आलोउं—सचित्तनिक्खेवणिया, सचित्त-पिहणिया, कालाइकम्मे, परोवएसे, मच्छरियाए, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : 'अतिथि संविभाग' नामक बारहवें व्रत में मैं श्रमणों-निर्ग्रन्थों को प्रासुक और कल्पनीय अशन, पान, खादिम और स्वादिम ऐसा चारों प्रकार का आहार तथा वस्त्र, पात्र, कंबल, पैर पोंछने का वस्त्र आदि अप्रातिहार्य (ऐसी वस्तुएं जिन्हें लेने के बाद साधु वापिस गृहस्थ को लौटाते नहीं हैं) एवं प्रातिहार्य (जिन वस्तुओं को उपयोग में लेने के बाद साधु गृहस्थ को लौटा देते हैं) चौकी, काष्ट का पटिया, शय्या (मकान), संस्तारक (तृण, पराल आदि), औषधि एवं भैषज्य से प्रतिलाभित करता हुआ विचरण करता हूं। ऐसी मेरी श्रद्धा और प्ररूपणा है। अवसर प्राप्त होने पर श्रमणों-निर्ग्रन्थों को उक्त वस्तुओं का दान देकर स्पर्शना करके शुद्ध होऊं।

बारहवें अतिथि संविभाग व्रत के पांच अतिचार हैं जो ज्ञेय तो हैं पर उपादेय नहीं हैं। वे इस प्रकार हैं।—(1) दान न देने की भावना से अचित्त वस्तु को सचित्त वस्तु पर रख दिया हो, (2) अचित्त वस्तु को सचित्त वस्तु से ढ़क दिया हो, (3) कालातिक्रम—भिक्षा का समय व्यतीत हो जाने पर भिक्षा हेतु प्रार्थना की हो, (4) दान देने की भावना न होने के कारण अपनी वस्तु को दूसरे की बताया हो अथवा स्वयं सूझता होते हुए भी दूसरे के हाथ से दान दिलाया हो, एवं (5) मात्सर्य भाव अर्थात् अमुक व्यक्ति ने दान से बहुत यश पाया है, मैं भी दान से यश प्राप्त करूं, ऐसे भाव से दान दिया हो, उक्त अतिचारों में से किसी भी अतिचार का मैंने सेवन किया हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूं। दिवस संबंधी मेरा वह दुष्कृत्य निष्फल हो।

Exposition: The twelfth vow of a Shravak is called offering to the ascetic out of one's possessions (Atithi Samvibhag). It consists of making offer to the Jain ascetics the articles that can be used by them and which is according to the prescribed code. The articles can be all the four types of food namely food articles, liquid, sweets and articles meant for refreshing the taste. Further cloth, pots, blanket, cloth used for wiping feet, which are not returned and stool, house, bedding of straw or hay and medicine which are returned after the use can also be offered. Such is my belief and interpretation. In case I find an opportunity, I shall feel well satisfied after making such an offering to Jain monks and nuns.

Five transgressions may happen in the practice of the twelfth vow of sharing with a monk. They are worthy to be known but not to be followed. They are as under- (1) To place a lifeless things on an article containing life in order to avoid offering it. (2) To cover organic thing with a lifeless one. (3) To request an ascetic for taking an offering when the time for its consumption has already passed. (4) In order to avoid an ascetic, to tell that the articles asked for belongs to another one while actually it belongs to him or asking another person to offer the things to the monk while actually, he himself could offer the same himself. (5) Knowing that a certain person had got great fame by making an offering, to make an offering with a desire to have similar fame. In case out of the said faults, I have committed any one. I feel sorry for the same. I condemn the same. May my fault be condoned.

विवेचन : दान देना एवं दान देकर प्रफुल्लित होना सर्वश्रेष्ठ मानवीय गुण है। श्रावक तो 'दान' को एक व्रत के रूप में अंगीकार करता है। प्रतिपल वह दान की भावना से ओत-प्रोत रहता है। जब भी वह भोजन करने बैठता है तो भावना करता है कि कोई श्रमण-निर्ग्रन्थ पधारें तो उन्हें मैं अपने भोजन में से दान दूं।

यूं तो प्रत्येक जरूरतमंद दान का पात्र होता है। परन्तु पांच महाव्रतधारी श्रमण दान का सर्वश्रेष्ठ पात्र होता है। उसे दिया गया दान समष्टि के जीवों के हित में समर्पित होता है क्योंकि श्रमण प्रतिपल समष्टि के कल्याण हेतु साधनाशील रहता है।

Explanation: To make an offering and to feel very much pleased after making an offering is the greatest quality of a human being. A shravak makes a resolve for making an offering and considers it as implementation of a vow. Every moment he has in his mind that he may get the noble opportunity of making an offering. Whenever he sits for taking meals, he contemplates that some monk may arrive there and he may offer to him out of his food.

Generally every needy persons is worthy of receiving an offering. But the ascetic who has accepted five great vows of a Jain monk is the excellent one worthy of a receiving that offer. In the offering made to him lies the welfare of all living beings because the Jain monk remains engaged every moment in the ascetic practice leading to the welfare of the entire living organism.

विधि : तत्पश्चात् पद्मासन में बैठकर दोनों हाथ जोड़कर संलेखना सूत्र (देखें पृष्ठ 192) का उच्चारण करें। उसके बाद समुच्चय सूत्र पढ़ें।

Procedure: Thereafter one should sit in padmasan (the position wherein right foot is on left thigh and left foot on right thigh and with folded hands recite Samlekhana Sutra (see pp. 192). After that he should recite Samuchaya Sutra.

समुच्चय सूत्र

एम समकित पूर्वक बारह व्रत संलेखणा सहित एहने विषय जे कोई अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अणाचार जाणतां-अजाणतां, मन, वचन, कायाए करी सेव्यो होय सेवाव्यो होय, सेवतां प्रति अणुमोद्या होय, ते अनंता सिद्ध, केवलीनी साखें मिच्छा मि दुक्कडं।

भावार्थ : सम्यक्त्व पूर्वक बारह व्रतों और संलेखना के विषय में यदि कोई अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार एवं अनाचार के रूप में जानते हुए अथवा अनजाने में मन, वचन एवं काय से कोई दोष सेवन किया हो, दोष सेवन के लिए किसी को प्रेरित किया हो अथवा दोष सेवन करने वालों को अच्छा जाना हो तो अनन्त सिद्धों एवं केवलियों की साक्षी से मैं उन दोषों से पीछे हटता हूं। मेरा वह दुष्कृत निष्फल हो।

Exposition: In case I have committed any fault in the form of intention, preparation, minor transgression or breaking the resolve concerning practice of

twelve vows and Samalekhane in right perception, knowingly or inadvertently mentally, orally or physically myself or inspired any one to commit a fault or appreciated those who committed such a fault, I feel sorry from the same and withdraw for such an activity in the presence of infinite librated souls (sidhas) and omniscient (kevalis). My fault may be condoned.

विधि : तत्पश्चात् अठारह पाप स्थान सूत्र (देखें पृष्ठ 59) के मनन से अठारह पापों से निवृत्ति करते हुए निम्न सूत्र पढ़ें–

Procedure: Thereafter one should mentally recite eighteen types of sins by mentally reciting the aphorism relating to eighteen types of sins. (See pp 59) in order to get detached from them.

तस्स धम्मस्स सूत्र

तस्स धम्मस्स केवलिपण्णत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए, विरओमि विराहणाए, तिविहेणं पडिक्कंतो वन्दामि जिणे चउव्वीसं।

भावार्थ : मैं केवली भगवान् द्वारा प्ररूपित धर्म की आराधना के लिए उद्यत होता हूं। संयम में लगे हुए अतिचारों से तथा विराधना रूप पापों से मन, वचन, काय से पीछे हटता हुआ चौबीस तीर्थंकर भगवानों को वन्दन करता हूं।

Interpretation: I come out for eulogizing the dharma enunciated by the Omniscents. I withdraw from faults committed in the practice of ascetic discipline and transgressions committed mentally, orally and physically that constitute sins. Thereafter I bow to twenty four Tirhtankars.

विधि : तत्पश्चात् **'इच्छामि खमासमणो'** (देखें पृष्ठ 69) के पाठ से दो बार गुरु महाराज को वन्दन करके पांच पदों (देखें 150-158) की वन्दना करें। उसके बाद सामूहिक वन्दन सूत्र (**अनंत चौबीसी ते नमो** देखें पृष्ठ 159) एवं **क्षमापना सूत्र** (देखें पृष्ठ 161) का खड़े होकर सस्वर उच्चारण करें।

Procedure: Thereafter the lesson of 'Ichami Khamasamano' (see pp 69) should be recited while saluting the spiritual master. Then the humble prayer to five great souls(arihantas, siddhas, acharyas, upadhyayas, monks) should be recited (see pp. 150–158). After that, the aphorism of salutation for all (obeiscence to infinite chain of twenty four Tirhtankaras) should be recited collectively while standing (159–160).

॥ चतुर्थ आवश्यक संपूर्ण ॥ Fourth Aavashyak Concluded॥

पंचम आवश्यक : कायोत्सर्ग
Fifth Aavashyak : Kayotsarg

निर्देश—पंचम आवश्यक की आज्ञा के विधान के रूप में निम्न सूत्र पढ़ें—

Direction: In order to seek permission for fifth avashyak recite the following aphorism.

आवस्सही सूत्र

आवस्सही इच्छाकारेण, संदिसह भगवं! देवसि ज्ञान-दर्शन चरित्ताचरित्त-तप-अतिचार-पायच्छित्त विशोधनार्थं करेमि काउसग्गं।

भावार्थ : हे भगवन्! आप आज्ञा प्रदान करें, मैं आवश्यक रूप से करणीय धर्म-कार्य करने का इच्छुक हूं। दिवस संबंधी ज्ञान, दर्शन, श्रावक-व्रत एवं तप में लगे हुए अतिचारों की शुद्धि के लिए कायोत्सर्ग करता हूं।

Exposition: O Bhagwan! Kindly grant me permission. I want to do the worthy spiritual act in the form of avashyak. In order to purify myself from the faults (atichars) committed by me during the day in respect of right knowledge, right perception, vows of Shravak and austerities, I do kayotsarg.

विधि : तत्पश्चात् गुरु महाराज से पंचम आवश्यक की आज्ञा लेकर क्रमशः **नमोकार मंत्र**, **सामायिक सूत्र** (करेमि भंते), **इच्छामि ठामि** एवं **उत्तरीकरण सूत्र** को पढ़कर **'चतुर्विंशतिस्तव'** सूत्र के मनन पूर्वक कायोत्सर्ग करें।

देवसी और रात्रि प्रतिक्रमण में चार, पक्खी के दिन आठ, चातुर्मासी को बारह एवं सम्वत्सरी को बीस लोगस्स का ध्यान करना चाहिए।

नमोकार मंत्र के उच्चारण के साथ कायोत्सर्ग संपन्न करें एवं एक **लोगस्स** मुखर स्वर में पढ़ें। उसके बाद **'इच्छामि खमासमणो'** के पाठ से गुरु महाराज को वन्दन करते हुए पंचम आवश्यक संपन्न करें।

Procedure : After taking permission of fifth avashyak from spiritual master recite namokar mantra, Samayik sutra(karemi Bhante..) , Ichhami Thami, Tassuttari Karan Sutra. Then in the posture of kayotsarg (detachment from the body) in mind meditate on hymn in obeiscence and appreciation of twenty four Tirhtankars (Chaturvinshati Stava).

In the pratikraman of likely faults in activities during the day and pratikraman of activities during the night loguss (Chaturvinshtin Stava) is meditated four times, in pratikraman of fortnight eight times, in quarterly pratikraman twelve times and in annual (Samvatrari) pratikraman loguss is meditated twenty times.

The kayotsarg is concluded by uttering namokar namtra once. Then loguss is recited loudly. Thereafter bowing to the spiritual master in obiscence recite the aphorism of Ichhami Khamasamano twice in the manner already mentioned. Thus fifth avashyak is completed.

॥ पंचम आवश्यक संपूर्ण ॥

|| Fifth Aavashyak Concluded ||

षष्ठ आवश्यक : प्रत्याख्यान
Sixth Aavashyak : Pratyakhyan

विधि : गुरु महाराज को वन्दन करके छठे आवश्यक की अज्ञा लें एवं यथाशक्ति प्रत्याख्यान ग्रहण करें। गुरु महाराज उपस्थित हों तो उनके श्री मुख से प्रत्याख्यान ग्रहण करें। यदि गुरु महाराज उपस्थित न हों तो स्वयं प्रत्याख्यान के सूत्र द्वारा प्रत्याख्यान ग्रहण कर लें।

(सूचना: प्रत्याख्यान के पाठों के लिए देखिए पृष्ठ 173 से 199 तक)

तत्पश्चात् पूर्वोक्त विधि के अनुसार दो बार नमोत्थुणं का पाठ पढ़ कर गुरु महाराज को वन्दन करें।

Procedure: After bowing to the spiritual master, seek his permission for sixth avashyak and according to ones capability do the pratyakhyan (detachment from worldly activity for a certain period). In case the guru (spiritual master) is present, request him to grant it. In case he is not present, do it yourself by reciting the relevant aphorism of pratyakhyan.

(For aphorism of pratyakhyan see pp. 173–199)

Thereafter in the above mentioned manner, recite the aphorism of Namothanam twice. Then bow to the spiritual master in the prescribed manner.

।। श्रावक आवश्यक सूत्र संपूर्ण ।।

|| Shravak Aavashyak Sutra Concluded ||

परिशिष्ट-1

श्रावक आवश्यक सूत्र : विधि
Sixth Aavashyak Sutra : Procedure

शान्त एवं एकांत स्थान में पवित्रता पूर्वक एक आसन पर बैठकर श्री सीमंधर स्वामी जी को वंदना करके या वर्तमान अपने गुरुओं को **'तिक्खुत्तो'** के पाठ से तीन बार वंदना-नमस्कार करके **'चउवीसत्था'** करने की आज्ञा लेकर निम्नलिखित पाठ पढ़ें– **'अरिहंतो महदेवो'**, फिर **'इच्छाकारेणं'**, फिर **'तस्सोत्तरी'** का पाठ पढ़कर एक **'लोगस्स'** का ध्यान करें। **'नमो अरिहंताणं'** पढ़कर ध्यान पारें, फिर एक **'चउवीसत्था'** उदात्त स्वर से पढ़ें।

तब वाम जानु ऊंचा करके दाहिना जानु भूमि पर रखकर दो बार **'नमोऽत्थुणं'** पाठ पढ़ें, प्रथम सिद्धों का, द्वितीय अरिहंतों का।

फिर **'तिक्खुत्तो'** के पाठ से वंदना करके प्रतिक्रमण करने की आज्ञा लेकर **'प्रथम-आवस्सही इच्छाकारेण'** पाठ पढ़ें। फिर **'नवकार मंत्र'**, फिर **'करेमि भंते! सामाइयं'** फिर **'इच्छामि ठामि'** का पाठ, फिर **'तस्सोत्तरी'** का पाठ, फिर ध्यान करें। ध्यान में निन्यानवें अतिचार और **'इच्छामि आलोइयं'** पर्यन्त ध्यान करें। ध्यान में **''जो मे देवसि (राइसि) अइयारकउ, ते चिंतवूं''** ऐसे कहें, फिर **'नमो अरिहंताणं'** कहकर ध्यान पूर्ण करें।

तिक्खुत्तो के पाठ से वन्दना करके **'लोगस्स उज्जोयगरे'** का पाठ पढ़ें। फिर वंदना करके **'इच्छामि खमासमणो'** का पाठ दो बार पढ़ें।

'तिक्खुत्तो' के पाठ से चतुर्थ आवश्यक की आज्ञा लेकर वे ही सब अतिचार पढ़ें। स्मरण रहे– सभी पाठों के अंत में **'जो मे देवसि अइयार कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं'** ऐसा कहें। फिर **'तिक्खुत्तो'** के पाठ से वंदना करके श्रावक सूत्र पढ़ें।

फिर दो बार **'इच्छामि खमासमणो'** का पाठ पढ़कर यथा-शक्ति पांच पदों को वंदना-नमस्कार करके फिर **'अनन्त चौबीसी'** का पाठ पढ़ें, फिर सब जीवों से क्षमापना करके **'इच्छामि ठामि काउस्सगं'**, फिर **'तस्सोत्तरी'** का पाठ पढ़कर कायोत्सर्ग करें।

नित्यप्रति चार **'लोगस्स'** का ध्यान करें, फिर **'णमो अरिहंताणं'** पढ़कर एक **'लोगस्स उज्जोयगरे'** का पाठ और दो बार **'इच्छामि खमासमणो'** का पाठ पढ़कर फिर **'तिक्खुत्तो'** के पाठ से वंदना-नमस्कार करके यथाशक्ति प्रत्याख्यान करें। यदि गुरु प्रत्याख्यान आप करवाएं तो **'वोसिरामि'** आप कह लेवे फिर पूर्व विधिपूर्वक दो **'नमोत्थुणं'** के पाठ को पढ़ें। शेष समस्त समय धर्म-ध्यान में व्यतीत करें।

जब सामायिक पूर्ण हो गई जान ले, तब **'इच्छाकारेण'** इत्यादि सूत्र पढ़कर **'तस्सोत्तरी करणेणं'** के पाठ को पढ़ें। तत्पश्चात् एक **'लोगस्स उज्जोयगरे'** का ध्यान करें, **'नमो अरिहंताणं'** ऐसे कहकर ध्यान पारें। एक **'लोगस्स उज्जोयगरे'** के पाठ को उच्च स्वर से पढ़ें, फिर पूर्ववत् दो **'नमोत्थुणं'** पढ़कर **'नवमा सामायिक व्रत'** करते हुए इस सूत्र को पढ़ें।

इतने सूत्रों के पठन करने से सामायिक की विधि पूर्ण होती है। फिर चतुर्दश नियम धारण करें, जिनके करने से महान कर्मों का आस्रव निरोध होता है और आस्रवों का सर्वथा निरोध हो जाने पर जीव मोक्षाधिकारी बन जाता है।

(जैन धर्म दिवाकर पूज्य आचार्य सम्राट श्री आत्माराम जी महाराज द्वारा व्याख्यायित श्री आवश्यक सूत्रम् से साभार।)

Procedure: Select a suitable quite place. Spread the cloth. Sit on it and pay obeisance to Seemandhar Swami or to the spiritual master who is present by reciting the lesson of 'Tikhutto' three times. Thereafter seek permission to recite 'Chauvisatva' Then recite the lesson of 'arihanto mahedevo' 'Ichhakaran' and 'Tuss-uttari' and in meditation once 'loguss' (the hymn in praise of 24 Tirthankars). Thereafter uttering 'namo arihantanum' once, conclude the meditation. Then recite complete loguss lesson loudly.

Thereafter keeping left knee lifted and right knee touching the ground, recite lesson of 'Namothunum' twice. The first lesson is obeisance to Sidhas (liberated souls) and second is obeisance to arihantas.

Then paying obeisance through lesson of 'Tikhutto' get the permission for doing pratikraman. After that recite lessons of 'Avassehi Ichhakaran' 'Namokar Mantra' 'Karemi Bhanite Samaiyum' 'Ichhami Thami' and 'Tuss-uttari'. Then in state of meditation mentally go through 99 atichars and the lesson of 'Ichhami aloiyum' after saying 'Jo may devasi aiyaro ko' (Whatsever faults I have committed doing the day) say Chintavan in case of devasi pratrikraman in state of meditation and in case of pratikraman of faults committed during the night, the meditation be concluded by reciting 'Namo arihantanum'.

Thereafter do vandana with lesson of 'Tikhutto' and utter complete lesson of loguss 'ujjoyegare'. Again do Vandana with lesson of 'Tikhutto' and recite lesson of 'Ichhami Khamasmano' twice.

Thereafter seek permission for fourth avashayak through lesson of 'Tikhutto' and recite all the 99 atichars. After each lesson of atichar, in the end say 'Jo may devasi aiyaro kao tuss mi-chhami dukkadum' (I feel sorry for all such faults that I may have committed during the day/night). Thereafter doing Vandana with lesson of tikhutto recite 'Shravak sutra' in which all lessons upto detailed lesson of 99 atichars and sammuchhaya sutra and Tuss Dhamuss sutra should be uttered.

Thereafter do vandana twice with the lesson of 'Ichhammi Khamasmano'. Then do Vandana of five stanzas of Navkar Mantra as mentioned in aphorism. Thereafter lesson of 'Anant Chaubisi' should be recited.

○○

परिशिष्ट-2

सामायिक की विधि एवं 32 दोष

विभिन्न धर्म-परम्पराओं में उपासना की विविध विधियों का प्रचलन है। अधिकतर धर्म-परम्पराओं में अपने इष्टदेव को प्रसन्न करने के लिए स्तुतियां की जाती हैं। इष्ट देवों से सुख-समृद्धि एवं दिव्य सुखों की याचना की जाती है।

जैन धर्म में भी उपासना की विधि प्रचलित है। यह दो रूपों में है—सामायिक के रूप में एवं प्रतिक्रमण के रूप में। उपासना की ये दोनों ही विधियां किसी इष्ट-देव की प्रार्थना स्वरूप नहीं हैं, बल्कि आत्म-उपासना स्वरूप हैं। जैन धर्म ईश्वर-केन्द्रित नहीं बल्कि स्वात्म-केन्द्रित है। जैन धर्म कहता है—देव-देवियों की स्तुति से क्षणिक सुख-साधन भले ही मिल जाएं परन्तु आत्मशान्ति की उपलब्धि उनसे संभव नहीं है। आत्मशान्ति के लिए आत्म-केन्द्रित उपासना की आवश्यकता है।

अशान्ति के मूल हेतु राग एवं द्वेष हैं। ये दो तत्व जब तक आत्मा में अवस्थित रहते हैं तब तक भले कितने ही सुख-साधन जुटा लिए जाएं, चक्रवर्तीत्व एवं इन्द्रत्व प्राप्त कर लिया जाए, परन्तु आत्मशांति की उपलब्धि जीव को नहीं हो सकती है। आत्मशांति के लिए आवश्यक है—राग एवं द्वेष की दुरभिसंधियों से मुक्त होकर स्वभाव में स्थिर होना। ज्ञान, दर्शन एवं आनंद आत्मा का शाश्वत स्वभाव है। उस शाश्वत स्वभाव में लौटने के लिए अनादिकालीन विभाव के शूलों से आत्मा को स्वतंत्र करना आवश्यक है। विभाव के शूल समभाव की सतत आराधना एवं प्रतिक्रमण की सजग साधना से ही आत्मा से अलग हो सकते हैं।

सामायिक का अर्थ है—समता भाव में स्थित होना। पुराने संस्कारों एवं तात्कालिक संयोगों-वियोगों से क्षण-प्रतिक्षण राग और द्वेष के अन्धड़ व्यक्ति के समक्ष उपस्थित होते रहते हैं। उन अंधड़ों से व्यक्ति एक क्षण में राग तथा दूसरे ही क्षण द्वेष में डूबता-उतरता रहता है। राग-द्वेष से उबरने के लिए सामायिक की आराधना एक रामबाण औषधि है।

सामायिक के लिए केवलियों ने अड़तालीस मिनट का समय निर्धारित किया है। अड़तालीस मिनट तक व्यक्ति समभाव में सहज भाव से स्थिर रह सकता है। सामायिक की सतत सुचारू साधना की जाए तो समभाव में स्थिरीकरण का यह समय शनै-शनै बढ़ता रहता है। सतत साधना से, एक क्षण आता है जब विभाव पूर्णत: समाप्त हो जाता है। समभाव शाश्वत रूप से आत्मा में प्रतिष्ठित हो जाता है। उस अवस्था में आत्मा के ज्ञान, दर्शन, एवं आनंद रूप स्वभाव का पूर्ण प्रगटीकरण होता है। उसी अवस्था में कैवल्य घटित होता है। आत्मा में परमात्मा का अवतरण हो जाता है।

सामायिक के अनेक भेदोपभेद हैं। सूक्ष्म भेदोपभेद के विश्लेषण में न जाते हुए, मुख्य रूप से दो भेदों का अनिवार्यरूपेण ज्ञान व्यक्ति के लिए आवश्यक है। वे दो भेद हैं—द्रव्य सामायिक एवं भाव सामायिक। द्रव्य सामायिक से तात्पर्य है—आगम-कथित सामायिक में प्रवेश, सामायिक में करणीय एवं सामायिक की समाप्ति की विधियों का ज्ञान होना। भाव सामायिक से तात्पर्य है—मन, वचन एवं काय से समताभाव में स्थिर हो जाना। भाव सामायिक की आराधना ही व्यक्ति का प्रमुख लक्ष्य है। लेकिन द्रव्य सामायिक के बिना भाव सामायिक की सिद्धि अरबों में से किसी एक आत्मा को ही प्राप्त होती है।

PROCEDURE OF SAMAYIK AND 32 SHORT COMINGS

In different religious traditions, various methods of paying obeisence are prevalent. In many such traditions, the hymns are recited in order to please the respective Lords (Bhagwan), Worldly pleasures wealth and the like are sought in these prayers to the respected bhagwan.

In Jainism also a procedure is prevalent for service to Bhagwan. It is in two forms namely Samayik and Pratikraman. In both these forms, there is no request for worldly pleasure. It is in fact in the nature of self realization. Jain dharma is not based on one God. It proclaims that hymns in praise of gods and goddesses may provide momentary (or temporary) happiness but real peace and equanimity cannot be achieved. To gain self-realization it is essential that the prayer should be centred on the soul.

Attachment and hatred are the fundamental causes that disturb peace. Due to the presence of them in the soul, a living being cannot have peace of the soul even if he has immense worldly pleasure and he becomes king emperor (chakravart) or an angel. In order to gain peace of the soul, it is necessary to get liberated from the clutches of attachment and hatred and get stabilized in natural behavior.

It is the very nature of the soul to remain in state of right knowledge, right perception and right happiness. In order to realize (or regain) this state, it is important to liberate the self from the clutches of pervert nature in which it has been transmigrating since time immemorial. The thorns of pervert nature in the soul can be removed only with continuous practice of state of equanimity and vigilant practice of pratikraman.

Samayik means to remain in a state of equanimity. A person who is absorbed in a state of attachment or hatred faces every moment old traditions and contacts and separations from worldly things. In such conditions a human being is sometimes in a state of attachment and sometimes in a state of hatred. In order to get rid of attachment and hatred, the practice of samayik serves as the perfect medicine.

The omniscient have fixed the minimum period of 48 minutes for practice of samayik . An ordinary person can remain in a state of equanimity for 48 minutes. By regular practice of samayik, the period of stability can also be slowly and gradually increased. By continuous and regular practice, one arrives at that moment when the present state completely goes off and the soul stabilities itself in a completely natural state. In this state the right knowledge, right perception and ecstatic happiness which are the natural ingredients of the soul appear in its full (sublime) form. Then the soul becomes completely enlightened soul (Parmatima).

There are many forms of Samayik. Without going into subtle divisions, it is necessary for a person to know properly two forms of Samayik. They are dravya (external) Samayik and bhava (inner) Samayik. In a nutshell dravya samayik means the method of starting the samayik as laid down in Agams (Jains Scriptures) and also the procedure of concluding the samayik. Bhava (Internal) samayik means that the practitioner should stabilies his mind, speech and body in a state of equanimity. It is the primary goal of the disciple to practice bhava samayik. But without dravya samayik only one in millions can straight away practice properly bhava samayik.

सामायिक विधि

सामायिक की आराधना के लिए धर्मस्थानक सर्वोत्तम स्थान है। यदि स्थानक जाने का संयोग न बने तो अपने घर में ही एकान्त-शान्त स्थान में रजोहरणी (पूंजनी) से भूमि को पूंज कर आसन बिछावें। शुद्ध श्वेत चोलपट्ट एवं श्वेत दुपट्टा (चद्दर) धारण करें। मुख पर मुखवस्त्रिका लगावें। उसके बाद गुरु महाराज विराजमान हों तो उनके समक्ष जाकर तिक्खुत्तो

के पाठ से वन्दन करके निवेदन करें–गुरु महाराज! सामायिक की आज्ञा प्रदान करें। यदि गुरु महाराज विराजमान न हों तो किसी सुज्ञ श्रावक या श्राविका से भी आज्ञा ली जा सकती है। श्रावक या श्राविका का भी योग न हो तो उत्तर या पूर्व दिशा में मुंह करके भगवान् को वन्दन करके सामायिक की आज्ञा लें।

उसके बाद अपने आसन पर बैठकर क्रमशः मार्गदोष निवृति सूत्र (इच्छाकारेण संदिसह) एवं उत्तरीकरण सूत्र (तस्स उत्तरीकरणेणं) का पाठ पढ़ें। उसके बाद सीधे खड़े होकर अथवा पद्मासन में स्थिर होकर चतुर्विंशति स्तव (लोगस्स का पाठ) का ध्यान करें। नमो अरिहंताणं का पूरा पाठ पढ़ें। फिर 'नमो अरिहंताणं' पद का उच्चारण करते हुए ध्यान पूरा करें। एक लोगस्स खुला पढें। तत्पश्चात् गुरु महाराज के समीप जाकर तिक्खुत्तो के पाठ से वन्दन करके उनके श्रीमुख से सामायिक की प्रतिज्ञा अंगीकार करें। गुरु महाराज की अविद्यमानता में सुज्ञ श्रावक-श्राविका से सामायिक की प्रतिज्ञा ली जा सकती है। उनका भी सुयोग न हो तो 'करेमि भंते' के पाठ से स्वयं सामायिक की प्रतिज्ञा अंगीकार करें। यदि एक सामायिक करनी हो तो 'जाव नियम' इस पद के स्थान पर 'मुहूर्त्त एक घड़ी दो' कहें। दो सामायिक करनी हों तो 'मुहूर्त्त दो घड़ी चार' कहें। यदि अधिक सामायिक करने के भाव हों तो मुहूर्त्त और घड़ी की संख्या बढ़ा कर पाठ पढ़ना चाहिए।

तत्पश्चात् दायां घुटना जमीन पर झुकाकर एवं बायां घुटना खड़ा रख कर दो बार नमोत्थुणं का पाठ पढ़ें।

इस प्रकार सामायिक में प्रवेश करके सामायिक के संपूर्ण समय में समता भाव की आराधना करनी चाहिए। सांसारिक हानि-लाभ की चिन्ता से सर्वथा मुक्त रहना चाहिए। संतों के व्याख्यान का संयोग हो तो व्याख्यान सुनें। अन्यथा आत्म-उपासना, धर्म साधना की पुस्तकें अथवा शास्त्रीय स्वाध्याय करते हुए सामायिक करें। स्वाध्याय के अतिरिक्त माला जप, शुभ ध्यान एवं आत्मचिन्तन भी सामायिक में किए जा सकते हैं।

PROCEDURE OF SAMAYIK

The sthanak (defined place of spiritual practices) is ideal for practice of samayik. In case there is no such place in the neighborhood, one should select a quiet clean place in his own house and after cleaning it with the holy broom (rejoharan), spread the cloth. He should dress himself in white sheet of cloth (cholapatta) and cover his body with white cloth (dupatta). He should then go to the spiritual master after covering his mouth with mouth-cloth.

He should pay his obeisance with lesson of tikhutto and seek permission for Samayik. In case the spiritual master is not there he can seek permission from learned male or female devotee (shravak or shravika). In case shravak or shravika is also not there, facing east he should pay homage to the Lord (Bhagwan Seemandhar Swami) and seek permission for samayik.

Thereafter he should sit on the spread out cloth (aasan) and recite Ichhakaran Sandiseh sutra (to remove faults incurred in his movement up to that place) and uttarikaran sutra. Then in a standing posture or in a stable sitting posture he should in state of meditation reflect on Chaturvinshiti Stava (lesson of loguss). He should conclude it by uttering namo arihantanum in state of meditation and then loudly. Thereafter he should utter loguss lesson orally. He should then go to the guru and after vandana with lesson of Tikhutto, seek permission of samayik from him according to his resolve. In case the Jain monk is not there, he can have it from learned shravak or shravika. In case shravak is also not there, he should himself recite the lesson of Karemi Bhante and accept samayik. In this lesson instead of Jaav Niyam he should say the number of muhurats in accordance with the number of samayik he wants to practice at that time.

Thereafter keeping his left knee lifted and right knee touching the ground, he should recite the lesson of Namothunum.

In this manner, starting the samayik, he should spend the entire time of samayik in practice of the state of equanimity. He should keep himself totally free from worry of worldly gains or losses. In case Jain saints are there, he should attend their discourse. In their absence, he should resort to self introspection, study of literature on dharma or scriptures. In addition to study of scriptures, one can also recite rosary or resort to meditation or self-introspection during samayik.

सामायिक समाप्ति सूत्र

एयस्स नवमस्स सामाइयवयस्स पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं–मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, काय दुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइ अकरणयाए, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणयाए, तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

सामाइयं सम्मं काएणं न फासियं, न पालियं, न सोहियं, न तीरियं, न किट्टियं, न आराहियं आणाए अणुपालियं न भवइ, तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

भावार्थ : सामायिक रूपी नौवें व्रत के पांच अतिचार हैं जो जानने योग्य तो हैं पर आचरण करने योग्य नहीं हैं। वे इस प्रकार हैं–(1) मन की अशुभ प्रवृत्ति, (2) वचन की अशुभ प्रवृत्ति, (3) काय की अशुभ प्रवृत्ति, (4) सामायिक की स्मृति न रखी हो, एवं (5) समय पूरा होने से पूर्व ही सामायिक पार ली हो। उपरोक्त अतिचारों से यदि मेरी सामायिक दूषित हुई हो तो उसकी मैं आलोचना करता हूं। मेरा वह दुष्कृत्य मिथ्या हो।

सामायिक का सम्यक् विधि से काय से स्पर्श न किया हो, पालन न किया हो, शुद्ध न किया हो, पूर्ण न किया हो, कीर्तन और आराधन न किया हो तथा जिनाज्ञा के अनुसार अनुपालन न किया हो तो मेरा वह दोष निष्फल हो।

Aphorism about Conclusion of Samayik

Exposition: There are five digressions (atichars) that may occur during practice of Samayik. They should be known well but should not be practiced.

They are as under: (1) To engage the mind in ill thought (2) To engage in undesirable talk. (3) To engage the body in unworthy activity. (4) To forget the period of Samayik. (5) To conclude the Samayik prior to the culmination of its actual period. In case I may have committed any one of the above mentioned faults, I feel sorry for the same. May my such faults be condemned.

I might not have meticulously followed the procedure laid down for Samayik. I might not have engaged in proper contemplation. I might not have completed it in properly. I might not have followed the order of the omniscient in a proper manner. I feel sorry for all such faults. My faults may be condoned.

सामायिक समाप्ति का हिन्दी पाठ

नौवें सामायिक व्रत के विषय जे कोई अतिचार लगा हो ते आलोउं। मन, वचन, काया का योग खोटा बरताया हो, सामायिक में समता न की हो, बिना पूगी पारी हो, दस मन के, दस वचन के, बारह काया के, इन बत्तीस दोषों में से कोई पाप-दोष लगा हो, तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

I may have committed same fault in the practice of the ninth vow of Samayik. I may have committed such faults mentally, orally or physically. I may not have spent the period of Samayik in a state of equanimity. I might not have concluded it properly. There are ten faults relating to mind, ten relating to speech and twelve relating to body. I might have committed any such faults. I feel sorry for the same. May my faults be condoned.

सामायिक के 32 दोष

सामायिक एक शुभ अनुष्ठान है। उससे आत्मा की शुद्धि होती है। आत्मशुद्धि के इस अनुष्ठान की आराधना शास्त्र में कहे गए बत्तीस दोषों से मुक्त रहकर करनी चाहिए।

साधक, मन-वचन एवं काय–इन तीन योगों का स्वामी है। इन तीनों योगों के चांचल्य से दोषों की उत्पत्ति की संभावना रहती है। शास्त्र में मन के दस, वचन के दस एवं काय के बारह - ऐसे कुल बत्तीस दोषों की गणना की गई है। बत्तीस दोषों का स्वरूप इस प्रकार है–

Thirty Two Faults Relating to Samayik

Samayik is a good spiritual practice. It purifies the soul. This practice of self-purification should be done in such a manner that one does not commit any one of the thirty two faults mentioned in scriptures.

The practitioner is the master of his mind, speech and action. The faults may arise only when there is any instability in him. In scriptures ten faults relating to mind, ten relating to speech and twelve relating to action have been mentioned. The nature of these thirty two faults is as under —

मन के 10 दोष

अविवेग-जसोकित्ती, लाभत्थी गव्व-भय-नियाणत्थी।
संसय-रोस-अविणओ, अबहुमाण ए दोसा भणियव्वा॥

(1) **अविवेक**–उचित-अनुचित का ध्यान न रखना। मन में कल्पना करना कि इस प्रकार से मुंह बांधकर बैठने से क्या लाभ! सामायिक के स्वरूप को ठीक से नहीं जानना, आदि 'अविवेक' नामक दोष है।

(2) **यशोकीर्ति**–सामायिक करने से लोक में मेरा सम्मान बढ़ेगा, लोग मुझे धर्मात्मा मानेंगे, मेरी कीर्ति बढ़ेगी आदि, इस प्रकार का विचार मन में रखकर सामायिक करना।

(3) **लाभार्थ**–सामायिक करने से अमुक व्यक्ति को व्यापार में बहुत लाभ हुआ है, मैं भी सामायिक करूं तो मुझे भी आर्थिक लाभ होगा। लाभ के लोभ में सामायिक करना लाभार्थ दोष है।

(4) **गर्व**–मैं बहुत बड़ा धर्मात्मा हूं, मेरे समान शुद्ध सामायिक करने वाला अन्य नहीं है, इस प्रकार अहंकार भाव धारण करना गर्व दोष है।

(5) भय–मैं जैनकुल मैं पैदा हुआ हूं, यदि सामायिक नहीं करूंगा तो लोग क्या कहेंगे। इस प्रकार के विचार से अथवा राजदण्ड, लेनदार से बचने के लिए एवं व्यापार आदि में नुकशान के भय से सामायिक करना भय दोष है।

(6) निदान–धन, यश, संतान, स्वर्ग आदि के प्रतिफल की मन में आशा रखकर सामायिक करना निदान दोष है।

(7) संशय–'सामायिक का कोई फल होगा या नहीं' इस प्रकार की आशंका मन में रखना संशय दोष है।

(8) रोष–सामायिक में क्रोध, मान, माया और लोभ से मन को दूषित करना, अथवा घर में लड़ाई-झगड़ा करके रोष की स्थिति में ही सामायिक में बैठ जाना रोष नामक दोष है।

(9) अविनय–सामायिक के प्रति आदर भाव न रखना एवं देव-गुरु-धर्म की अविनय-आशातना का भाव मन में धारण करना अविनय दोष है।

(10) अबहुमान–आंतरिक उत्साह एवं भक्तिभाव के अभाव में अथवा किसी के दबाव के कारण सामायिक करना अबहुमान दोष है।

Lack of Proper Sense of Discrimination—A thought may arise in the mind that there is no useful purpose in keeping the mouth tied (with mouth-cloth). The practitioners may not properly comprehend the nature of Samayik. Such faults are in the category of lack of sense of discrimination (avivek).

To think that I shall gain more respect among the people since I do Samayik. The community will consider me a spiritual person. My fame shall increase. Such faults comprise worldly fame.

(1) **Lack of sense of discrimination:** To ignore sense of discrimination between what is right and what is wrong. I think what is the use of covering the mouth. Not to understand properly the nature of Samayik

(2) **Desire for praise and fame:** To think that I shall gain respect in case of practise Samayik. The people shall consider me a noble person. My fame shall spread all around. To practice Samayik with such a mental state invokes this fault.

(3) **Worldly Gain:** To think that a particular person has gained a lot in business by practicing samayik. So I may also be benefitted a lot if I practice Samayik. To do Samayik with the intention of worldly gain is the fault of worldly benefit.

(4) **Pride:** I am highly spiritual. There is no one else who practices as many Samayik as I do. Such a pride is a fault in Samayik.

(5) **Fear:** I have taken birth in a Jain family. In case I do not practice Samayik, the public shall think adversely about me. To practice samayik in order to avoid punishment from the state or to avoid payment in business or in a state of fear that it may result in loss in business—all such reflections are faults in practice of Samayik.

(6) **Nidaan** (Expectation of reward).:- To think of worldly gain, worldly fame, growth of family or re-birth in heaven as a result of samayik is termed as fault of nidaan (expectation).

(7) **Doubt:** To have a lurking doubt in the mind whether there shall be any benefit of doing Samayik. Such fault is that of doubt.

(8) **Passion:** To pollute the mind by engaging it in state of anger, greed, ego or deceit or to engage oneself in Samayik after picking up a quarrel with others is the fault of passion.

(9) **Disrespect:** Not to have sense of respect for Samayik or to have a sense of disrespect for the omniscient, the spiritual master or dharma in the mind is the fault of disrespect.

(10) **Lack of Interest:** To engage in Samayik without real passion for it or without sense of devotion or to engage under pressure of someone else is the fault of lack of interest (abahuman).

वचन के 10 दोष

कुवयण सहसाकारे, सच्छंद-संखेव-कलहं च।
विकहा-हासोऽसुद्धं, निरवेक्खो मुणमुणा दोसा दस॥

(1) **कुवचन**—सामायिक में बुरे वचन बोलना।

(2) **सहसाकार**—बिना सोचे-विचारे एकाएक बोल देना।

(3) **स्वच्छंदता**—जो भी मन में आए वैसा ही बोलना।

(4) **संक्षेप**—सामायिक के पाठों को जल्दी-जल्दी बोलकर पूरे कर देना, या अधूरे पाठ बोलना।

(5) **कलह**—क्लेश उत्पन्न करने वाले वचन बोलना।

(6) विकथा—सामायिक में स्त्री, भोजन, देश-विदेश एवं राजनीति संबंधी कथाएं कहना, सुनना।

(7) हास्य—सामायिक में हंसी-मजाक करना, कौतूहल एवं व्यंग्यपूर्ण वचन बोलना।

(8) अशुद्ध—सामायिक के पाठों का अशुद्ध उच्चारण करना।

(9) निरपेक्ष—शास्त्रीय दृष्टिकोण की उपेक्षा करके अपने दृष्टिकोण को प्रमुख रखकर वचन-व्यवहार करना।

(10) मम्मण—सामायिक या स्वाध्याय के पाठों को अस्पष्ट बोलना, अथवा सत्य को छिपाने के लिए गुनगुनाते हुए बोलना।

TEN FAULTS OF SPEECH

(1) Ill Talk: To use filthy language.

(2) Lack of control on speech.

(3) Loose talk (Sahasakar): To speak without proper contemplation.

(4) To shorten: To shorten aphorisms (lessons) of Samayik or to recite them partially.

(5) Quarrel: To utter such words in Samayik that may generate quarrel.

(6) Undesirable talk: To talk of women, food, administration and politics in Samayik or to listen such talk.

(7) Mockery: To behave like a clown or to pass on unworthy remarks.

(8) Improper Recitation: To pronounce the lesson of Samayik incorrectly.

(9) To talk ignoring the view point of scriptures and giving prominence to personal view.

(10) To recite lesson of Samayik or of spiritual study in an unintelligible manner.

काय के 12 दोष

कुआसणं चलासणं चलदिट्ठी सावज्जकिरियालंबणकुंचणपसारणं।
आलस्स-मोडण-मल विमासणं, निद्दा वेयावच्चत्ति बारस कायदोसा॥

(1) कुआसन—अहंकारपूर्वक पैर पर पैर चढ़ाकर बैठना अथवा अविनय-अविवेक पूर्वक पैर फैलाकर बैठना।

(2) **चलासन**–बार-बार आसन बदलना या बैठे-बैठे अनावश्यक हिलते-डुलते रहना।

(3) **चलदृष्टि**–अनावश्यक रूप से दाएं-बाएं देखना, आंखों को मचलाना आदि।

(4) **सावद्य क्रिया**–सामायिक में पापजनक शारीरिक चेष्टाएं करना, बिना उपयोग से चलना-फिरना अथवा गृहकार्य करना।

(5) **आलंबन** –बिना किसी विशेष कारण (रोग, दुर्बलता, वार्द्धक्य) के दीवार का सहारा लेना। सहारा लेना पड़े तो दीवार आदि की प्रतिलेखना न करना।

(6) **आकुञ्चन-प्रसारण**–अकारण ही अंगोपांगों को फैलाना, संकोचना आदि।

(7) **आलस्य**–जंभाई लेना, अंगड़ाई तोड़ना आदि।

(8) **मोड़न**–हाथ-पैरों की अंगुलियों को चटकाना आदि।

(9) **मल**–सामायिक में बैठे-बैठे शरीर का मैल उतारना, बिना उपयोग से खुजली करना।

(10) **विमासन**–चिन्ताजनक (कोहनी पर ठुड्डी रखकर) मुद्रा में बैठना।

(11) **निद्रा**–सोना, ऊंघना आदि।

(12) **वैयावृत्त्य**–सामायिक में अंगोपांगों को दबवाना, मालिश आदि कराना।

उपरोक्त बत्तीस दोषों से सावधान रहते हुए सामायिक की आराधना करनी चाहिए।

TWELVE FAULTS OF BODY (PHYSICAL ACTIVITY)

(1) To sit keeping one foot on the other in a haughty manner (Ku-asan)

(2) To change the seat repeatedly or to move parts of the body unnecessarily while sitting (Chalasan)

(3) To look around unnecessarily, to stare

(4) To do undesirable physical movement while doing Samayik. To move about indiscriminately to do domestic activity during Samayik, (Swadya Kriya)

(5) To Alamban: To take support of a wall in the absence of any special reasons (namely illness, weakness, old age). In case due to any special reason, one has to take support of the wall, he should first examine it thoroughly (to avoid violence to any living being)

(6) To stretch the limbs of the body unnecessarily or to tighten them without reason.

(7) To yawn.

(8) To squeeze fingers or to twist them. (Modan)

(9) To remove dirt from the body while sitting, to scratch the body unnecessarily striking or without discrimination.

(10) To sit in a sad position (Vim-asan)

(11) To sleep or to doze during Samayik

(12) To get the body massaged or pressed during Samayik

While doing Samayik, one should ensure that no such faults is committed.

सामायिक का फल

किं तिव्वेण तवेणं किं च जवेणं किं चरित्तेणं।
समयाइ विण मुक्खो, न हु हुओ कहवि नहु होइ॥

समतारूप सामायिक के अभाव में कितने ही बड़े-बड़े तप किए जाएं, कितने ही जप किए जाएं और कितने ही उत्कृष्ट चारित्र का पालन किया जाए, उनका बहुत मूल्य नहीं है। क्योंकि सामायिक की साधना के बिना मुक्ति संभव नहीं है।

जे केवि गया मोक्खं, जे वि य गच्छन्ति जे गमिस्संति।
ते सव्वे सामाइय पभावेण मुणेयव्वं॥

अतीत में जितनी भी आत्माएं मोक्ष में गई हैं, वर्तमान में जा रही हैं और भविष्य में जाएंगी, सभी के पीछे सामायिक का प्रभाव ही मूल कारण है। अर्थात् सामायिक ही वह मूल हेतु है जिसकी साधना से मुक्ति संभव होती है।

दिवसे दिवसे लक्खं, देइ सुवण्णस्स खंडियं एगो।
इयरो पुण सामाइयं, न पहुप्पहो तस्स कोई॥

एक व्यक्ति एक लाख वर्ष तक प्रतिदिन लाख-लाख स्वर्ण खंडियों (बीस मन की एक खण्डी होती है) का दान करता है और दूसरा व्यक्ति एक सामायिक करता है। ऐसे महादान दाता से सामायिक करने वाले का पुण्य अधिक होता है। (दान से स्वर्ग आदि की प्राप्ति होती है जबकि सामायिक से मोक्ष की प्राप्ति होती है। मोक्ष के सुख की तुलना में स्वर्ग का सुख नगण्य होता है, उसके लक्षांश भाग की भी बराबरी नहीं कर सकता।)

उपरोक्त गाथाओं से स्पष्ट है कि सामायिक से बड़ी अन्य कोई साधना नहीं है। सामायिक ही मूल साधना है। जितनी भी साधनाएं हैं वे सभी सामायिक के धरातल पर ही पुष्पित-पल्लवित

होती हैं। समस्त साधनाओं के लिए सामायिक प्राणवायु है। सामायिक की साधना यदि परिपक्व नहीं हुई है तो बड़े से बड़े तप का भी मूल्य नहीं है, गौतम-सरीखे संयम से भी सिद्धि प्राप्त नहीं की जा सकती। सामायिक के साथ छोटे-छोटे तप भी महान फल देते हैं। क्योंकि सामायिक ही मूल तत्त्व है। सामायिक ही सिद्धि की प्रथम और अंतिम सीढ़ी है।

Benefit of Samayik: A person practices hard austerities. He spends a great time in repeating the name of worthy soul. He goes through strict code of conduct. But in the absence of state of equanimity (Samayik) such activities are not of great value since solution is not possible without practice of Samayik.

All those who have attained liberation in the past, all those who are attaining it at present and all these who shall attain it in future, they attain it primarily by practice of state of equanimity (Samayik). In other words, Samayik is that spiritual practice which makes it possible to attain salvation.

A person daily gives in charity one lakh gold Khand is (a khandi weighs 20 maunds) while another person practices Samayik . The merit gained by the person doing Samayik is far greater than that gained by the person who gives charity above mentioned (the charity leads to heaven while Samayik leads to salvation. The happiness of heaven is negligible in comparison with the happiness of salvation. It is not even a millionth of the happiness of Moksha).

It is clear from the above said verses that no other practice is more beneficial than Samayik. Samayik is the basic practice for attaining salvation. All the spiritual practices flourish on the foundation of Samayik. In case the practice of Samayik is not strictly according to the prescribed code, the highest form of austerity is also of not much value. In its absence even the ascetic practice similar to the one practiced by Gautam cannot lead to libration. In the presence of Samayik even minor austerities generate worthy results because Samayik is the fundamental step for salvation. It is the first and last rung of the stair case leading to salvation.

○○○

विश्व में पहली बार जैन साहित्य के इतिहास में एक नये ज्ञान युग का शुभारम्भ

(जैन आगम, हिन्दी एवं अंग्रेजी भावार्थ और विवेचन के साथ। शास्त्र के भावों को उद्घाटित करने वाले बहुरंगे चित्रों सहित)

---

1. सचित्र उत्तराध्ययन सूत्र — **मूल्य 500/-**

भगवान महावीर की अन्तिम वाणी। आदर्श जीवन विज्ञान तथा तत्त्वज्ञान से युक्त मोक्षमार्ग के सम्पूर्ण अंगों का सारपूर्ण वर्णन। एक ही सूत्र में सम्पूर्ण जैन आचार, दर्शन और सिद्धान्तों का समग्र सद्‌बोध।

2. सचित्र दशवैकालिक सूत्र — **मूल्य 500/-**

जैन श्रमण की अहिंसा व यतनायुक्त आचार संहिता। जीवन में पद-पद पर काम आने वाले विवेकयुक्त, संयत व्यवहार, भोजन, भाषा, विनय आदि की मार्गदर्शक सूचनाएँ। आचार विधि को रंगीन चित्रों के माध्यम से आकर्षक और सुबोध बनाया गया है।

3. सचित्र नन्दी सूत्र — **मूल्य 600/-**

मतिज्ञान–श्रुतज्ञान आदि पाँचों ज्ञानों का विविध उदाहरणों सहित विस्तृत वर्णन।

4. सचित्र अनुयोगद्वार सूत्र (भाग 1, 2) — **मूल्य 1, 200/-**

यह शास्त्र जैनदर्शन और तत्वज्ञान को समझने की कुंजी है। नय, निक्षेप, प्रमाण, जैसे दार्शनिक विषयों के साथ ही गणित, ज्योतिष, संगीतशास्त्र, काव्यशास्त्र, प्राचीन लिपि, नाप-तौल आदि सैकड़ों विषयों का वर्णन है। यह सूत्र गम्भीर भी है और बड़ा भी है। अतः दो भागों में प्रकाशित किया गया है।

5. सचित्र आचारांग सूत्र (भाग 1, 2) — **मूल्य 1,000/-**

यह ग्यारह अंगों में प्रथम अंग है। भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित अहिंसा, सम्यक्त्व, संयम, तितिक्षा आदि आधारभूत तत्वों का बहुत ही सुन्दर वर्णन है। भगवान महावीर का

जीवन-चरित्र, उनकी छद्मस्थ चर्या का आँखों देखा वर्णन तथा जैन श्रमण का आचार-विचार दूसरे भाग में है। दोनों भाग विविध ऐतिहासिक व सांस्कृतिक चित्रों से युक्त हैं।

6. सचित्र स्थानांग सूत्र (भाग 1, 2) **मूल्य 1, 200/-**

यह चौथा अंग सूत्र है। अपनी खास संख्या प्रधान शैली में संकलित यह शास्त्र ज्ञान, विज्ञान, ज्योतिष, भूगोल, गणित, इतिहास, नीति, आचार, मनोविज्ञान, पुरुष-परीक्षा आदि सैकड़ों प्रकार के विषयों का ज्ञान देने वाला बहुत ही विशालकाय शास्त्र है। भावार्थ और विवेचन के कारण प्रत्येक पाठक के लिए समझने में सरल और ज्ञानवर्धक है।

7. सचित्र ज्ञाताधर्मकथा सूत्र (भाग 1, 2) **मूल्य 1, 000/-**

भगवान महावीर द्वारा प्रवचनों में प्रयुक्त धर्मकथाएँ, उद्‌बोधक, रूपक, दृष्टान्त आदि जिनके माध्यम से तत्त्वज्ञान सहज ही ग्राह्य हो गया है। विविध रोचक रंगीन चित्रों से युक्त। दो भागों में सम्पूर्ण आगम।

8. सचित्र उपासकदशा एवं अनुत्तरौपपातिकदशा सूत्र **मूल्य 600/-**

सप्तम अंग उपासकदशा में भगवान महावीर के प्रमुख 10 श्रावकों का जीवन-चरित्र तथा उनके श्रावक धर्म का रोचक वर्णन है। नवम अंग अनुत्तरौपपातिकदशा में उत्कृष्ट तपः साधना करने वाले 33 श्रमणों की तप ध्यान-साधना का रोमांचक वर्णन है। भावों को स्पष्ट करने वाले कलात्मक रंगीन चित्रों सहित।

9. सचित्र निरयावलिका एवं विपाक सूत्र मूल्य 600/-

निरयावलिका में पाँच उपांग हैं। भगवान महावीर के परम भक्त राजा कूणिक के जन्म आदि का वर्णन तथा वैशाली गणतंत्राध्यक्ष चेटक के साथ हुए महाशिलाकंटक युद्ध का रोमांचक चित्रण तथा भगवान अरिष्टनेमि एवं भगवान पार्श्वनाथ के शासन में दीक्षित अनेक श्रमण-श्रमणियों का चरित्र इनमें है।

विपाक सूत्र में अशुभ कर्मों के अत्यन्त कटु फल का वर्णन है, जिसे सुनते ही हृदय द्रवित हो जाता है, तथा सुखविपाक में दान, तप आदि शुभ कर्मों के महान् सुखदायी पुण्य फलों का मुँह बोलता वर्णन है।

भावपूर्ण रोचक कलापूर्ण चित्रों के साथ

10. सचित्र अन्तकृद्‌दशा सूत्र **मूल्य 500/-**

आठवें अंग अन्तकृद्‌दशा सूत्र में मोक्षगामी 90 महान् आत्म-साधक श्रमण-श्रमणियों के तपोमय साधना जीवन का प्रेरक वर्णन है। यह सूत्र पर्युषण में विशेष रूप में पठनीय है। विविध चित्र व तपों के चित्रों से समझने में सरल सुबोध है।

11. सचित्र औपपातिक सूत्र **मूल्य 600/-**

यह प्रथम उपांग है। इसमें राजा कूणिक का भगवान महावीर की वन्दनार्थ प्रस्थान, दर्शन-यात्रा तथा भगवान की धर्मदेशना, धर्म प्ररूपणा आदि विषयों का बहुत ही विस्तृत लालित्ययुक्त वर्णन है। इसी में अम्बड़ परिव्राजक आदि अनेक परिव्राजकों की तपः साधना का वर्णन भी है।

12. सचित्र रायपसेणिय सूत्र **मूल्य 600/-**

यह द्वितीय उपांग है। धर्मद्वेषी प्रदेशी राजा को धर्मबोध देकर धार्मिक बनाने वाले ज्ञानी आचार्य केशीकुमार श्रमण के साथ आत्मा, परलोक, पुनर्जन्म आदि विषयों पर हुई अध्यात्म-चर्चा प्रत्येक जिज्ञासु के लिए पठनीय ज्ञानवर्द्धक है। आत्मा और शरीर की भिन्नता समझाने वाले उदाहरणों के चित्र भी बोधप्रद हैं।

13. सचित्र कल्पसूत्र **मूल्य 600/-**

कल्पसूत्र का पठन, पर्युषण में विशेष रूप में होता है। इसमें 24 तीर्थंकरों का जीवन-चरित्र है। साथ ही भगवान महावीर का विस्तृत जीवन-चरित्र, श्रमण समाचारी तथा स्थविरावली का वर्णन है। 24 तीर्थंकरों के जीवन से सम्बन्धित सुरम्य चित्रों के कारण सभी के लिए आकर्षक उपयोगी है।

14. सचित्र छेद सूत्र (दशा-कल्प-व्यवहार) **मूल्य 600/-**

आचार-शुद्धि के लिए जिन आगमों में विशेष विधान है, उन्हें 'छेद सूत्र' कहा गया। है छेद सूत्रों में आचार-शुद्धि के सूक्ष्म से सूक्ष्म नियमों का वर्णन है। चार छेद सूत्रों में दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प तथा व्यवहार-ये तीन छेद सूत्र सभी श्रमण-श्रमणियों के लिए विशेष पठनीय हैं। प्रस्तुत भाग में तीनों छेद सूत्रों का भाष्य आदि के आधार पर विवेचन है। यह अंग्रेजी अनुवाद तथा 15 रंगीन चित्रों सहित है।

15. सचित्र भगवती सूत्र (भाग 1, 2, 3) **मूल्य 1800/-**

पंचम अंग व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र 'भगवती' के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। इसमें जीव, द्रव्य, पुद्गल, परमाणु, लोक आदि चारों अनुयोगों से सम्बन्धित हजारों प्रश्नोत्तर हैं। यह विशाल आगम जैन तत्व विद्या का महासागर है। संक्षिप्त और सुबोध अनुवाद व विवेचन के साथ यह आगम लगभग 6 भाग में पूर्ण होने की सम्भावना है। प्रथम भाग 1 से 4 शतक तक तथा 15 रंगीन चित्रों सहित प्रकाशित है। द्वितीय भाग में 5 से 7 शतक सम्पूर्ण तथा 9वें शतक का प्रथम उद्देशक लिया गया है। इस भाग में 15 रंगीन चित्र लिये गये हैं। तृतीय भाग में आठवें शतक के द्वितीय उद्देशक से नवें शतक तक सम्पूर्ण लिया गया है। साथ ही यह विषय को स्पष्ट करने वाले 22 रंगीन भाव पूर्ण चित्रों से युक्त है।

16. सचित्र जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र **मूल्य 600/-**

यह छठा उपांग है। इस सूत्र का मुख्य विषय जम्बूद्वीप का विस्तृत वर्णन है। जम्बूद्वीप में आये मानव क्षेत्र, पर्वत, नदियाँ, महाविदेह क्षेत्र, मेरु पर्वत तथा मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते सूर्य-चन्द्र आदि ग्रह नक्षत्र, अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी आदि के विस्तृत वर्णन के साथ ही चौदह कुलकर, प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का चरित्र, सम्राट् भरत चक्रवर्ती की षट्खण्ड विजय आदि अनेक विषयों का वर्णन भी इस सूत्र में आता है। इसमें दिये रंगीन चित्र जम्बूद्वीप की भौगोलिक स्थिति, सूर्य-चन्द्र आदि ग्रहों की गति समझने में काफी उपयोगी सिद्ध होंगे। यह सूत्र जैन, भूगोल, खगोल और इतिहास का ज्ञानकोष है।

17. सचित्र प्रश्नव्याकरण सूत्र **मूल्य 600/-**

प्रश्नव्याकरण अर्थात् प्रश्नों का व्याकरण, समाधान, उत्तर। मानव मन में सदा से यह प्रश्न उठता रहा है कि राग-द्वेष जनित वे कौन-से भयंकर विकार हैं जो आत्मा को मलिन करके दुर्गति में ले जाते हैं और इनसे कैसे बचा जाए? इन प्रश्नों के समाधान स्वरूप प्रश्नव्याकरण सूत्र में इनका विस्तृत वर्णन किया गया है। इन्हें आगम की भाषा में आश्रव कहते हैं। ये आश्रव हैं–हिंसा, असत्य , चौर्य, अब्रह्मचर्य और परिग्रह। इन आश्रवों का स्वरूप और इनसे होने वाले दुःखों को इस सूत्र में भलीभाँति समझाया गया है।

साथ ही इन पाँच आश्रवरूपी शत्रुओं से बचने हेतु अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह–ये पाँच संवर बताये गये हैं। संवर से भावित आत्मा, राग-द्वेष जनित विकारों से दूर रहती है। आश्रव-संवर वर्णन में ही समग्र जिन प्रवचन का सार आ जाता है।

इस प्रकार 23 जिल्दों में 24 आगम तथा कल्पसूत्र प्रकाशित हो चुके हैं। प्राकृत अथवा हिन्दी का साधारण ज्ञान रखने वाले व्यक्ति भी अंग्रेजी माध्यम से जैनशास्त्रों का भाव, उस समय की आचार-विचार प्रणाली आदि को अच्छी प्रकार से समझ सकते हैं। अंग्रेजी शब्द कोष भी दिया गया है। पुस्तकालयों, ज्ञान-भण्डारों तथा संत-सतियों, स्वाध्यायियों के लिए विशेष रूप से संग्रह करने योग्य है।

इस आगममाला के प्रकाशन में परम श्रद्धेय उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक गुरुदेव भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. की अत्यन्त बलवती प्रेरणा रही है। उनके शिष्यरत्न जैन शासन दिवाकर आगमज्ञाता उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी म. द्वारा सम्पादित हैं, इनके सह-सम्पादक हैं प्रसिद्ध विद्वान् श्रीचन्द सुराना। अंग्रेजी अनुवादकर्त्ता हैं श्री सुरेन्द्र बोथरा तथा सुश्रावक श्री राजकुमार जी जैन।

○○○

IN THE HISTORY OF JAIN LITERATURE BEGINNING OF A NEW ERA OF KNOWLEDGE FOR THE FIRST TIME IN THE WORLD

(Jain Agams published with free flowing translation in Hind and English Also included are multicoloured illustrations vividly exemplifying various themes contained in scriptures)

---

1. **Illustrated Uttaradhyayan Sutra** **Price Rs. 500/-**

   The last sermon of Bhagavan Mahavir. Essence of the ideal way of life and path of liberation based on philosophical knowledge contained in all Angas. The pious discoures encapsulating complete Jain conduct, philosophy and principles.

2. **Illustrated Dashavaikalik Sutra** **Price Rs. 500/-**

   The Simple rule book of ahimsa and caution based Shraman conduct rendered vividly with the help of multicoloured illustrations. Useful at every step in life, even of common man, as a guide book of good behaviour, balanced conduct and norms of etiquette, food and speech.

3. **Illustrated Nandi Sutra** **Price Rs. 600/-**

   All enveloping discussion of the five facts of knowledge including Matijnana and Shrut-jnana.

4. **Illustrated Anuyogadvar Sutra (Parts 1 and 2)** **Price Rs. 1,200/-**

   This scripture is the key to understanding Jain philosophy and metaphysics. Besides philosophical topics like Naya, Nikshep and Praman it contains discussion about hundreds of other subjects including mathematics, astrology, music, poetics, ancient scripts and weights and measures. The complexity and volume of this could be covered only in two volumes.

5. **Illustrated Acharanga Sutra (Parts 1 and 2) Price Rs. 1,000/-**

This is the first among the eleven Angas. It contains lucid description of ahimsa, samyaktva, samyam, titiksha and other fundamentals propagated by Bhagavan Mahavir. Eye-witness-like description of the life of Bhagavan Mahavir and his pre-omniscience praxis as well as details about ascetic conduct and praxis form the second part. Both parts contain multi-coloured illustrations on a variety of historical and cultural themes.

6. **Illustrated Sthananga Sutra (Parts 1 and 2) Price Rs. 1,200/-**

This is the fourth Anga Sutra. Compiled in its unique numerical placement style, this scripture is a voluminous work containing information about scriptural knowledge, science, astrology, geography, mathematics, history, ethics, conduct, psychology, judging man and hundreds of other topics. The free flowing translation and elaboration make the contents easy to understand and edifying even for common readers.

7. **Illustrated Jnata Dharma Katha Sutra (Parts 1 and 2) Price Rs. 1,000/-**

Famous inspiring and enlightening religious tales, allegories and incidents told by Bhagavan Mahavir presented with attractive colourful illustrations. This works makes the abstract philosophical principles easy to understand. This is the sixth Anga complete in two volumes.

8. **Illustrated Upasak Dasha and Anuttaraupap -atik Dasha Sutra Price Rs. 500/-**

This book contains the seventh and the ninth Angas. The seventh Anga, Upasak Dasha, contains the stories of life of ten prominent Shravak disciples of Bhagavan Mahavir with a special emphasis on their religious conduct. The ninth Anga Anuttaraupapatik Dasha contains thrilling description of the lofty austerities and meditation done by thirty three specific ascetics. With colourful illustrations.

9. **Illustrated Niryavalika and Vipaak Sutra Price Rs. 600/-**

Niryavalika has five Upangas that contain the story of the birth of king Kunik, a devout disciple of Bhagavan Mahavir. This also contains the thrilling and illustrated description of the famous Mahashilakantak war between Kunik and Chetak, the president of the republic of Vaishali. Besides these it also has life-stories of many Shramans and Shramanis of the lineage of Bhagavan Parshva Naath.

Vipaak Sutra contains the description of the extremely bitter fruits of ignoble deeds. This touching description inspires one towards noble deeds like charity and austerities the fruits of which have been lucidly described in its second section titled Sukha-vipaak. The colourful artistic illustrations add to the attraction.

10. Illustrated Antakriddasha Sutra **Price Rs. 500/-**

This eighth Anga contains the inspiring stories of the spiritual pursuits of ninety great men destined to be liberated. This Sutra is specially read during the Paryushan period. The illustrations related to austerities are specially informative.

11. Illustrated Aupapatik Sutra **Price Rs. 600/-**

This the first Upanga. This contains lucid and poetic description of numerous topics including King Kunik's preparations to go to pay homage to Bhagavan Mahavir, Bhagavan's sermon and establishment of the religious order. This also contains the description of austerities obseved by Ambad and many other Parivrajaks.

12. Illustrated Raipaseniya Sutra **Price Rs. 600/-**

This is the third Upanga. It provides an interesting and edifying reading of the discussion between Acharya Keshi Kumar Shraman and the antireligious king Pradeshi on topics like soul, next life, and rebirth. This dialogue turned him into a gteat religionist. The illustrations of the examples showing the difference between soul and body are also instructive.

13. Illustrated Kalpa Sutra **Price Rs. 600/-**

Kalpa Sutra is widely read and recited during the Paryushan festival. It contains stories of life of 24 Tirthankars with more details about Bhagavan Mahavir's life. It also contains the disciple lineage of Bhagavan Mahavir and detailed ascetic praxis. The illustration connected with the 24 Tirthankars add to its attraction as well as utility.

14. Illustrated Chheda Sutra **Price Rs. 600/-**

The Agams that contain special procedures for purity of conduct are called Chheda Sutra.These Sutras enumerate subtle rules for purity of conduct. Of the four Chheda Sutras three should be specially read by all asectics-Dashashrut-skandh, Brihatkalpa and Vyavahar. This edition contains these three Chhed Sutras with elaboration based on commentaries (Bhashya) and other works. It also includes English translation and 15 multicolour illustrations.

15. Illustrated Bhagavati Sutra (Parts 1,2 & 3) Price Rs. 1800/-

Vyakhyaprajnapti, the fifth Anga, is popularly Known as Bhagavati. It contains thousands of question and answers on various topics from four Anuyogas, Such as soul, entities, matter, ultimate particles and universe. This voluminous Agam is an ocean of Jain metaphysics. With simple translation and brief elaboration it is expected to be completed in six volumes. The first volume contains one to four Shataks and 15 illustrations. The second volume contains five to seven Shataks complete and first Uddeshak of the eighth Shatak. As usual 15 colourful illustrations have also been included. The third volume contains second Uddeshak of the eighth Shatak and complete ninth Shatak. 22 colourful illustrations have also been included. These will make the complex topics simple and easy to understand. This is probably for the first time that an English translation of this Agam is being published.

16. Illustrated Jambudveep Prajnapti Sutra Price Rs. 600/-

This is the sixth Upanga. The central theme of this Sutra is detailed description of Jambudveep. The list of topics discussed in this include inhabited areas of Jambudveep continent, mountains, rivers, Mahavideh area, Meru mountain, the sun, the moon, planets, and constellations moving around the Meru; regressive and progressive cycles of time; people like the fourteen Kulakars, the first Tirthankar Bhagavan Risabhadeva; and incidents like the conquest of the six division of the Bharat area. The colourful illustrations included in this volume will be helpful in understanding the geographical conditions of Jambudveep as well as the movement of the sun, the moon and planets. The readers will find the beautiful multicoloured illustrations of incidents from Bhagavan Risabhadeva's life very lively. This Sutra is a compendium of Jain geography, cosmology and history.

17. Illustrated Prashnavyakaran Sutra Price Rs. 600/-

Prashnavyakaran means the grammer of questions, solutions and answers. Human mind is always faced with the question that what are those terrible perversions caused by attachment and aversion that tarnish the soul and push it to a tormenting rebirth, and how to avoid them? In order to answer these questions Prashnavyakaran Sutra starts by giving detailed description of these perversions. In Agamic terms they are called Aashravas. They are-violence, falsity, stealing, non-celibacy and covetousness. This Sutra vividly explains the definitions of these Aashravas and the miseries caused by them.

In order to protect oneself from these five Aashravas, the tormenters of mind, five Samvars have been defined. They are-Ahimsa, truth, nonstealing, celibacy and non-covetousness. A soul energized by Samvar remains free of the perversions caused by attachment and aversion. The descriptions of Aashrava and Samvar encapsulate the gist of the whole sermon of the Jina.

- Till date 24 Agams (including three parts of Bhagavati) and Kalpa Sutra have been published in 23 books. The English translation makes it possible for those with passing knowledge of Prakrit and Hindi to understand the content of Jain Agams including the religious practices as prevalent in ancient times. Also included in some of these editions are glossaries of Jain terms with their meaning in English.
- Due to its demand by libraries, Jnana Bhandars, ascetics and lay readers this unique series may soon go out of print.
- The publication of this Agam series has been inspired by Uttar Bharatiya Pravartak Gurudev Bhandari Shri Padmachandra Ji M.S. Its editor is his able disciple Uttar Bharatiya Pravartak Shri Amar Muni Ji Maharaj. His team includes renowned scholar Shri Shrichand Surana as associate editor, Shri Surendra Bothara and Sushravak Shri Raj Kumar Jain, as English translators.

○○○

त्र

वश्यक सूत्र

श्रुत आचार्य प्रवर्त्तक श्री अमर मुनि

LUSTRATED

VASHYAK SUTRA

ut Acharya Pravartak Shri Amar Muni

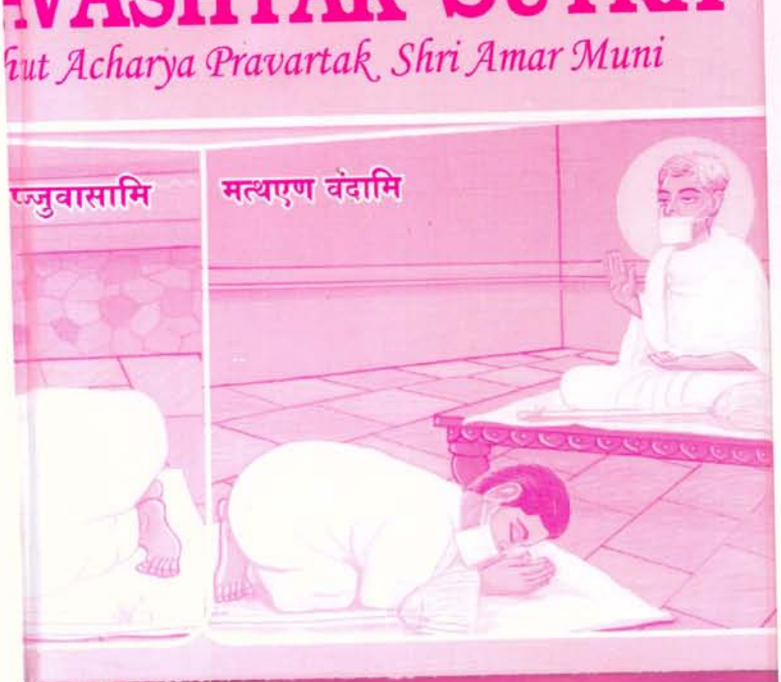

श्रुत आचार्य प्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी म.

प्रस्तुत सूत्र के सम्पादक श्रुत आचार्य प्रवर्त्तक श्री अमरमुनि जी, श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमणसंघ के एक तेजस्वी संत हैं।

जिनवाणी के परम उपासक गुरुभक्त श्री अमरमुनि जी का जन्म वि.सं. 1993 भादवा सुदि 5 (सन् 1936), क्वेटा (बलूचिस्तान) के मल्होत्रा परिवार में हुआ।

11 वर्ष की लघुवय में आप जैनागम रत्नाकर आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज की चरण-शरण में आये और आचार्य देव ने अपने प्रिय शिष्यानुशिष्य भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज को इस रत्न को तराशने / सँवारने का दायित्व सौंपा। गुरुदेव श्री भण्डारी जी महाराज ने अमर मुनि जी को सचमुच अमरता के पथ पर बढ़ा दिया। आपने संस्कृत-प्राकृत-आगम-व्याकरण-साहित्य आदि का अध्ययन करके एक ओजस्वी प्रवचनकार, तेजस्वी धर्म-प्रचारक तथा जैन आगम साहित्य के अध्येता और व्याख्याता के रूप में जैन समाज में प्रसिद्धि प्राप्त की।

आपश्री ने भगवती सूत्र (4 भाग), प्रश्नव्याकरण सूत्र, सूत्रकृतांग सूत्र (2 भाग) आदि आगमों की सुन्दर विस्तृत व्याख्याएँ की हैं।

Shrut Acharya Pravartak Shri Amar Muni Ji M.

The editor-in-chief of this Sutra, is a brilliant ascetic affliated with Shri Vardhaman Sthanakvasi Jain Shraman Sangh.

A great worshiper of the tenets of Jina and a devotee of his Guru, Shri Amar Muni Ji was born in a Malhotra family of Queta (Baluchistan) on Bhadva Sudi 5th in the year 1993 V.

He took refuge with Jainagam Ratnakar Acharya Samrat Shri Atmaram Ji M. at an immature age of eleven years. Acharya Samrat entrusted his dear grand-disciple, Bhandari Shri Padmachandra Ji M. with the responsibility of cutting and polishing this raw gem. Gurudev Shri Bhandari Ji M. indeed, put Amar (immortal) on the path of immortality. He studied Sanskrit, Prakrit, Agams, Grammar and Literature to gain fame in the Jain society as an eloquent orator, an effective religions preacher and a scholar and interpreter of Jain Agam literature.

He has written nice and detailed commentaries of Bhagavati Sutra (in four parts), Prahsnavyakaran Surtra (in two parts), Sutrakritanga Sutra (in two parts) and some other Agams.

सचित्र आगम साहित्य

PUBLISHERS & DISTRIBUTORS :

PADAM PRAKASHAN

Padam Dham, Narela Mandi, Delhi-110040
President : Mahendra Jain 09810027225
E-mail : padamprakashan108@yahoo.com

PRINTER :

KOMAL PRAKASHAN

2088/5, Street No. 19, Prem Nagar,
Delhi-110008. Mobile : 9210480385
E-mail : komalprakashan@gmail.com